एम.ई.सी.-06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)

भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास 2

एम.ई.सी.-06

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. अर्थशास्त्र (उत्तरार्द्ध)

भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास 2

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. जी.एस.एल. देवड़ा
कुलपति
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रोफेसर ए.के. सिंह
गिरि इंस्टीट्यूट ऑफ डवलपमेंट स्टडीज
लखनऊ

प्रोफेसर एस.एस. आचार्य
निदेशक,
विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर

डॉ. प्रमोद वर्मा
,इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट
अहमदाबाद

प्रोफेसर डी.डी. नरूला
मानद वरिष्ठ अध्येता
विकास अध्ययन संस्थान जयपुर

डॉ. एम.के. घड़ोलिया (संयोजक)
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

डॉ. श्याम नाथ
फ़ेलो,एन.आई.पी.एफ़., नई दिल्ली

डॉ. रामेश्वर प्रसाद शर्मा
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो. अमिताभ कुन्डु
सी.एस.आर.डी.
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

डॉ. जे.जे. शर्मा
सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पाठों के लेखक

डॉ. अयोध्या सिंह (17)
सेवानिवृत्त प्रोफेसर
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस

डॉ. ए.ए. सिद्धकी (22)
अलीगढ़

डॉ. एम.सी. गुप्ता (18)
जयपुर

प्रोफेसर आर.के. अग्रवाल (23,24)
जबलपुर

प्रो. अमिताभ कुन्डु (19,20)
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. एच.एल. भाटिया (25,26,27)
नई दिल्ली

डॉ. मंसूर अली (21)
रुड़की विश्वविद्यालय
रुड़की

सीमा सोरल (28)
कोटा

अनुवाद

डॉ. एम.एम. जैन (19, 20)
कोटा

प्रो. मंसूर अली
रुड़की

श्रीमती अरुणा कौशिक (17)
कोटा

श्रीमती कान्ता सोनी
अजमेर

डॉ. मोहन सिंहल
जोधपुर

सम्पादक

डॉ. एम.के. घड़ोलिया
सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
अर्थशास्त्र विभाग
कोटा खुला विश्वविद्यालय, कोटा(राज.)

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच	**प्रो.(डॉ.) अनाम जैतली**	**प्रो.(डॉ.) पी.के. शर्मा**
कुलपति	निदेशक	निदेशक
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा	**संकाय विभाग**	**पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग**

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - सितम्बर, 2008

इस सामग्री के किसी भी अंश को व.म.खु.वि. कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है|

व.म.खु.वि. कोटा के लिये कुलसचिव व.म.खु.वि. कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

खण्ड -2

उद्योग एवं व्यापार

इकाई 17	भारत में औद्योगिक विकास की प्रवृत्ति एवं समस्याएं	9–16
इकाई 18	कृषि व उद्योग के मध्य व्यापार शर्तें	17–29
इकाई 19	भारत में क्षेत्रीय विषमताएं	30–48
इकाई 20	भारत में संतुलित औद्योगिक विकास की नीतियां	49–69
इकाई 21	भारतवर्ष में बहु राष्ट्रीय निगम	70–79
विदेशी व्यापार एवं सार्वजनिक वित्त		
इकाई 22	भारत वर्ष में समानान्तर अर्थव्यवस्था	80–89
इकाई 23	भारत में भुगतान सन्तुलन	90–106
इकाई 24	निर्यात सम्वर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन	107–124
इकाई 25	भारतीय कर व्यवस्था	125–147
इकाई 26	समाज के विभिन्न वर्गों पर करापात	148–165
इकाई 27	भारत में सार्वजनिक व्यय की प्रवृत्तियां	166–179
इकाई 28	भारत मे केन्द्र राज्य वित्त सम्बन्ध	180–192

खण्ड परिचय

भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के क्रम में भारत में औद्योगिक विकास एवं कृषि तथा उद्योग के मध्य व्यापार शर्तों का अध्ययन किया गया है। उदारीकरण के वर्तमान युग में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका बढ़ती जा रही है। विश्व के विकसित देश व्यापार के साथ कई शर्ते जोड़ना चाहते हैं, परन्तु विकासशील देश इनका विरोध कर रहे हैं। इस प्रकार विश्व राजनीति में अब उद्योग एवं व्यापार का शीर्ष स्थान हो गया है। आज विश्व का कोई देश विश्व व्यापार संगठन से बाहर रहकर अपने देश के उद्योग धन्धों को विकसित नहीं कर सकता है। नब्बे के दशक में उद्योगों की समस्याएं भी बदल गयी हैं। आज विकासशील देश शिशु उद्योगो का तर्क देकर अपने उद्योगों को संरक्षण नहीं दे सकते है। विश्व में समान व्यापार संहिताएं एवं मानदण्ड लागू किए जा रहे हैं। अमेरिका में विश्व व्यापार संगठन में सिएटल में हुई मंत्रीस्तरीय बैठक में श्रम मानदण्डों एवं पर्यावरण के मुद्दों को व्यापार के साथ जोड़ने का भारत ने कड़ा विरोध किया। भारत के साथ अन्य विकासशील देशों द्वारा परमाणु परीक्षण किए जाने के तुरन्त बाद लगाए गए आर्थिक प्रतिबन्धो से उद्योग एवं व्यापार के समस्याएं बढ़ गई हैं। इन प्रतिबन्धो में अब धीरे-धीरे छूट दी जा रही है।

इकाई संख्या 18 कृषि एवं उद्योग के मध्य व्यापार शर्तो का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करती है। व्यापार की शर्तों किसी क्षेत्र के अनुकूल अथवा प्रतिकूल हो सकती हैं। इस इकाई में व्यापार की तीन प्रमुख शर्तों का उल्लेख किया गया है। व्यापार के शर्तों का अध्ययन नीति निर्माताओं के लिए बहुत उपयोगी है। इनके अध्ययन के पश्चात् यदि यह पाया जाए की किसी क्षेत्र विशेष के लिए व्यापार की शर्ते लम्बे समय से प्रतिकूल चल रही है तो उन्हें उचित नीति निर्माण करके अनुकूल करने के लिए प्रयास किए जा सकते हैं।

इकाई संख्या 19 में भारत में क्षेत्रीय विषमताओं की चर्चा की गई है। नियोजन के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न प्रान्तों का विकास समान ही हुआ। कुछ क्षेत्र एवं प्रान्त भी हैं जो विकास की दौड़ में पिछड़ गए। इससे क्षेत्रीय असमताएं कृषि एवं उद्योग दोनों ही क्षेत्रों में देखने को मिलती हैं। प्रस्तुत इकाई में विभिन्न आंकड़ो एवं तालिकाओं द्वारा इन असमताओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

इकाई संख्या 20 में भारत में संतुलित औद्योगिक विकास की नीतियों पर चर्चा की गई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत को उद्योगों का एक कमजोर एवं पिछड़ा हुआ ढाँचा विरासत में मिला। इस ढांचे को त्वरित करना एक बड़ा कार्य था। 1950 में योजना आयोग कि स्थापना के बाद देश में नियोजित विकास का मार्ग अपनाया गया। इसमें क्षेत्रीय संतुलन पर अधिक बल दिया गया। साधनों के संतुलित हस्तान्तरण के लिए योजना आयोग एवं वित्त आयोग बनाए गए। इस बात पर विशेष बल दिया गया कि आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण मुट्ठीभर लोगों के हाथों में न हों। पिछड़ें क्षेत्रो में उद्योगो को प्रोत्साहित किया गया। लाइसेन्सिग नीति के द्वारा उद्योगों कि स्थापना का स्थान निर्धारण को प्रभावित किया गया। स्वतन्त्रता के बाद लगभग चालीस वर्षों तक सरकारी नियन्त्रण एवं नियमन का युग रहा परन्तु नब्बे के दशक के प्रारम्भ से उदारीकरण कि प्रक्रिया प्रारम्भ कि गई व भारतीय उद्योगों को विश्व प्रतिस्पर्धा के लिए खुला छोड़ किया गया।

इकाई 21 में भारत वर्ष में कार्यरत बहुराष्ट्रीय निगमों के प्रवेश व विकास के मार्ग में आई बाधाओं का विवेचन किया गया है। अब उदारीकरण के युग में सभी राज्य सरकारें अपने-अपने राज्यों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को आकर्षित करने कि योजनाएं बना रही हैं। आधारभूत एवं भरी उद्योगों में बहुराष्ट्रीय निगमों को आमन्त्रित किया जा रहा है।

इकाई 22 में भारतवर्ष कि समानान्तर अर्थव्यवस्था एवं इसके आकार कि चर्चा की गई है। इस इकाई में कालेधन की उत्पत्ति के कारणों एवं इसके निवारण के उपायों की चर्चा की गई है। देश में चल रहा भ्रष्टाचार कालेधन के बढ़ने का प्रमुखकारण है।

इकाई संख्या 23 में विभिन्न योजना अवधियों में भुगतान सन्तुलन की स्थिति की चर्चा की गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लगातार भारत का भुगतान सन्तुलन विपक्ष में रहा है। इस इकाई में भुगतान सन्तुलन को ठीक करने की उपायों पर भी चर्चा की गई है।

इकाई संख्या 24 में भारत में निर्यात संवर्द्धन के लिये किए गए प्रयासों की चर्चा की गई है। आयात प्रतिस्थापन साठ के दशक में भारत की प्रमुख नीति रही। भारतीय उद्योगों को संरक्षण देकर विदेशी प्रतिस्पर्धा से उनकी रक्षा कर आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं का उत्पादन देश में ही किया गया।

वर्तमान समय में सरकार ने भूमण्डलीकरण (Globalisation) तथा उदारीकरण की नीति अपनाई है। अब देश के उद्योगों को विदेशी चुनौती के लिए तैयार रहने को कहा जा रहा है। भारत विश्वव्यापार संगठन का सदस्य है एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्वबैंक के निर्देशन में आर्थिक सुधारों का दूसरा दौर प्रारम्भ कर चुका है।

इकाई संख्या 25 भारतीय कर व्यवस्था के बारे में हैं। इसमें महत्वपूर्ण केन्द्रीय व राज्य सरकारों के करों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई में भारत कराधान की भूमिका तथा कर सुधार की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इसके बाद इकाई 26 मीन समाज के विभिन्न वर्गों पर करपात की चर्चा की गई है। अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के लिये यह समझना अत्यन्त जरूरी है कि सुझाए गए करों का करापात किस वर्ग पर पड़ेगा।

इकाई 27 में भारत में सार्वजनिक व्यय कि प्रवृत्तियों कि चर्चा कि गई है। इस इकाई में विकास एवं गैर विकास एवं व्यय के अन्तर को स्पष्ट किया गया है।

अन्त में इकाई 28 में केन्द्र राज्य वित्त सम्बन्धों कि चर्चा कि गई है। वर्तमान में दसवां वित्त आयोग केन्द्र व राज्यों के बीच साधनों के हस्तान्तरण पर अपनी रिपोर्ट दे चुका है। राज्य लगातार अधिक साधनों कि मांग करते रहे हैं कई बार इस कटुता के चलते केन्द्र व राज्य के सम्बन्ध भी बिगड़ जाते हैं।

इकाई 17

भारत में औद्योगक विकास की प्रवृति एवं समस्याएं की

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व औद्यौगिक विकास ऐतिहासिक सिंहावलोकन

17.3 नियोजन एवं औद्योगिक विकास

17.3.1 प्रथम गाजना (1951 -56)

17.3.2 द्वितीय योजना (1956-61)

17.3.3 तृतीय योजना (1967 -66)

17.3.4 तीन वार्षिक योजनाएं (1966-69)

17.3.5 चतुर्थ योजना (1969-74)

17.3.6 पांचवी योजना (1974-79)

17.3.7 छठी योजना (1979-85)

17.3.8 सातवीं योजना (1985 -90)

17.3.9 आठवी योजना (1992-97)

17.4 विकास के मार्ग में बाधाएं

17.5 सारांश

17.6 शब्दावली

17.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.0 उद्देश्य

अर्थव्यवस्था के विकास में उद्योगो की अहम् भूमिक होती है। इसलिए इसके विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं एवं विकास की प्रवृति का ज्ञान अर्थशास्त्र के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक है। इस इकाई को पढने के बाद आप :

- जान सकेंगे कि उद्योगों के सन्दर्भ में भारत की क्या स्थिति थी?
- योजनाओं के क्रियान्वयन के परिणाम स्वरूप.औद्योगिक विकास की क्या स्थिति रही?
- औद्योगिक विकास के मार्ग में आनेवाली बाधाओं से परिचित हो जाएंगे।

17.1 प्रस्तावना

किसी भी देश के औद्योगिक विकास का ज्ञान विकास की भावी रणनीति बनाने वे लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए योजनाबद्ध विकास के द्वारा भारत में किए गए प्रयासों की दिशा एवं इसके मार्ग में आ रही बाधाओं का ज्ञान जरूरी है। इस हेतु केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा उपलब्ध कराए गए आकड़ों के साथ-साथ केन्द्रीय खान ब्यूरो, रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया बुलेटिन, बजटपूर्व आर्थिक सर्वेक्षण एवं योजनाओं का अध्ययन किया जाएगा। इस विश्लेषण में

आपको औद्योगिक तेजी एवं मन्दी के कारणों एवं विकास के मार्ग में आ रही बाधाओं की जानकारी दी जाएगी।

17.2 स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व औद्योगिक विकास : एतिहासिक सिंहावलोकन

प्राचीन भारत में बहुत उन्नत घरेलू - उद्योग थे। रायल कमीशन ने लिखा था कि,' 'आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के जन्म स्थान पश्चिमी यूरोप में जब असभ्य जनतातियां निवास करती थीं, भारत उन दिनों अपने शासकों के धन वैभव एवं कारीगरों की कलाकृतियों के लिए जाना जाता था। " आप सभी परिचित है कि भारत में निर्मित ढाका की मलमल विश्व प्रसिद्ध थीं। प्रो॰ वेबर ने लिखा है, “In the Production of delicate woven fabrics, in the mixing of colours, the working of metals and percious stones, the predation of essences an all manner of technical arts has from early times enjoyed word wide celebraty.” हिन्दू शासकों के अन्तिम दिनों में भारतीय उद्योगों का पतन आरम्भ हुआ एवं पठान शासकों के समय अत्यधिक बढ़ गया वह कुछ सीमा तक मुगल शासनकाल मैं स्थिर हुआ। मुगलों के शासन काल में कई नगर एवं कसबे अपने घरेलू उद्योगों के लिए प्रसिद्ध हुऐ जैसे ढाका की मलमल, हाथीदांत के लिए मुर्शिदाबाद, जयपुर का संगमरमर उद्योग, गाजीपुर का इत्र एवं लखनऊ की वेलवेट इत्यादि। भारत के बढ़ते वैभव ने विदेशी व्यापारियों को अपनी ओर आकर्षित किया। सबसे पहले पुर्तगाली आए फिर डच तथा अन्त में अंग्रेज एवं फ्रेंच व्यापारी भारत आए। फ्रेंच एवं अंग्रेजों की दुश्मनी में अन्तत : अंग्रेज व्यापारी विजयी हुवे। अंग्रेजों ने भारतीय माल को यूरोपीय बाजारों में बेचा एवं मुनाफा कमाया।

इंग्लैंड में औद्यौगिक क्रान्ति के प्रारम्भ होने पर अंग्रेज व्यापारियों एवं ईस्ट इण्डिया कंपनी के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। अब भारत उनके उद्योगों के लिए कच्चामाल निर्यात करनें के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया। इसके साथ ही; यहां की विशाल जनसंख्या उन्हें अपने, उद्योगों के लिए भावी बाजार के रूप में नजर। आने लगी। बाद में स्वतंत्र छोड़ा की नीति (Policy of Laissez Faire) के फैल हो जाने एवं बार-बार पड़ने वाले अकाल के परिणाम स्वरूप अकाल आयोगों द्वारा भारत के औद्योगिकीकरण पर बल दिया गया। इसके बाद राजनीतिक पुनर्जागरण के युग मैं भी भारत में स्वदेशी उद्योगों की नींव रखी। परन्तु राजकीय समर्थन व सहयोग न मिलने से यह अधिक आगे न बढ़ सके। प्रथम विश्वयुद्ध के समय (1914-18) भारत को अपने उद्योगों के विकास के लिए नए अवसर मिले। 1916 में भारतीय उद्योग आयोग की स्थापना की गई जिसने भारत मैं औद्योगिकीकरण की सम्पूर्ण संभावनाओं का अध्ययन किया। आयोग ने उद्योगों को राजकीय प्रोत्साहन देने की वकालत की। जहाँ प्रथम विश्वयुद्ध के समय भारत मैं उद्योगों का विकास हुआ वही मन्दी के समय युद्ध उपरान्त उन्हें धक्का लगा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के प्रारम्भ के साथ ही भारत में उद्योगों को पुन : गति मिली परन्तु अधिक उत्साह जनक परिणाम सामने नहीं - ' इस अवधि में राजकीय अथवा सरकारी विभागों

की मांग 'बढ़ने एवं निजी क्षेत्र की क्रय क्षमता में वृद्धि होने से औद्योगिक उत्पादों की मांग बढी। उद्योगों का विकास हुआ परन्तु विश्व के अन्य देशों में औद्यौगिक प्रगति के मुकाबले यह नगण्य था। भारत में कुछ उद्योगों जैसे सूती वस्त्र स्टील, तेल, मशीन टूल्स, विद्युत सामग्री, औजार एवं पुर्जे लुनी वस्त्र, होजरी, जूते, चमड़े का सामान आदि में संतोषजनक वृद्धि हुई। वस्तुत: स्वतंत्र प्राप्ति के समय भारत एक पिछड़ा हुआ देश ही था।

17.3 नियोजन एवं औद्योगिक विकास

अब हम विभिन्न योजनाओं में औद्योगिक प्रगति की चर्चा करेंगे।

17.3.1 प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951 -56)

प्रथम योजना की अवधि में औद्योगिक उत्पादन ने गति पकड़ी। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (1951.100) प्रथम योजना की समाप्ति पर 121.9 था। इस प्रकार योजना अवधि में उत्पादन 2204 बढ़ा। यह उद्योगों की प्रस्तावित क्षमता का पूरा उपयोग करने एवं क्षमता में विस्तार 'करने से सम्भव हो सका। कई नए उद्योग की इस योजना अवधि में प्रारम्भ किए गए। इस योजना अवधि मैं सार्वजनिक क्षेत्र का विकास करने के साथ साथ निजीक्षेत्र को भी सहायता उपलब्ध कराई कई। विद्युत उत्पादन क्षमता जो 1 950- 51 में मात्र, 2.3 मिलियनकिलोवाट थी योजना के अन्त में 34 मिलियन किलोवाट हो गई। सूती वस्त्र, रबड़, सल्फयूरिक एसिउ, कास्टिकसोड़ा, अमोनियम सल्फेट, सीमेन्ट, खाद्य तेल, साईकलों अदि का उत्पादन बढ़ा।

17.3.2 द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61)

प्रथम योजना में प्रारम्भ औद्योगिक विकास की दर द्वितीय योजना में जारी रही। आपको स्मरण होगा कि द्वितीय योजना में भारी उद्योगों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई थी।। परन्तु औद्यौगिक कच्चे माल की कमी के कारण उद्योगों की विकास दर में कुछ गिरावट आई। सूती वस्त्र उद्योग की समस्याओं के लिए सरकार ने एक अलग समिति गठित की। 1951-55 की अवधि में जहां औद्योगिक विकास की औसत दर 5.5%' थी वही 1956 में यह 8॰6%' 1957 में 3॰5% एवं 1958 में गिरकर 1.5% वार्षिक रह गई। 1959 में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 151 हो गया। जो पिछले वर्ष के मुकाबले 8॰2% वृद्धि का द्योतक था। इस वृद्धि का कारण आयातो को उदार बनाकर अधिक मात्रा में कच्चे माल की पूर्ति, आन्तरिक माँग में वृद्धि, नई औद्योगिक वातावरण का उन्नत होना था। 1960 मे पिछले वर्ष की तुलना में उत्पादन 12.1% बढ़ा तथा सूचकांक 170.3 हो गया। इस प्रकार योजना अवधि में 39.1% वृद्धि दर्ज की गई।

17.3.3 तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961 -66)

तृतीय पंचवर्षीय योजना के प्रथम वर्ष 1961 -62 में औद्योगिक वृद्धि का लक्ष्य14 प्रतिशत रखा गया परन्तु वास्तविक दर 4604 ही प्राप्त हो सकी। औद्योगिक कच्चे माल की

अनुपलब्धता के कारण लक्ष्य को प्राप्त करने में कठिनाई आयी। विदेशी कच्चेमाल का उपयोग करने वाले उद्योगों में समस्या रही क्योंकि विदेशी विनिमय की कठिनाइयों के कारण आयातो पर प्रतिबन्ध रहे। इसके अतिरिक्त उर्जा व यातायात क्षेत्र में धीमी प्रगति का प्रभाव भी देखने में आया। इन सभी बाधाओं के बावजूद नए-नए क्षेत्रों में उद्योग लगाए गए।

औद्योगिक उत्पादन का, सूचकांक (1960=100) 1965 में 153॰7 हो गया। औद्योगिक विकास के मांग में आने वाली बाधाओं जैसे यातायात, उर्जा, सीमेन्ट, कोयला स्टील आदि क्षेत्रो का तेजी से विकास हुआ। इन सभी तत्वों के अतिरिक्त सरकारों द्वारा विभित्र राजकोषीय रियायतें व सुविधाएं भी औद्योगिक प्रगति के लिए जिम्मेदार थी।

17.3.4 तीन वार्षिक योजनाएं (1966-69)

1966 में औसत औद्योगिक उत्पादन सूचकांक 1965 के स्तर से कम हो गया एवं 1967 में यह 151.4 रह गया। देश के सम्मुख गम्भीर सूखे एवं विदेशी विनिमय संकट के चलते कच्चे माल की उपलब्धता में कमी आई। कुछ उद्योगों को उर्जा संकट के कारण बिजली नहीं मिली। परन्तु 1968 में इसमें कुछ सुधार आया व सूचकांक 161.1 हो गया। सरकार की कड़ी लाइसेन्सिंग नीति भी उद्योगों के मार्ग का रोड़ा बन गई।

17.3.5 चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1 969-74)

योजना में छूटी के बाद 1969 तथा 1970 के वर्षों में औद्योगिक उत्पादन ने फिर गति पकड़ी। 1970 में औद्योगिक उत्पादन (1960=100) सूचकांक 1807 हो गया। उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए उदार आयातो की नीति का अनुसरण किया गया। कन्ट्रोल की कीमतो में कुछ छूट से वातावरण में सुधार आया। औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति के तहत उद्योगों के लिए व्यापक नीति निर्माण हुआ' इनकी समस्याओं के लिए सरकार द्वारा विभित्र अध्ययन दल बनाए गए। चतुर्थ योजना में औसत वृद्धि दर 4.1% रही जो लक्ष्य से लगभग आधी थी। उद्योगों की क्षमता का पूरा उपयोग वहीं हो पाया।

17.3.6 पॉचवी योजना (1974-79)

पाँचवी योजना में औद्योगिक विकास की दर अधिक ऊँची तो नही रही फिर भी इसमें गति आई। 1974 में यह दर 4% रही। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (1970=100)1974 में 114.3 तथा 1975 में 1197 हो गया। सरकार द्वारा विद्युत, स्टील, कोयला आदि क्षेत्रों के विकास के लिए किए गए प्रयासों से औद्योगिक विकास को बल मिला। औद्योगिक लाइसेन्सिंग नीति में कुछ उदारीकरण की नीति को अपनाया गया। उद्योगों की स्थापित क्षमता का पूरा उपयोग करने पर बल दिया गया। 1977 में औद्योगिक उत्पादन5.3% बढा' कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिया गया। 1977 में सूचकांक बढ़कर 140 हो गया। परन्तु बाद में कुछ राज्यों में विद्युत संकट गहरा होने, कोयले की आपूर्ति में बाधा आने तथा यातायात सम्बन्धी समस्याओं एवं औद्योगिक अशान्ति से औद्योगिक विकास की गति अवरुद्ध हो गई।

17.3.7 छठी योजना (1980-85)

औद्योगिक उत्पादन के सामान्य सूचकांक (आधार 1970-100) में छठी योजना अवधि में निरन्तर वृद्धि हुई। आँकड़ो के आधार पर देखा जाय तो यह 1980 में 1507 से बढ़कर-1981 में 1646, 1982 में 172, 1983 में 1797 तथा 1984 में 189.3 हो गया। इस वृद्धि की मुख्य वजह इसके तीन प्रमुख घटकों में लगातार वृद्धि होना है। खान एवं खनन का सूचकांक 144.2 से बढ़कर योजना अवधि में 240 हो गया। विनिर्माण एवं विद्युत उत्पादन के सूचकांको में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई। औद्योगिक क्षेत्र का कार्य निष्पादन अच्छा होने के पीछे आधारभूत संरचना के क्षेत्रों का श्रेष्ठ कार्य निष्पादन उत्तरदायी था। सीमेन्ट, विश्रुत परिवहन आदि क्षेत्रों के साथ-साथ कृषि क्षेत्र में श्रेष्ठ प्रदर्शन से औद्योगिक मांग बढ़ी। औद्योगिक श्रमिकों की स्थिति में से औद्योगिक शान्ति बनी रही। इन्हीं सभी कारणों से औद्योगिक क्षेत्र का प्रदर्शन अच्छा रहा।

यह प्रदर्शन और भी श्रेष्ठ रहता यदि कुछ बाधाएं उपस्थित नही होती। उदाहरणार्थ कुछ अति महत्वपूर्ण आधारभूत उद्योगों जैसे बिजली, कोयला स्टील में मांग तथा पूर्ति में भारी अन्तराल बना रहा। पंजाब मैं हालात चिन्ताजनक रहे। पश्चिम बंगाल मैं जूट मिलों की हड़ताल, बन्दरगाहों पर गोदी कर्मचारियों की हड़ताल एवं आधुनिकीकरण की धीमी रफ्तार इसके लिए उत्तरदायी थी। इसी अवधि में औद्योगिक उत्पादन सूचकांक को अधिक विस्तृत बनाया गया जिससे देश की औद्योगिक क्षेत्र की सही तस्वीर सामने आ सके। 1980-81 के दशक में औद्योगिक प्रगति 1970 के दशक की तुलना मैं श्रेष्ठ रही।

17.3.8 सातवीं योजना (1985-90)

सातवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन का सूचकांक (1980-81=100) के आधार पर वृद्धि दर 8.7% रही। यह सूचकांक 1984-85 में 1309 से बढ़कर1985-86 में 142,1986-87 में 155.1 1987-88 में 1664, 1988-89 में 181.1 तथा 1989-90 में 188.1 ले गया। विभित्र उद्योगों में वृद्धि दर को चार क्षेत्रों में विभाजित कर 1553 उद्योगों की स्थिति इस प्रकार रही।

तालिका 17.1

चुने हुए क्षेत्रों में वृद्धि दर (सातवीं योजना)

	उद्योग समूह	भार	पिछले वर्ष कि तुलना में % वृद्धि	
			1989-89	1989-90
1.	आधारभूत उद्योग	36.36	10.8	4.7
2.	उपभोक्ता टिकाऊ उद्योग	2.20	19.3	0.8
3.	उपभोक्ता गैर टिकाऊ उद्योग	19.56	2.8	5.9
4.	पूँजीगत सामान	11.32	9.0	9.1
5.	मध्यवर्ती वस्तुएं	16.10	13.2	2.2

6.	सभी उद्योग	85.54	9.8	5.1

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण भारत सरकार वर्ष 1989-90 पृष्ठ 53

सांतवी योजना में औद्योगिक उत्पादन में विनिर्माण क्षेत्र की औसत वृद्धि दर (1980-81=100)9.9% रही। इसमें भी विद्युत मशीनें, रसायन एवं रसायन उद्योगों की वृद्धि दर क्रमश: 25.8% व 11.7% रही। इन दोनों उद्योग समूहों ने औद्योगिक वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। छठी योजना की तुलना में सातवीं योजना में औसत वार्षिक वृद्धि ऊँची रही। औद्योगिक उत्पादन की वृद्धि दर संतोषजनक होने के पीछे निम्नलिखित तत्व उत्तरदायी थे।

1. लाइसेन्सिंग के लिए जरूरी क्षेत्रों एवं प्रक्रियाओं में परिवर्तन।
2. तकनीकी का आयात।
3. पूँजीगत साज सामान का अधिक आयात
4. स्थापित क्षमता का बेहतर उपयोग।
5. कई उद्योगों में उतारो का वृहत आधार।
6. उदारीकरण की नीति जैसे एम.आर॰टी.पी. आधिनियम- के तहत् सम्पति सीमा में वृद्धि,लाइसेंन्सिंग से मुक्ति की सीमा बढ़ाकर 50करोड़ रुपया निर्धारित करना, गैर एम. आर॰टी॰पी एवं गैर फेरा कम्पनियों को पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने पर लाइसेन्स से मुक्ति, इत्यादि।
7. सार्वजनिक क्षेत्र का कार्य निथादन - 31 मार्च 1991 को सार्वजनिक उपक्रमों कुल संख्या 246 थी। भारत सरकार के इन उपक्रमों में कुल विनियोग 11 3,234 करोड़ रुपए था। इनमें से 236 कार्यरत थे जिनमें 101,702 करोड़ रु. की पूँजी विनियोजित थी एवं 23 लाख कर्मचारी कार्यरत थे। इनमें से 131 उद्योगों में 5731 करोड़ रुपए का शुद्ध लाभ अर्जित किया तथा 1०9 उद्योगों को 3064 करोड़ रुपए का घाटा हुआ।
8. राज्य के स्तर पर लगभग 1100 राजकीय उपक्रम थे जिनमें लगभग 50,000 करोड़ रुपए की पूँजी लगी हुई थी। इनमें से अधिकांश की स्थिति चिन्ताजनक थी। इस प्रकार सातवीं योजना में औद्योगिक विकास संतोषजनक रहा। इस योजना में उद्योगों पर 19708 करोड़ रुपए केन्द्र सरकार एवं शेष राज्य सरकारों द्वारा व्यय किया। जाना था। इ वास्तविक व्यय चालू कीमतो पर 26295 करोड़ रुपए हुआ।

17.3.9 आठवीं योजना 1992-97

1980 के दशक में प्राप्त उपलब्धियों को मजबूत करने के उद्देश्य से आठवीं योजना मैं आर्थिक सुधार प्रारम्भ करते हुए सरकार ने निजीकरण एवं उदारीकरण की प्रक्रिया अपनाई। उद्योगों की सरकार पर निर्भरता कम करने के कई प्रयास किए गए। इन सुधारों का लक्ष्य भारतीय उद्योगों को विश्व प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करना है।

1991 में भारत सरकार ने नई औद्योगिक नीति की घोषणा की एवं सार्वजनिक क्षेत्र के लिए रिजर्व उद्योगों की संख्या 29 से घटाकर 17 कर दी। उद्योगों को विश्व प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करने की दृष्टि से नियंत्रणों में छूट दी गई। औद्योगिक क्रियाकलापों में निजी क्षेत्र

की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया गया एव यह स्पष्ट किया गया कि सार्वजनिक क्षेत्र अब आधारभूत एवं महत्वपूर्ण उद्‌योगों तक ही सीमित रहेगा। उद्‌योगों को विस्तार व आधुनिकीकरण के लिए छूट दी जाएगी व उनकी बजट सहायता पर निर्भरता कम की जाएगी। लौह धातु उद्‌योग. की भविष्य में विकास सम्भावनाएं प्रबल है इसी तरह पूँजीगत साज समान में विदेशी सहयोग से तकनीकी के आधुनिकीकरण पर ध्यान दिया जाएगा। इलैक्ट्रोनिक उद्‌योगों में भारत में अभी तक वांछित प्रगति नहीं हुई है। उदारीकरण की प्रक्रिया से इसमें गति आएगी। उर्वरक उद्‌योग में अभी तक सरकारी नियंत्रण एवं कीमत निर्धारण प्रतिबन्धों के कारण वांछित प्रगति नहीं हो सकी। शक्कर के क्षेत्र में भारत अब आत्मनिर्भर हो चुका है। इसके उत्पादन बढ़ाने व निर्यात पर बल दिया जाएगा। सूती वस्त्र के क्षेत्र मैं आधुनिकीकरण के साथ-साथ हथकरघा क्षेत्र में उच्च मूल्य उत्पादों को तैयार कर निर्यातोन्मुख बनाया जाएगा।

आठवीं योजना में वृद्धि दर 5.6 प्रतिशत रहने का लक्ष्य है। इसमें विनिर्माण क्षेत्र में वृद्धि दर 7.3 एवं निर्यातो में 13.6 प्रतिशत वृद्धि का लक्ष्य है। लघु एवं कुटीर उद्‌योगों के लिए वृद्धि- दर का लक्ष्य अधिक रखा गया है। लघु एवं कुटीर उद्‌योगों में बढ़ती रूग्णता पर भी चिन्ता व्यक्त की गई।

नौवी योजना में औद्यौगिक उत्पादन के सूचकांक एव विकास लक्ष्यों का अध्ययन कर विद्‌यार्थी अपने ज्ञान में नवीनतम जानकारी का समावेश करे।

17.4 विकास के मार्ग में बाधाएं

भारत में औद्‌योगिक विकास का मार्ग समतल नहीं है। पिछले वर्षों में भारतीय उद्‌योग पतियों ने कई उतार-चढ़ाव देखें है। मुख्य बाधाओं कों इन शीर्षकों में रखा जा सकता

(1) उर्जा की समस्या - भारत उर्जा के क्षेत्र में प्रारम्भ से ही पिछड़ा रहा। औद्‌योगिकरण के कारण तथा कृषि में बढ़ते उर्जा उपयोग के कारण उर्जा की मांग तेजी से बड़ी परन्तु इसकी आपूर्ति में कुछ धीमी प्रगति के कारण मांग एवं पूर्ति के बीच अन्तराल लगातार बढ़ता रहा। सरकार के पास संसाधनों की कमी व उत्पादन एवं वितरण में भारी छीजत के कारण विद्‌युत क्षेत्र सरकार के लिए घाटे का सौदा रहा। हाल ही वर्षों में भारत सरकार ने विश्रुत उत्पादन एवं वितरण के लिए नियामक आयोग गठित करने का सुझाव दिया। राजस्थान सरकार द्‌वारा, अपने राज्य में राज्य विश्रुत नियामक आयोग का गठन कर दिया गया है। अब विश्रुत क्षेत्र में निजी क्षेत्र की भागीदारी पर बल दिया जा रहा है। भारत सरकार इसके लिए कई विदेशी कम्पनियों से समझौता कर चुकी है।

(2) कुशल श्रमिकों की समस्या - भारत में श्रम शक्ति अकुशल एवं अधिकांश श्रमिक अशिक्षित है। इसके कारण उद्‌योगों के विकास में बाधा आती है।

(3) अच्छी किस्म की मशीनरी की उपलब्धता की समस्या।

(4) कच्चे माल की कमी - कुछ उद्‌योगों को छोडकर भारत में औद्‌योगिक कच्चेमाल की कमी का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उपलब्ध कच्चे माल की किस्म भी घटिया है। इस कमी को: पूरा करने के लिए उद्‌योगों को आयातित माल पर निर्भर रहना पड़ता है।

(5) वित्त की समस्या - वित्त के अभाव में उद्योगों की स्थापना व आधुनिकीकरण नहीं हो सकता। भारत में उद्योगों के आधुनिकीकरण के लिए भारी पूँजी विनियोग की आवश्यकता है। यहाँ का पूँजी बाजार अविकसित है। यद्यपि उदारीकरण के इस दौर में भारतीय पूँजी बाजार ने अपने आपको कुछ हद तक तैयार किया है फिर भी छोटे निवेशकों का विश्वास पूँजी बाजार में अभी नही लौटा है। ऐसी स्थिति में शेयर व ऋणपत्र बेचने में कठिनाई होती है एवं उद्योगों की राज्य पर निर्भरता अधिक है।

(6) औद्योगिक श्रमिकों में अनुशासन की कमी के कारण भारतीय उद्योगों को श्रमादिवसो का अत्यधिक नुकसान उठाना पड़ता. है। इससे हम उत्पादन लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकते।

(7) ऊँची लागतें - भारतीय श्रमिकों की अकुशलता पूँजी की ऊँची लागत, घटिया कच्चामाल तथा उत्पादन में होने वाली रूकावटों से औद्योगिक माल की लागत अधिक आती है। इससे हमारे उद्योगपति उच्च क्वालिटी वाले माल का उत्पादन नहीं कर पाते। वे अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में नही टिक पाते। परिणाम स्वरूप धीरे-धीरे वे रूग्ण हो जाते है एवं इसमें विनियोजित पूँजी डूब जाती है।

17.5 सारांश

भारतीय उद्योगों की विकास यात्रा काफी सुखद नहीं रही है। पिछले पचास वर्षो में औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर 5 प्रतिशत से भी कम रही है। इस लिए कुछ अर्थशास्त्रियों ने इस वृद्धि दर पर चिन्ता व्यक्त की है एवं वे रोजगार के घटते अवसरों से भी चिन्तित है। अब भविष्य में भारतीय उद्योगों को विश्व प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार करना होगा। सरकार ने बीमा क्षेत्र में विदेशी कम्पनियों के प्रवेश पर रोक समाप्त करने का विधेयक दिसम्बर1999 में पास कर दिया है। इस प्रकार अब भारत आर्थिक सुधारों के द्वितीय चरण में प्रवेश कर गया है।

17.6 शब्दावली

1. Basic Industries आधार भूत उद्योग।।
2. Consumer Durables उपभोक्ता टिकाऊ उद्योग।
3. Consumer Non durables उपभोक्ता गैर टिकाऊ उद्योग।
4. Capital goods industries पूँजीगत साज सामान।
5. Wage goods मजदूरी वस्तुएं।
6. Intermideate goodsमध्यवर्ती वस्तुएं
7. Index of Industrial Production औद्योगिक 'सूचकांक।
8. Manufacturing Industries विनिर्माण उद्योग।

17.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें।

1. Govt. of India- Various five year Plans.
2. Govt. of India - Economic Survey (every year)
3. RBI. Report on currency & Finance

इकाई 18

कृषि व उद्योग के मध्य व्यापार शर्तें

(Terms of Trade between Agriculture and Industry)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 व्यापार शर्तें

18.3 व्यापार शर्तों के प्रकार

18.3.1 सकल व्यापार शर्तें

18.3.2 शुद्ध व्यापार शर्तें

18.3.3 आय व्यापार शर्ते

18.3.4 व्यापार शर्तों के उदाहरण

18.4 व्यापार शर्तें व कृषि-उद्योग अन्त : श्रृंखलाएँ

18.4.1 उत्पादन-श्रृंखला

18.4.2 माँग-श्रृंखलाऐं एवं व्यापार शर्तें

18.4.3 बचत श्रृंखलाऐं

18.5 व्यापार-शर्तों की क्रियात्मक उपयोगिता

18.5.1 आर्थिक नीतियों के निर्धारण में उपयोग

18.5.2 क्षेत्रीय श्रृंखलाओं का अध्ययन

18.5.3 साधन आवंटन पर प्रभाव

18.5.4 विदेशी व्यापार व व्यापार शर्त

18.6 व्यापार शर्तों की सीमायें

18.7 सारांश

18.8 निबन्धात्मक प्रश्न

18.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.0 उद्देश्य

अनेक विकसित देशों के अनुभव इस तथ्य की पुष्टि करते है कि आर्थिक विकास के साथ-साथ, देश की घरेलू उत्पत्ति में कृषि के सापेक्ष योगदान में गिरावट की एवं उद्योग के सापेक्ष योगदान में वृद्धि की दीर्घकालीन प्रवृत्ति (Secular Trade) पैदा होती है। परन्तु सकल घरेलू उत्पति में कृषि के सापेक्ष योगदान में कमी का अर्थ यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि आर्थिक विकास में कृषि का महत्व कम हो रहा है, बल्कि कृषिगत विकास ऐसी अधोगामी एवं उर्ध्वगामी श्रृंखलाएं(Backward and forward Linkage) उत्पन्न करता है, जो औद्यौगिक विकास अथवा गैर कृषि क्षेत्र के विकास के लिए अनेक प्रकार की विकास उत्तप्रेरणाओं

(Growth impulses) को जन्म देती है, जिनसे कृषि व उद्योग दोनों परस्पर एक दूसरे के विकास से लाभान्वित होते है।

इन श्रृंखलाओंको तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है-**उत्पादन श्रृंखला** (Production Linkage), **माँग-श्रृंखला** (Demand Linkage) व **बचत-श्रृंखला** (saving linkage) इन श्रृंखलाओंके सेद्धान्तिक, एवं व्यावहारिक विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि उन चर-मात्राओं (Variables) की पहचान की जाय जो विकास, की प्रक्रिया में कृषि व उद्योग के बदलते हुए स्वरूप ओर आर्थिक विकास, में उनकी सापेक्ष भूमिका की व्याख्या में सहायक होते है। इस दृष्टि से व्यापार-शर्तों (Terms of Trade) की अवधारणा महत्वपूर्ण है, क्योंकि इनकी सहायता से कृषि व उद्योग की, आर्थिक विकास में, सापेक्ष भूमिका का संख्यात्मक विश्लेषण(Quantitative analysis) सम्भव है। इसी उद्देश्य के लिए कृषि व उद्योग के बीच व्यापार-शर्तों के इस पाठ को प्रस्तुत किया जा रहा है।

18.1 प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तुत पाठ में निम्न तीन पहलुओं पर प्रकाश डाला जा रहा है-

(1) व्यापार-शती का तात्पर्य, व्यापार-शर्तों के प्रकार एवं उनकी परिगणना(Computation)

(2) व्यापार-शर्तें एवं परस्पर सम्बन्धित आर्थिक क्षेत्रों की क्षेत्रीय श्रृंखलाएं (Sectoral)

(3) लागत, मूल्य आयात-निर्यात, भुगतान-संतुलन आदि नीतियों में व्यापार शर्तों का उपयोग।

इन तीनों पहलुओं की सेद्धांतिक एवं व्यावहारिक विवेचना ही इस पाठ की मुख्य विषय-सामग्री है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के नवीनतम समंकों के संदर्भ में प्रस्तुत की गई है।

18.2 व्यापार शर्ते (Terms of Trade)

किसी आर्थिक क्षेत्र- कृषि, उद्योग, विदेशी व्यापार आदि के लिए अनुकूलता या प्रतिकूलता की अवस्था की जानकारी के लिए व्यापार शर्तों की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है। व्यापार शर्ते किसी एक क्षेत्र की दो परस्पर सम्बन्धित चरराशियों की भौतिक मात्राओं के सूचकांकों के अनुपात (Ratio of volume Indices) अथवा उन चर राशियों से सम्बन्धित इकाई मूल्य सूचकांकों के अनुपात (Ratio of Unit value Indices) के रूप में व्यक्त की जाती है। उदाहरण के लिए विदेशी व्यापार से सम्बन्धित निर्यातो व आयातो के भौतिक सूचकांकों के अनुपात अथवा आयातो व निर्यातो के इकाई मूल्य सूचकांको के अनुपात के अनुपात को प्रतिशत में व्यक्त किया जाता है तो ये प्रतिशत में व्यक्त अनुपात कृषि क्षेत्र की व्यापार-शर्ते कहलाते है। इसी प्रकार उद्योग की व्यापार-शर्तो का आकलन किया जा सकता है।

इस तरह दो क्षेत्रों के बीच भी व्यापार शर्तें ज्ञात की जा सकती है। इन क्षेत्रों के उत्पादों के मूल्य सूचकांको को एक दूसरे के प्रतिशत के रूप में व्यक्त करके अन्त : क्षेत्रीय व्यापार शर्तो को निकाला जा सकता है, जैसे कृषि के उद्योग के बीच व्यापार-शर्ते निम्न प्रकार ज्ञात की जा सकती है।

$$\text{कृषि व उद्योग के बीच व्यापार शर्तें} = \frac{\text{कृषिगत पदार्थों का मूल्य सूचकाक}}{\text{उद्योग की वस्तुओं का मूल्य सूचकांक}} \times 100$$

अथवा

$$\text{उद्योग व कृषि के बीच व्यापार शर्तें} = \frac{\text{उद्योग की वस्तुओं का मुल्य सूचकांक}}{\text{कृषिगत पदार्थों का मूल्य सूचकांक}} \times 100$$

व्यापार शर्तों का गुणांक (Coefficient) जब 100 से अधिक होता है, तब इन व्यापार शर्तों कों कृषि, उद्योग व्यापार आदि सम्बन्धित आर्थिक क्षेत्र के अनुकूल समझा जाता है, और गुणांक के 100 से कम होने पर व्यापार-शर्ते उस क्षेत्र के प्रतिकूल मानी जाती है।

अब हम व्यापार-शर्तों के विभिन्न प्रकारों को समझने का प्रयास करें।

18.3 व्यापार शर्तो प्रकार (Types of Terms Trade)

व्यापार-शर्तें मूलत: तीन प्रकार की होती है- (1) सकल व्यापार शर्तें (Gross Terms of Trade), (2) शुद्ध व्यापार शर्तें तथा Net Terms of Trade), (3) आय व्यापार शर्तें (Income Terms of Trade)。

18.3.1 सकल व्यापार शर्तें (Gross Terms of Trade) दो चर राशियों की कुल भौतिक मात्रा के अनुपात सूचकांक को सकल व्यापार शर्तें अथवा सकल वस्तु-विनिमय व्यापार शर्तें ((Gross terms of Trade or Gross Barter terms of Trade) कहते है। अन्य शब्दों में जो व्यापार शर्तें, मात्रात्मक सूचकांकों (Volume, Indices) के अनुपातो के प्रतिशत में व्यय की जाती है, वे व्यापार-शर्ते सकल व्यापार शर्ते कहलाती है।

इसे एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझा जा सकता है कि यदि हम यह मान लें कि आधार वर्ष (1980-81) में आयातो तथा निर्यातो का सूचकांक 100 है तथा 1990 - 91 में निर्यात सूचकांक बढ़कर 137 एवं आयात सूचकांक बढ़कर 181 हो जाते है तो ऐसी स्थिति में सकल व्यापार शर्ते $\frac{181}{137}100 = 132$ होगी। इसका अर्थ यह होगा कि आधार वर्ष 1980 - 81की तुलना में वर्ष 1990-91 में देश की सकल विनियम व्यापार शर्तों में 32% का सुधार हुआ। व्यवहार में इसका तात्पर्य यह होगा कि 1980 - 81 की तुलना में 1990 - 91 में 3290 अधिक माल आयात के रूप में प्राप्त है, जबकि निर्यातो की मात्रा दोनों वर्ष मैं समान (100) रही है।

आयात-निर्यातो के भौतिक मात्रा के अनुपात सूचकांक की भाँति ही, कृषि के आगत व निर्गत तथा उद्योग के आगत-निर्गत (Inputs and outputs) की भौतिक मात्रा के अनुपात सूचकांक के माध्यम से कृषि व उद्योग की सकल व्यापार शर्तें ज्ञात की जा सकती है। इस व्यापार शर्त को सूत्र रूप में भी निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

$$\text{सकल व्यापार शर्तें} = \frac{\text{एक चर का भौतिक मात्रा सूचकांक}}{\text{दूसरे सम्बन्धित चर का भौतिक मात्रा सूचकांक}} \times 100$$

18.3.2 शुद्ध व्यापार शर्ते (Net Terms of Trade) दो चर राशियों 'के इकाई मूल्यों के अनुपात सूचकांक (Ratio of Unit value Indices) को शुद्ध वस्तु व्यापार शर्तो का नाम दिया है।

उदाहरण के लिए हम यह मान लेते है कि वर्ष 1980 - 81 में, कृषिगत पदार्थो का इकाई सूचकांक व औद्यौगिक उत्पादो का इकाई मूल्य सूचकांक 100 है जो 1990 - 91 में बढ़कर क्रमश : 330 व 290 हो जाता है तो वर्ष 1990 - 91 में कृषि व उद्योग के बीच शुद्ध व्यापार शर्त (Net Terms of Trade) -$\frac{330}{290}$ X100=113.8 होगी। इसका यह अर्थ होगा 290 कि उद्योग की तुलना में व्यापार शर्तें कृषि के अधिक अनुकूल है। यदि इस सूचकांक का गुणक 100 से कम आता तो इसका यह निष्कर्ष निकाला जाता कि कृषि की अपेक्षा व्यापार-शर्तें उद्योग के अधिक अनुकूल है अथवा व्यापार-शर्तें कृषि के प्रतिकूल व उद्योग के अनुकूल है।

इस व्यापार शर्त को सूत्र रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है-

$$= \frac{\text{एक चर का इकाई मूल्य सूचकांक}}{\text{दूसरे सम्बन्धित चर का इकाई मूल्य सूचकांक}} \times 100$$

18.3.3 आय व्यापार शर्ते (Income Terms of Trade) - एक चर राशि के इकाई मूल्य सूचकांक और उसी के भौतिक मात्रा सूचकांक के गुणनफल को दूसरे सम्बन्धित चर के इकाई मूल्य सूचकांक से विभाजित करने पर प्राप्त भजनफल (Quotient) आय व्यापार शर्तों को व्यक्त करता है।

उदाहरण के लिए हम वर्ष 1996 - 97 के भारत के विदेशी व्यापार सूचकांक को लेते हें, जिसमें निर्यात के मात्रा-सूचकांक व इकाई मूल्य सूचकांक क्रमश : 55.7 व 44 है तथा आयात का इकाई मूल्य सूचकांक 35.2 है तो इस स्थिति में वर्ष 1996 - 97 में आय व्यापार शर्तो को निम्न प्रकार ज्ञात किया जायेगा-

$$\text{आय व्यापार शर्ते} = \frac{\text{निर्यात का मात्रा सूचकांक} \times \text{निर्यात का इकाई मूल्य सूचकांक}}{\text{आयात का इकाई मूल्य सूचकांक}}$$

$$= \frac{55.7 x 44.0 x}{35.2} = 69.6$$

आय व्यापार की शर्तों की अवधारणा का प्रतिपादन अर्थ शास्त्र विद् जी. एस. डोरेन्स एवं एच. स्टेहल (G.S. Dorance and Staehle) ने किया। आय व्यापार शर्तो की धारणा, विदेशी व्यापार के क्षेत्र में, अर्द्ध विकसित या विकासशील देशों के लिए, जिनकी आयात क्षमता बहुत कम हो, बहुत उपयुक्त है।

कृषि व उद्योग के बीच भी, भारत जैसे देश के लिए किसानों की नये कृषिगत आगतो (New Agricultural Inputs) को खरीदने की क्रय शक्ति कम. है, और ' 'उद्योग ' को अनेक सुविधाएं प्राप्त है, आय व्यापार' शर्तो की अवधारणा का प्रयोग अधिक सार्थक हो सकता।

18.3.4 व्यापार शतो के उदाहरण (illustration) सकल व्यापार शर्तो, शुद्ध व्यापार शर्तो एवं आय-व्यापार शतो का उदाहरण भारत के विदेशी व्यापार सूचकांक के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है, जो इस प्रकार है-

तालिका 18.1

विदेशी व्यापार का सूचकांक

(आधार = 1978 -79 = 100)

वर्ष	इकाई मूल्य सूचकांक (Unit value Index)		मात्रा सूचकांक (Volume Index)		व्यापार शर्ते		
	निर्यात	आयात	निर्यात	आयात	सकल (Gross)	शुद्ध (Net)	आय (income)
1969-70	44.0	35.2	55.7	64.9	116.5	25.0	69.6
1974-75	78.0	84.5	73.7	77.2	104.7	92.5	68.4
1979-80	105.4	114.1	106.2	116.4	109.7	92.4	98.1
1984-85	169.8	161.7	120.8	156.1	129.2	105.0	126.8
1989-90	323.2	185.5	152.1	224.2	147.4	125.2	190.8
1994-95	494.6	324.6	292.7	408.3	139.5	152.4	446.0
1996-97	504.7	399.6	411.8	511.8	124.3	126.2	519.7

स्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण-1997-98 .596, सारिणी 7.6

तालिका 18.1 के अनुसार सकल व्यापार-शतो की वृद्धि यह परिलक्षित करती है कि निर्यातो की तुलना में आयातो की वृद्धि अधिक है, और शुद्ध व्यापार शर्तो की वृद्धि का संकेत यह है कि आयातो की तुलना में निर्यातो का प्रति इकाई मूल्य उत्तरोत्तर अधिक होता जा रहा है।

एक अन्य उदाहरण कृषिगत वस्तुओं के कीमत सूचकांक एवं औद्यौगिक उत्पादों के कीमत सूचकांकों से सम्बन्धित दिया जा रहा है, जो इस प्रकार है।

तालिका 18. 2

विनिर्माणी वस्तुओं की कीमतो के सापेक्ष में

कृषिगत वस्तुओं की थोक कीमतो के सूचकांक

(Index Numbers of Wholesae Prices of Agricultureal Commodities relative to manufactured Products)

वर्ष	थोक कीमतो का सामान्य सूचकांक	कृर्षिगत वस्तुओं की कीमत का सूचकांक	विनिर्माण वस्तुओं की कीमत का सूचकांक	कृर्षिगत कीमत सूचकांक, विनिर्माण के प्रतिशत के रूप में
1980-90	165.7	174.4	168.6	103.5
1990-91	182.7	198.3	182.8	108.5
1991-92	207.8	236.8	203.4	116.4
1992-93	228.7	255.5	225.6	113.2
1993-94	247.8	271.4	243.6	111.6
1994-95	274.7	307.6	268.2	114.4
1995-96	295.8	330.6	393.1	112.8
1995-97	314.6	358.4	305.0	117.5

1995-98	329.8	371.0	317.0	116.8

स्रोत : आर्थिक सर्वेक्षण 1997-98, पृ. सं: सारणी 5.12

सारणी दो के स्तम्भ (5) कृषि क्षेत्र की व्यापार शर्तो को प्रदर्शित 'करता है, I निम्न प्रकार ज्ञात की गई है-

$$\text{कृषि की व्यापार शर्ते} = \frac{\text{कृषिगत पदार्थों का कीमत सूचकांक}}{\text{विनिर्माण उद्योग की वस्तुओं का कीमत सूचकांक}} X\ 100$$

इसके विपरीत विनिर्माण/ कृर्षिगत X 100 उद्योग व्यापार शर्तो को. सूचित करता है।

अन्य शब्दों में स्तम्भ (3) के समंकों को स्तम्भ (4) के समंकों से विभाजित करके तथा फिर इसको 100 से गुणा करके स्तम्भ (5) में कृषि की व्यापार शर्तों को मालूम किया गया है।

वर्ष 1989 - 90 से 1997 - 98 की अवधि मैं विनिर्माण उद्योग की वस्तुओं की तुलना में कृषिगत पदार्थों का कीमत सूचकांक 103. 5 से बढ़कर 116.8 हो गया है, जो कृषि के पक्ष में व्यापार शर्तों का होना प्रदर्शित करता है।

हाल ही के वर्षों में, कृषि के प्रति व्यापार-शर्तों की अनुकूलता में वृद्धि हुई है। इस स्थितिकेलिए उत्तरदायी कारणों में महत्वपूर्ण वृद्धि, वर्तमान कृषि-नीति द्वारा कृषि-व्यापार वे कुछ प्रतिबन्धो का हटाना, उद्योग के संरक्षण में कमी आदि प्रमुख है।

18.4 व्यापार शर्तें व कृषि- उद्योग अन्त: शृंखलाएँ (Terms of Trade and inter Agriculture Industry linkeges)

कृषि क्षेत्र व औद्यौगिक क्षेत्र के बीच अन्त, निर्भरता (Interdependence) को प्राय : तीन प्रकार की सम्बन्ध श्रंखलाओं द्वारा मापा जाता है। ये श्रंखलाएँ है- (1) श्रंखला (Production Linkage), (2) माँग श्रंखला (Demand Linkage), व (3) बचत श्रंखला (Saving Linkage)। उत्पादन-इखला में उर्ध्वगामी एवं ' श्रंखलाएँ(Forward and Backward) अन्तर्निहित है। इन श्रंखलाओ ' अध्ययन के लिए व्यापार-शर्तो का उपयोग किया जाता है।

18.4.1 उत्पादन- श्रंखला- गैर-कृषि क्षेत्र, विशेष रूप से औद्यौगिक क्षेत्र, उर्वरक, कीटनाशक औषधियां, कृषि-यंत्र, उन्मत उत्गदन तकनीकी आदि कृषि क्षेत्र को उपलब्ध कराते है; जिनसे कृषिगत विकास उतेरित होता है। औद्यौगिक क्षेत्र या अन्य गैर-कृषिगत क्षेत्रों में उत्पादित इन कृषि-आगतो की व्युत्पन्न मांग (Derived demand) को ही अद्योगामी उत्पादन- श्रंखला (Backward Production) कहा जाता है।

कृषिगत उत्पत्ति के रूप में, उद्योग को कृषि द्वारा कच्चे माल की अर्शित को उर्प्तगामी उत्पादन श्रंखला (Forward Productrion linkage) कहते है। इन श्रंखलाऑ के अध्ययन में व्यापार शर्तें सहायक होती है, क्योंकि कृषिगत आगतो के लिए किसान कीमत चुकाता है और कृषिगत-उत्पत्ति (कच्चामाल) के लिए वह कीमतें प्राप्त करता है। इन दोनों

प्रकार की कीमतो के अनुपात सुचकांक कों ही किसानों की व्यापार (Farmer Terms of Trade) कहा जाता है, अर्थात्

$$\text{Farmers's terms of trade} = \frac{Index\ of\ proces\ recived\ by\ the\ farmers}{Index\ of\ prices\ paid\ bt\ the\ farmers}$$

यदि उपर्युक्त प्रकार से परिगणित व्यापार-शर्तों का गुणांक 100 से अधिक आता. है तो कृषि क्षेत्र, अपेक्षा कृत उद्योग लें अधिक अनुकूल स्थिति में माना जायेगा, और यदि यह गुणांक 100 से कम आता है तौ उद्योग अथवा अन्य सम्बन्धित गैर-कृषि क्षेत्र अधिक अनुकूल स्थिति में माने जायेंगे।

इन व्यापार शर्तो के आधार पर ही देश के कृषि मूल्य आयोग औद्यौगिक लागत व मूल्य आयोग कृषि के लिए समर्थन एवं उर्वरक, एवं अन्य आगतो के लिए अनुदान, उद्योग के उत्पादों के लिए प्रशासित मूल्य (Adminstered Prices) आदि के निर्णय लेते है।

18.4.2 माँग-क्षृंखलाऐ एवं व्यापार शर्ते (Demand Likages and terms of trade)- कृषि व गैर कृषि क्षेत्रों के बीच माँग माँग-खलाओं का सम्बंध रोजगार व उपभोग श्रंखलाऑ (Employment and Consumption Linkage) से होता है।

(i) **रोजगार श्रंखलाएं-** रोजगार संखलाओं का आशय उन नई रोजगार सुविधाओं के विस्तार से है, जो कृषि की नई उत्पादन-विधियों के प्रयोग में लाने से पैदा होती है। कृषि की नई उत्पादन विधियों से कृषि की शुद्ध आय में वृद्धि (Increase in value added in agriculture) होती है, जिससे अन्य क्षेत्रों में रोजगार बढ़ता है। कुछ प्रारंभिक अध्ययनों के परिणामों सें ज्ञात होता है कि कृषि की मूल्य-वृद्धि (Value added) में 10 प्रतिशत की वृद्धि से अन्य क्षेंत्रों मे रोजगार की वृद्धि 3 से 4 प्रतिशत तक की हुई है।

इसी प्रकार, कृषि या ग्रामीण क्षेत्र में गैर-खाद्य पदार्थ व्यय (Rural non-food expenditures) सें ऐसी उपभोग श्रंखलाएं उत्पन्न होती है जो औद्योगिक उत्पादों के लिए अंतिम माँग (Final Demand) को प्रभावित करती है। कृषि-उत्पादों की व्युत्पन्न माँग व औद्यौगिक उत्पादों की अंतिम माँग में वृद्धि, अनेक प्रकार की रोंजगार एवं उपभोग की श्रंखलाओं को पैदा करती है, जिनसे कृषि व उद्योग का पारस्परिक विकास प्रभावित होता है। इन श्रंखलाओं के प्रभावों का आकलन करने में व्यापार-शर्तें महत्वपूर्ण प्रमाणित योगदान रखती है।

भारतीय कृषि विशेषज्ञ श्री आर. लाठा, सी रामास्वामी और एस. ऐलेनगोविन (R。 Latha, C。 Ramaswami and S。 Elangoven) के एक अध्ययन में यह पाया गया कि ग्रामीण गैर-खाद्य पदार्थ व्ययके84 प्रतिशत अंश के लिए, कृषि उत्पादन का सूचकांक एवं व्यापार-शर्तें उत्तरदायी थी। इन विद्वानों ने ग्रामीण गैर-खाद्य पदार्थ व्यय को आश्रित चर व कृषि उत्पादन के सूचकांक तथा व्यापार-शर्तों को स्वतन्त्र चर लेते हुए? एक बहु प्रतीपगमन रेखीय फलन (Multiple Linear Function) का परीक्षण किया जिसमें R२ का मूल्य 0.84

पाया गया। R२=0.84 के मूल्य सें उपर्युक्त निष्कर्ष निकाला गया। यह सम्बक पर्याप्त मात्रा में सार्थक है।

18.4.3 बचत श्रंखलाएं (Saving Linkage) - आधुनिक कृषि क्षेत्र न केवल कृषिगत उपकरणों में विनियोजनकेलिए जुत्पन्न माँग ही पैदा करता है, लेकिन कृषि क्षेत्र की आय में भी वृद्धि करता है, और फलस्वरूप ग्रामीण पारिवारिक बचतो (Rural household saving) में भी वृद्धि होती है। अनेक अध्ययनों में यह पाया गया है कि ग्रामीण पारिवारिक बचतें राज्य की घरेलू उत्पत्ति व व्यापार-शर्तों से प्रभावित होती है।

ऊपर उल्लिखित। विद्‌वानो ने ही, ग्रामीण पारिवारिक बचतो कों आश्रित चर व राज्य की घरेलू उत्पत्ति में कृषि के योगदान और कृषि व उद्‌योग के बीच व्यापार शर्तो को स्वतंत्र चर लेते हुए एक बहु प्रतीपगमन रेखीय फलन का परीक्षण किया, जिसमें R२का मूल्य 0.94 आया, जिससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि ग्रामीण पारिवारिक बचतो में 94 प्रतिशत परिवर्तन के लिए फलन के स्वतन्त्र चरों, अर्थात् राज्य की घेरलू उत्पत्ति मे कृषि के योगदान तथा कृषि व उद्‌योग के बीच व्यापार शर्तो को उत्तरदायी माना गया।

उपर्युक्त संखलाओं एवं व्यापार-शर्तों के।विवचन से यह स्पष्ट है कि क्षेत्रों के बीच साधनों के आवंटन, क्षेत्रों की लाभदायकता और क्षेत्रों की वृद्धि दर, सम्बन्धित आर्थिक क्षेत्रों की सापेक्ष बाजार कीमतो के परिवर्तनों से प्रभावित होती है। एक किसान की सम्पनता पर, उन वस्तुओं की कीमतो का जो वह बेचता है और उन आगतो (Inputs) की कीमतो का जिन्हें वह किसान खरीदता है, निश्चित रूप से प्रभाव होता है जैसा कि बताया गया है कि चुकाई गई कीमतो व प्राप्त की गई कीमतो के अनुपात सूचकांक को ही व्यापार-शर्तें कहा जाता है। अन्य शब्दों में इन सापेक्ष कीमतो के अनुपात उत्गदन-मृंखलाऐ, माँग मृंखलाऐ -व बचत मृंखलाऐ कृषि व ख्योग तथा अन्य क्षेत्रों की विकास दरों एवं उनके बीच साधन आवंटन के' प्रभावित करती है। इस प्रभाव की अनुकूलता एवं 'प्रतिकूलता का आकलन व्यापार-शर्तों के माल न से सरलता पूर्वक किया जा सकता है।

18.5 व्यापार-शर्तों की क्रियात्मक उपयोगिता (Functional Importance of Terms of Trade)

18.5.1 आर्थिक नीतियों के निर्धारण में उपयोग- देश की आर्थिक नीतियों, के निर्धारण में व्यापार-शर्तों का महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि व औशैगिक मूल्य नीति के निर्धारण में कृषि व उद्‌योग के बीच व्यापार-शर्तों में होनें वाले परिवर्तन मुख्य आधार का काम करते है। जैसा कि बताया जा चुका है कि देश में कार्यरत यहाँ के कृषि लागत एवं मूल्य आयोग तथा औद्‌यौगिक लागत व कमिन आयोंग, कृाश्गित व औद्‌यौगिक वस्तुयें (की लागत व मूल्य नीतियों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण निर्णय लेने के लिए इन क्षेत्रों की व्यापार-शतें का अध्ययन करते है। व्यापार-शर्तों 'की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता के आधार पर समर्थन कामतें, प्रशासकीय कीमतें, अनुदान की राशि आदि निर्धारित की जाती है।

18.5.2 क्षेत्रीय श्रंखलाओं का अध्ययन (Study sectoral Linkages) व्यापार शर्ते विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों, कृषि, उद्योग आदि के बीच क्रियाशील अन्त : श्रंखलाओं (Inter sectoral Linkages) के अध्ययन के लिए एक विश्लेषण-उपकरण (Analytical Tool) का कार्य करती है। इनके द्वारा उत्पादन, उपभोग, रोजगार, बचत, विनियोजन आद्रि सम्बन्धों की सार्थकताकेगुणांक (Coefficient of singnificance) को ज्ञात करके यह मालूम किया जा सकता है कि व्यापार-शर्तें रोजगार, उपभोग, उत्पादन, बचतो आदि को किस सीमा तक प्रभावित करनी दे। इसका उल्लेख संदर्भित आर. लाठा, सी. रामास्वामी और एस. ऐलेनगोविन के अध्ययन में किया जा चुका है।

18.5.3 साधन आवंटन पर प्रभाव (Impact on resource allocation)- कृषि व उद्योगकेबीच व्यापार-शर्तोकेद्वारा इन क्षैत्रों के बीच साधन-प्रवाहों (Resource Flows) की दिशा प्रभावित होती है। जिस क्षेत्र के पक्ष में व्यापार शर्तें होंती है, उस क्षेत्र की ओर साधानों का प्रवाह अधिक होता है। उदाहरण के लिए भारतीय अर्थ व्यवस्था में संरचनामक परिवर्तनों के कारण, कृषि की ओर सें उद्योग की ओर श्रम-शक्ति का प्रवाह, सकल घरेलू उसादन मैं कृषिकेयोगदान में कमी व उद्येग के योगदान में वृद्धि, कृषि में तकनीकी व संगठनाअक परिवर्तन आदि कृषि व उद्योग के बीच साधन-आवंटन सम्बन्धी परिवर्तनों के द्योतक है, जिमके प्रभाव का मूल्यांकन व्यापार-शर्तों के माध्यम सें किया जा सकता है।

18.5.4 विदेशी व्यापार व शर्त (Forieng Trade & Terms of Trade) - अंतर्राष्ट्रीय व्यापार नीति निर्धारकों द्वारा व्यापार-शर्तो का प्रयोग पृापक रूप से किया गया है। किसी भी देश की भुगतान-संतुलन (Balance of payment) समन्धी कठिनाई या स्थिति कों व्यापार-शर्तो के माध्यम से सुगमतापूर्वक समझाया जा सकता है। अन्तर्यष्ट्रीय व्यापार के लाभों की माप शुद्ध अदल-बदल व्यापार शर्तों के द्वारा आसानी सें की जा सकती है। इसी प्रकार आय व्यापार शर्तो की अवधारणा अर्द्ध विकसित या विकासशील देशों के लिए बहु त उपयोगी है।

संक्षेप में, अन्तर्राष्ट्रीय और घरेलू दोनों प्रकार के व्यापार के लिए नीति निर्धारण में व्यापार शर्तो का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार एक देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के बीच उत्पादन, माँग विनियोजन आदि अन्त : श्रंखलाओं के आर्थिक प्रभाव की माप के लिए भी व्यापार शर्ते एक अच्छें विश्लेषण-उपकरण का काम करती है। क्षेत्रों के बीच अन्त : निर्भरता की व्याख्या व विवेचना भी व्यापार-शर्तों के माध्यम से सरलतापूर्वक की जा सकती' है।

18.6 व्यापार शर्तो की सीमायें (Limitations of Terms of Trade)-

व्यापार शर्तों का यद्यपि घरेलू व्यापार, विदेशी व्यापार, आर्थिक क्षेत्रों के बीच अन्त :निर्भरता व इनके बीच विभिन्न प्रकार की उत्पादन तथा माँग श्रंखलाओं के अध्ययन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, तथापि व्यापार शर्ते आर्थिक विश्लेषण का एक अति सरलीकृत उपकरण है। इनकी माप में अनेक कठिनाइयाँ आती है, और इनसे प्राप्त निष्कर्ष पूरी तरह विश्वसनीय नही कहे जा सकतें।

व्यापार शर्ते सूचकांकों पर आधारित होती है। अत : सूचकांकों की कठिनाइयाँ, व्यापार-शर्तों की भी कठिनाइयाँ होती है। उदाहरण के लिए सही आधार वर्ष व उचित भारांकन विधि के अभाव में व्यापार-शर्तों के निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण हो सकते है।

विदेशी व्यापार के संदर्भ में शुद्ध व्यापार-शर्तो का अनुपात केवल तभी उपयुक्त होता है, जबकि देश के भुगतान शेष व वस्तुओं तथा सेवाओं के निर्यातो की प्राप्तियों तथा आयातो के भुगतानों के अतिरिक्त अन्य किसी भी मद को सम्मिलिति नहीं किया जाता है। यह इन व्यापार-शर्तो की एक बड़ी कमी अथवा सीमा कही जा सकती है।

इसी प्रकार, व्यापार से लाभों का माप करने में सकल व्यापार-शर्तों के निष्कर्ष प्रामक हो सकते है, क्योंकि इन शर्तो के प्रतिकूल होने पर भी व्यापार से लाभ प्राप्त हो सकतै है। इसके अतिरिक्त सकल व्यापार शर्तों से पूँजी की गतियों तथा उसके देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों की जानकारी नहीं हो पाती।

व्यापार शर्तों के निर्धारण में अनेक सांख्यिकीय कठिनायाँ भी आती है, जैसे वस्तुओं की मात्रा तथा वस्तुओंकेमूल्यों में दीर्घकालीन विभिनताएं का मापन शुद्धता तथा यर्थाथता के साथ नहीं किया जा सकता। साथ ही आगतो की मदें और निर्गतो की मदों के मध्य समय अन्तराल भी व्यापार शर्तों के सही मापन में समस्या उतन्न करता है।

बावजूद इन कठिनाइयों व समस्याओं के व्यापार-शर्तें आर्थिक विश्लेषण में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

18.7 सारांश (Summary)

व्यापार शर्ते मूलत : तीन प्रकार की होती है- (1) सकल व्यापार शर्ते (Gross Terms of Trade), (2) शुद्ध व्यापार शर्ते (Net Terms of Trade), तथा (3) आय व्यापार शर्तें (Income Terms of Trade)।

दो चर तशियों की कुल भौतिक मात्रा के अनुपात सूचकांक को सकल व्यापार शर्ते अथवा सकल वस्तु-विनिमय व्यापार शर्ते (gross terms of tarde or gross Barter terms of Trade) कहते है।

दो चर राशियों कं इकाई मूल्यो के अनुपात सूचकांक (Ratio of unit value Indices) को शुद्ध व्यापार शर्ते कहा जाता है।

एक चर राशि के इकाई मूल्य सूचकांक और उसी के भौतिक मात्रा सूकांक के गुणनफल को दूसरे सम्बन्धित चर के इकाई मूल्य सूचकांक से विभाजित करने पष्ट प्राप्त भजनफल (Quotient) आय व्यापार शर्तो को व्यक्त करता है। इनके अतिरिक्त कृषि व उद्योग के बीच व्यापार शर्तों को डन दोनों क्षेत्रों के उत्पादों के मूल्य सूचकांको के अनुपातार, के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

कृषि क्षेत्र व औद्यौगिक क्षेत्र के बीच अन्त : निर्भरता (Interdependence) को प्राय:तीन प्रकार की सम्बन्ध श्रंखलाओं द्वारा मापा जाता है। ये श्रंखला है- (1)उत्पादन इखला(Production Linlage), (2) माँग श्रंखला (Demand Linkage), व बचत श्रंखला

(Saving linkage)। उत्पादन- श्रंखलाओं में उर्ध्वगामी एवं अद्योगामी श्रंखलाएं (Forward and Backward Linkage) अन्तर्निहित है। इन श्रंखलाओंके अध्ययन के लिए व्यापार-शर्तो का उपयोग किया जाता है।

देश की आर्थिक नीतियों के निर्धारण में व्यापार-शर्तों का महत्वपूर्ण! स्थान है। कृषि व औद्यौगिक मूल्य नीतिकेनिर्धारण में, कृषि व उद्योग के बीच व्यापार-शर्तों में होने वाले परिवर्तन मुख्य आधार का काम करतें है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीरा और घरेलू दोनों ही प्रकार के व्यापार के लिए नीति निर्धारण मैं व्यापार शर्तो का महत्वपूर्ण स्थान है।

18.8 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. व्यापार-शर्तो सें आप क्या समझते है? ये कितने प्रकार की होती है? प्रत्यक प्रकार की व्यापार-शर्तों को उदाहरण' देकर समझाइए।

प्रश्न 2. कृषि व उद्योग के बीच व्यापार-शर्तों का अर्थ स्पष्ट करते हुए, उदाहरण द्वारा कृषि व उद्योग के बीच साधन-आवंटन पर इनके प्रभाव को दर्शाइये।

प्रश्न 3. व्यापार शर्तोकेमहत्व व इनकी सीमाओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 4. नीचे दी गई तालिका के अंतिम स्तम्भ में किसान की -शर्तें लिखिए। लगागर-शर्ता के व्यवपार शर्तो के आधार पर निष्कर्ष भी लिखिए।

वर्ष	किसानों द्वारा प्राप्त कीमत का सूचकांक	किसान द्वारा प्रदत्त कीमत का सूचकांक	किसान की व्यापार-शर्ते
1973	279	325	
1975	501	553	
1980	468	685	
1985	723	1138	
1989	1016	1525	
1993	1097	1737	

उत्तर - स्तम्भ (2) में स्तम्भ (3) का भाग देकर, स्तम्भ (4) के व्यापार शर्तें ज्ञात की जायेगी।

प्रश्न 5. नीचे भारत के विदेशी व्यापार का सूचकांक दिया हुआ है। इससे, सकल व्यापार-शर्ते एवं शुद्ध व्यापार-शर्तें एवं आय-व्यापार शर्तें मालूम कीजिए और फिर सारणीकेस्तम्भ (6) (7) (8) की पूर्ति कीजिए।

सारणी : भारत के विदेशी व्यापार का सूचकांक

(आधार: 1978 -79 = 100)

	प्रति इकाई मुल्य सूचकांक		मात्रा सूचकांक		व्यवपार शर्ते		
वर्ष	निर्यात	आयात	निर्यात	आयात	सकल	शुद्ध	आय
1990-91	292.5	267.7	194.1	237.7			
1991-92	369.5	209.1	208.6	228.0			

1992-93	421.5	331.0	222.9	282.0			
1993-94	474.1	327.2	257.5	329.5			
1994-95	494.6	324.6	292.7	408.5			

उत्तर-

(1) सकल व्यापार शर्तें $= \frac{\text{आयात का भौतिक मात्रा सूचकांक}}{\text{निर्यात मात्रा का सूचकांक}} x\ 100$

(2) शुद्ध व्यापार शर्तें $= \frac{\text{निर्यात का इकाई मुली सूचकांक}}{\text{आयात मात्रा का सूचकांक}}\ x\ 100$

(3) आय चापार शर्तें $= \frac{\text{निर्यातका भौतिक मात्रा सूचकांक } x \text{ निर्यात का इकाई मुली सूचकांक}}{\text{आयात का इकाई मुल्य सूचकांक}} = 100$

नोट : प्रश्न 1 से 2 के उत्तर की मूल Text से प्राप्त किये जा सकतै है।

18.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Uma kapila (ed.) ; Indian Economy Since independence, 5th edition, 1994
2. Jagdish Bhagwati : India in Trasition freeing the Ecomony, 1993
3. S. P. gupta, Mid-year Reviw of the Indian Economy, 1996 (konark)
4. एम. सी. वैश्य, सुदामा सिंह : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, अध्याय 10
5. रूद्र दत्त, के. पी. एम. सुन्दरम : भारतीय अर्थव्यवस्था, नवीनतम संस्करण, अध्याय 24,,25, 34, 38｡
6. ए. एन. अग्रवाल : भारतीय अर्थव्यवस्था, नवीनतम संस्करण, अध्याय, 5, 13, 22, 34, 39, 40
7. आर्थिक सर्वेक्षण 1997-98

लेख (Articales)

1. S.S Acharya: Agriculture - Industry Linkage Public Policies And Some Areas Of Concern, Agricultural Economic Research Review, Vol 10 (2) 1997

2. R. Latha, C. Ramaswamy And S. Elangovan An Economic Analisis Of Changing Agriculture Industry Linkage And Its Impact An Arg. Dev., Agr. Econ. Research Review Vol. 10 (2) 1997

3. Amita Shah: Conflicts Over Use Of Natural Resources: Need For Transfer Of Resources From Industry To Agriculture, Age. Econ. Review Vol. 10 (2), 1997

4. Stephen J.Vogal : Structural Changes Agriculutre Production Linkages and Agricultural Demand Industrialisation- Oxford Econ.papers 46 (1994) 136-156

5. K. Krishamoorthy, V. Pandit, T. Palnivel. P. Saibaba & D Partap: Indian Economy, 1995-96 To 1997-98: Alternative Scenarios, Epw, March 16,1996

इकाई 19

भारत में क्षेत्रीय विषमताएं

(Regional Disparities in India)

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 प्रति व्यक्ति' राज्य घरेलू उत्पादन सं अन्तर्प्रान्तीय विभिनतायें

19.3 औद्योगिक एवं आधारिकसंरचना विकास का स्वरूप

19.4 क्षेत्रीय विषमता में कृषि का योगदान

19.5 क्षेत्रीय विकास के संयुक्त सूचक

19.6 सारांश

19.7 शब्दावली

19.0 उद्देश्य

इस इकाई कों पढ्ने के बाद आप :

* भारतकेविभिन्न राज्यों की आर्थिक विकास में विषमताओं के स्वरूप को जान जावेंगे;
* योजनाबद्ध विकास के काल में अन्तर्क्षेत्रीय और अन्त : क्षेत्रीय असमता में वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारकों का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे;
* अन्तर्राज्य और अन्त : राज्य असमताओं के माप के लिए उपलब्ध तरीकों का ज्ञान प्राप्त कर लगे।

19.1 प्रस्तावना

भारत में सामाजिक-आर्थिक विषमताओं के कारण पैदा हु आ तनाव एवं खिंचाव भयप्रद स्थिति में पहुं च गया है। वे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में संशोधित करने वाले आधार को ही झकझोर रहे है। इसलिए यह आवश्क हो गया है कि देश में विद्यमान क्षेत्रीय एवं अन्य विशमताओ और उनके लिए उत्तरदायी कारणों की बेहतर समझ पर ध्यान केन्द्रित किया जाय।

मिश्रित अर्थप्रणात्नी में 1950 में सार्वजनिक क्षेत्र में समुचित विनियोगकेसाथ निजी उद्‌यम' कों प्रेरणा और नियंत्रण की प्रणाली के चार दशकों ने स्थिर कीमतो पर 3-5 प्रतिशत प्रति वर्ष की चक्रवृद्धि विकास दर प्रदान की। इस अवधि में जनसंख्या वृद्धि दर 2 - 5 प्रतिशत से घटकर2 - 1 प्रतिशत रह जाने से प्रति व्यक्ति आय में वर्तमान वृद्धि दर लगभग 1 - 5 प्रतिशत प्रति वर्ष है। यह चीन के अतिरिक्त अन्य न्यून आय देशो की औसत विकास दर से तुलनीय है. और वास्तव मे कुछ अधिक ही है। (विश्व बैक 1989) देश के बड़े आकार ओर उपनिवेशी उत्तराधिकारी में प्राप्त संरचनात्मक अड़चनों कों देखते हु ये इस विकास निष्पादन को नगण्य कहकर विसर्जित नहीं किया जा सकता। यह भी महत्वपूर्ण है कि धारित संविर्धी के

उद्देश्य को आगे बढ़ाने हुयें -भारत अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनैतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता और राष्ट्र के भीतर जनतंत्रग़त्मक ढाचा बनाये रखनें में सफल रहा है। यह नगण्य उपलब्धि नहीं है।

भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों का पुनरीक्षण बताता है कि निमीजकों ने समानता के साथ विकास के दोहरे उद्देश्य को प्राप्त करनें का प्रयत्न किया है। विकास के, मोर्चे पर हमारी उपलब्धियां, जैसा कि ऊपर बताया गया है, यथोचित प्रतीत हौती. है। तथापि समानता के मोर्चे पर हमारी उपलब्धियों में बहुत कुछ वांछनीय करना शेष है। इस इकाई में हम अपने विवेचन को क्षेत्रीय असमानता तक सीमित रखेंगे।

19.2 प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पादन में अन्तर्प्रान्तीय विभिन्नतायें

भारत में क्षेत्रीय विकास के बदलते हुये ढांचे का विश्लेषण कुछ सूचकों जैसे प्रति व्यक्ति शुद्ध राज्य घरेलू उत्पादन, राज्य घरेलू उत्पादन में वृद्धि या प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पादन में वृद्धि का उपयोग करके किया जा सकता है। यहां यह भी स्मरणीय है कि राज्य घरेलू उत्पाद या क्षेत्रीय आय विकास का एक स्तुत्य माप है क्योंकि यह सामाजिक विकास के कई पहलुओं जैसें मृत्यु दर में परिवर्तन, साक्षरता दर, अपराध दर आदि को ध्यान में नहीं रखता। साथ ही यह भी ध्यान देनें योग्य तथ्य है कि एक कल्याणकारी राज्य में, जैसा कि भारत को होना चाहिये, बहुत सी अनिवार्य वस्तुएं एवं सेवायें बाजार शक्तियों सें निर्धारित होने वाली कीमत से कम कीमत पर प्रत्यक्ष रूप से या राज्य हस्तक्षेप द्वारा प्रदान की जाती है अथवा कभी-कभी तो उत्पादन लागत से भी कम कीमत पर उपलब्ध कराई जाती है। ऐसी स्थिति में राज्य घरेलू उत्पादन, जो प्रचलित कीमत पर एक वर्ष में हुयें उत्पादन को मूल्य है, उत्पत्ति के वास्तविक सामाजिक मूल्य का न्यून प्राक्कलन है।

इसके अतिरिक्त, बाजार की अपूर्णताये भी वस्तुओं और सेवाओं की कीमतो मे गम्भीर विरुपण के रटप में परिभाषित होती है।

राज्य घरेलू उत्पाद का अनुमान लगाने एवं कालिक तुलना करने में कुछ तकनीकी कठिनाइयां भी है। इस हेतु समंक निम्न सोतो से प्राप्त किये जाते है :

(1) केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन चालू कीमतो पर 1960-61 से आगे के राज्य घरेलू उत्पादनकेअनुमान कुछ समय अन्तराल के साथ उपलब्ध कराता है। ' यदि आप वास्तविक आय में वृद्धि की गणँना करना चाहतें है तो आपको कीमत सूचकांकों, का उपयोग करना पड़ेगा और परिणाम प्रयुक्त किये गयें सूचकांकों के आधार पर भिन्न-भिन्न होंगे। कुछ विद्वानों ने अलग-अलग राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न सूचकांकों का उपयोग करने. की वकालत की है और ऐसा करने पर विषय स्वाभाविक रूप से और अधिक जटिल ही जावेगा।

(2) राज्य घरेलू उत्पादन के चालू एवं स्थिर मूल्यों पर अनुमान राज्य सांख्यिकी विभागों से भी प्राप्त होते है, जिसका संकलन कैंन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा किया जाता है। ये अनुमान कैंन्द्रीय सांख्यिकी संगठन के अनुमानों से काफी भिन होते हैं, क्योंकि इन विभागों द्वारा

---

(1) तुलनात्मक अनुमान एक संगठन Centre for Monitoring Indian Economy(CMIE) द्वारा भी उपलब्ध कराये जाते हैं। इस विश्लेषण में इन्ही का उपयोग किया गया हैं।

असंगठित द्वितीयक क्रियाओं और तृतीयक क्षेत्र की आय का अनुमान लगाने की प्रक्रिया से काफी अन्तर है। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन की कार्य-प्रणाली मुानकीकृत होने से केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन सें प्राप्त समंकों को राज्य सांख्यिकी विभागों एवं अन्य श्रोतो सें प्राप्त समको की अपेक्षा श्रेष्ठ माना जाता है। दूसरी ओर राज्य सांख्यिकी विभाग सोत से प्राप्त अनुमानों का यह लाभ है कि ये अनुमान किसी आधार वर्ष की कीमतों एव चालू कीमतों पर प्राप्त होते है।

(3) पचास की दशाब्दि के सम्बंध मैं केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन ने समकों का संकलन नहीं किया लेकिन राष्ट्रीय व्यावहारिक आर्थिक अनुसंधान परिषद (National Council of Applied Economic Reachersh) ने अपनी शोध परियोजनाओं के अन्तर्गत वर्ष1950 - 51, 1955 - 56 एवं 1960 -61 के लिए एक समान अनुमान-प्रक्रिया अपनाते हुये 1960 - 61 की कीमतो को आधार लेते हुए राज्य आय के अनुमान लगाये है।

सारणी- 191 में दो: विभिन स्रोतो के राज्यानुसार राज्य घरेलू उत्पादन के अनुमान उनके कोटि मूल्यों (Rank value) के साथ दिये गये है। सारणी 19.2 एवं 19.3 जैसे ही अनुमान जो केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन एवं भारतीय अर्थव्यवस्था के मोनिटरिग के लिए केन्द्र से प्राप्त है। इन समकों के विश्लेषण से प्रकट होता है कि क्षेत्रीय असंतुलनों में कोई कमी नहीं आई है। तुलनात्मक रूप से पिछड़े राज्य जैसे बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश आठवीं दशाब्दि में भी ' अल्प-विकसित ही है। दूसरी ओर विकसित राज्य जैसे पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र एवं गुजरात सारणी के दूसरी ओर की अपना स्थिति को बनाये हुये है।

विभिन्न समय बिन्दुओं पर असमानता की तुलना करने हेतु हमें एक संक्षिप्त माप की गणना करनी होगी। संक्षिप्त माप ऐसा हो जो औसत मूल्य से विभिन्न अवलोकनों के विचलनों के समुच्चय कों एक सूचकांक के रूप में प्रस्तुत करे। हमारे इस विश्लेषण हेतु विचरण गुणांक, जो प्रमाप विचलन में सामान्तर माध्य का भाग देकर 100 से गुणा करने पर प्राप्त होता है, उपयुक्त माना गया है। आप देख सकते है कि समय के अनुसार इस असमानता सूचकांक में वृद्धि ही हुई है। सारणी 19.3 से स्पाट है कि विचरण गुणांक जो 1960 - 61 में 21.9 प्रतिशत था 1980 -81 मैं 33.3 प्रतिशत हो गया। सारणी 19.2 में यह वर्ष 1970 - 71 में 25.4 प्रतिशत से, बढ़कर 1981 - 82 में 28.6 प्रतिशत हुआ है। इसी प्रकार की प्रवृति सारणी 19.1 में भी परिलक्षित होंती है। यहां यह ध्यान देने यौग्य है कि अलग अलग सारणियों में राज्य घरेलू उत्पादन के अनुमान उसी वर्ष मैं भिन्न भिन्न है अथवा दो भिन्न सारणियों में लगातार दो वर्ष में भिन्न है, और इसी प्रकार असमानताकेअनुमान भी। इस भिनता का कारण परिकलन प्रक्रिया में अन्तर और जैसा कि ऊपर बताया गया है, समंक उपलब्ध कराने वाले संस्थानों द्वारा भिन्न-भिन्न कीमत समायोजकों का उपयोग करना है। इसलिए दो विभिन्न श्रोतो/सारथियों के आँकड़ो की तुलना करके असमानता में परिवर्तन की प्रवृति के सम्बंध में निष्कर्ष निकालते समय सावधानी आवश्यक है। उपरोक्त समंको के आधार पर यह तर्क किया जा सकता है कि पचास के दशक में असमानताएं कुछ घटी लेकिन उसके बाद के वर्षा में बढ़ी है। क्षेत्रीय असमानता पर किये गये अन्य कई अध्ययन भी इस धारणा की पुष्टि करतें है।

19.3 औद्योगिक एवं आधारिक-संरचना विकास का स्वरूप

प्रति व्यक्ति क्षेत्रीय आय अनुमानों से प्राप्त सही परिदृश्य के अतिरिक्त हमें अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान असमानता का भी विश्लेषण करना चाहिए। यह उपयोगी होगा कि क्षेत्रीय विश्लेषण को भारत में औद्योगिक विकास (विनिर्माण, विद्युत, और गैस आदि सहित) के स्थानिक ढ़ाचे से प्रारम्भ किया जाय, क्योंकि भारत की राष्ट्रीय आय में चालू कीमतों पर इस क्षेत्र का अंश दान गत चालीस वर्षों में लगभग 15 प्रतिशत से बढकर 25 प्रतिशत से भी अधिक हों गया है।

19.3.1 राज्य स्तर पर परिदृश्य

सारणी 19.4 से स्पष्ट परिलक्षित होता है कि महाराष्ट्र बंगाल, गुजरात, तमिलनाडू, पंजाब एवं हरियाणा राज्यों में श्रमशक्ति का गैर - घरेलू विनिर्माण उद्योगों में लगा प्रतिशत काफी ऊँचा है। ये 6 राज्य मिलकर संगठित विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार मैं 55 प्रतिशत योगदान करते है यद्यपि 1961 - 81 की अवधि में इन राज्यों के संयुक्त अंश में थोडी कमी हुई है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण कमी पश्चिमी बंगाल? के अंश में और कुछ कमी महाराष्ट्र मैं हुई है (गिरावट की यह प्रवृत्ति सारणी 19. 6 में देखी जा सकती है)। यह कहा जा सकता है कि कुछ पिछडे राज्यों जैसे कर्नाटक, मध्य प्रदेश, बिहार, केरल एवं उड़ीसा में औद्योगीकरण की प्रक्रिया कुछ तेज रही है, जिसके परिणाम स्वरूप गैर-घरेलू विनिर्माण श्रमिकों के प्रतिशत एवं प्रति व्यक्ति जोड़े गये मूल्य के विचरण गुणांक में कमी हुई है। (सारणी 19. 4) सारणी 19. 5 उद्योगों में प्रति व्यक्ति विश्रुत उपभोग को बताती है- जो कि औद्योगीकरण एवं तकनीकी विकास के स्तर का सूचक है। साराग़ि से स्पष्ट है कि यद्यपि औसत विश्रुत उपभोग 1961 - 81 के मध्य 32 किलोवाट से बढ़कर 83 किलोवाट हों गया है, विषमता सूचक 6.7 प्रतिशत से घटकर 45 प्रतिशत रह मया है। अस्सी के, दशक में विषमता सूचक में थोड़ी वृद्धि हुई है।

उद्योंगोंकेवार्षिक सर्वेक्षण में दी गई सूचना के अनुसार संगठित औद्योगिक क्षेत्र में अचल राजी, रोजगार एवं जोडे गये मूल्य के राष्ट्रीय योग में विभिन्न राज्यों के हिस्सों को देखना भी उपयुक्त होगा। सारणी 19. 6 में 1973 - 74 - 1981 - 82 में राष्ट्रीय योग में प्रमुख राज्यों का प्रतिशत अंश दिखाया गया है। पश्चिम बंगाल एवं महाराष्ट्र जैसे विकसित राज्यों का अंश घटा है जबकि उत्तर प्रदेश एवं बिहार जैसे पिछड़े राज्यों का बढ़ा है। इस प्रकार के अल्प परिवर्तन सें विभिन्न राज्योंकेमध्य औद्योगिक संकेन्द्रण सूचक में कमी आवेगी।

औद्यौगिक विकास के स्तरकोअन्य सूचकोंकेसमुच्चय के द्वारा भी मापा जा सकता है। प्रनि व्यक्ति औद्योगिक उत्पादन, राज्य घरेलू उत्पादन में विनिर्माण का अंश, प्रति हजार जनसंग्बा पर विनिमर्हग प्रतिष्ठानारोजगार, आदि सूचकों पर आधारित विश्लेषण भी बताता है कि साठ एवं सत्तर के दशक में औद्योगिक संकेन्द्रण में कमी हुई है।

उपर्युक्त विश्लेषणकेअनुसार औद्योगिक एवं आधारित संरचना विकास में अन्तर्राज्य विषमता में जो कमी हुई है उसके लिए मुख्य रूप से केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा अपनायी गई नीतियां उत्तरदायी है। प्रत्येक राज्य सरकार निजी पूंजी को आकर्षित करने के लिए उच्च

स्तरीय आधारित संरचना उपलब्ध कराने हेतु आगे आई है। चूंकि भारत में पूंजी पूंजीपति के साथ चलती है इसलिये उन्हें आकर्षित करने हेतु कुछ शहरी केन्द्रों पर आधुनिक सुविधायें एवं आधारित संरचना उपलब्ध कराना आवश्यक हों गया। ऐसे शहर जहाँ सुविधपूर्ण आवासीय वातावरण निर्मित किया गया (कम से कम कुछ बस्तियों में) उनमें राज्यों की राजधानियाँ एवं कुछ पुराने नगर शामिल है। आधारित संरचना एवं जन सुविधाओं में विनियोग का बड़ा भाग इन केंन्द्रों पर गया, जबकि घोषित उद्देश्य उद्योगों का विकेन्द्रीकरण छोटे कस्बों में करना और ग्रामीण औद्योगीकरण को बढावा देना था। इन आधारिकसरचना सुविधाओं और अनुदानित जन सुविधाओं ने तुलनात्मक रूप से समृद्ध वर्गकोइन केन्द्रों की ओर आकर्षित किया जिनमें वरिष्ठ प्रशासक, उद्यमी एवं कुशल श्रमिक शामिल हुँ। राज्य सरकारों (कभी केन्द्रीय सरकार) ने ये सुविधायें प्रत्यक्ष रूप से अथवा उनके द्वारा स्थापित बोडो एवं उद्यमों के द्वारा उपलब्ध कराई है। इन केन्द्रों के नगर निगमों का कर एवं गैर-कर आय आधार बहुत अच्छा है, इसीलिये ये छोटे नगरों की स्थानीय निकायों की अपेक्षा आधारभूत सुविधायें उपलब्ध कराने पर अधिक व्यय कर सकते है। इन केन्द्रों पर प्रति व्यक्ति नगरीय व्यय एक औसत शहरी केन्द्र का साढें तीन से चार गुना के मध्य था (नगरीय मामलों का राष्ट्रीय संस्थान : 1983)। कभी-कभी इन बड़े नगरों के निगमोंकेपास पूँजीगत व्यय करनें हेतु भी धन उपलब्ध होता है। इस प्रकार इन शहरों को आधारिक संरचना एवं जनोपयोगी सुविधाओं का लाभ मिला, जो पिछड़े क्षेत्रों में वाले पूँजीगत अनुदान एवं प्रेरणाओं की अपेक्षा अधिक भारी था। परिणाम स्वरूप, उद्योगपतियों ने इन केन्द्रो पर रहने, राज्य हस्तक्षेप से उपलब्ध कराई गई सुविधाओं का उपभोग करने और अपनी उत्पादन इकाइयों को इन शहरों में अथवा इनकी परिधि में स्थापित करनें को प्राथमिकता दी। इससें उन्हें अपनी फर्मों के लिए कुशल श्रमिक, प्रशासक एवं अन्य कार्मिक सुलभ हों गये, जों कि उन्ही की तरह इन शहरों की ओर आकर्षित थे। जहां इन शहरों के निकट पिछड़े हुए जिले थे, उद्योगपतियों को अपनी इकाइयां उनमें स्थापित करना लाभप्रद लगा। ऐसा करके वे केन्द्र व राज्य सरकार की योजनाओं में पिछड़े क्षेत्रों में औद्यौगीकरणकोप्रोत्साहित करने के दिए गये लाभ उठा सकते थे और उसी समय स्वय इन बड़े शहरों में रहकर अनुदानित सुविधाओं का उपयोग भी कर सकते थे।(2)

19.3.2 राज्यों में उद्योगों का स्थानिक संकेन्द्रण

औद्योगिक विकास की शैली का विश्लेषण करने वाले कुछ अध्ययनों में, इस अध्ययनकेसमान ही, मुख्यत : ' राज्य स्तर पर वस्तु स्थिति की ओर ध्यान. दिया है। यद्यपि यह सत्य है कि राज्य स्तर से नीचे वियुक्त औद्योगिक आर्थिक समको की अनुबनध्ति के कारण अन्तर्राज्यीय विचरण अथवा शहर-पृष्ठ प्रदेश सम्बन्धों में परिवर्तन की समीक्षा करना

---

(2) पिछड़े क्षेत्रो के विकास पर राष्ट्रीय समिति (1918) ने भी माना है कि केन्द्रिय प्रेरणाओं के लाभ कुछ जिलों तक केन्द्रित रहे, मुख्य रूप से पश्चिमी एवं दक्षिण में। इनमें से अधिकांश जिले तुलनात्मक रूप से विकसित औद्योगिक केन्द्रो के निकटवर्ती पाये गये।

कठिन है। फिर भी यदि हमारा विश्लेषण केवल अन्तर्राज्यीय विचरणों तक सीमित रहता है तो औद्योगिक 'संकेन्द्रणकेसर्वाधिक महत्वपूर्ण आयाम की उपेक्षा हो जायेगी। स्थानिक असतुलन का अधिक महत्वपूर्ण पहलू राज्य मैं अन्तर्क्षेत्रीय असमानताओं एवं विनिर्माण कार्यकलापों. का कुछ बड़े शहरों एवं उनके पृष्ठ प्रदेशों में केन्द्रित होना है, जैसा कि ऊपर बताया गया है। अत : उपलब्ध समंक आधार में कमियां होते हुए भी इनका अनुभवाश्रित विश्लेषण किया जाना चाहिये।

(2) यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि भारत ने उपनिवेशी काल से विरासत में प्राप्त स्थानिक ढांचे को आधार बनाकर स्वतंत्रता के समय अपना औद्योगिक विकास का कार्यक्रम प्रारंभ किया। कुछ बन्दरगाह नगरों एवं उनके अनुषंगी कस्बों पर अत्यधिक संकेन्द्रण इस ढांचे की विशेषता थी। उपनिवेशी कात में विकसित परिवहन एवं व्यापार पद्धति अत्यधिक केन्द्राभिमुखी थी और उद्योगों को कच्चे मालकेस्रोतो से असम्बद्ध करने के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी थी। स्वतंत्रताकेबाद निर्मित विपनण एवं सांस्थानिक प्रणाली ने इनमें से कई केन्द्रों पर और अधिक संकेन्द्रण कों किया। उन्होंने संसाधन आधार से दूर औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को सुदृढ किया। लैफबर एवं दत्ता चौधरी (1971) ने पाया है कि कोयला एवं इस्पात का उपयोग करने वाले उद्योग उत्तरी-पश्चिमी भारत में केन्द्रित थे, जिससे कच्चे माल का पूर्वी क्षेत्रों से बहुत दूर संचलन आवश्यक था, जो विद्यमान स्थानिक ढांचे के इष्टतम न होनेकोप्रतिविम्बित करता है। यही बात अन्य कई साधनों पर आधारित उद्योगों के सम्बंध में कही जा सकती है। औद्योगीकरण प्रक्रिया के स्वाभाविक परिणा:मकेरूप में नगरों के उनके पृष्ठ-प्रदेशों से अनुबन्ध कमजोर हो गये है। नगरों मैं उद्योगों का बेतरतीब विकास ऐसे औद्योगिक समूह खे नहीं उभारता जिनमें क्षेत्र में उपलब्ध साधनों का उपयोग करते हुए तकनीकी दृष्टि से परस्पर जुड़े हुए क्रिया कलाप हों। व्यक्ति स्तर के कई अध्ययन प्रकट करते है कि इन नगरों में ऐसी औद्योगिक इकाइयों का विकास हुआ जो विभिन्न प्रकार की प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित थी और विभिन्न प्रकार के साधनों का उपयोग करती थी। इन इकाइयों के स्थान निर्धारण में कच्चे माल एवं अन्य साधनों की उपलब्धि से अधिक आधारिक संरचना और संस्थागत एवं विपणन सुविधाओं ने मुख्य भूमिका निर्वाह की है।

व्यापार एवं परिवहन शहरी अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण संघटक के रूप में उनमें है, जिन्होंने शहरों में उत्पादन प्रक्रिया को दूरस्थ स्थानों से कच्चा माल लाकर पुष्ट किया है। भारतीय रेलमार्गो से औद्योगिक कच्चे माल के संचालन के समंक औसत परिवहन की दूरी में महत्वपूर्ण वृद्धि बताते है, जो अल्प दूरी के यातायात के रेल' भार्ग से सड़क मार्ग पर स्थानान्तरित होनेकेसाथ उद्योगों के कच्चे माल के. सोत से दूर कुछ बड़े नगरों में बढते हुये संकेन्द्रण को प्रतिबिम्बित करते है। चयनित मध्यवर्ती वस्तुओं के लिए निर्देशित कीमतो की नीति और उन्हें सभी जगह समान रखने ने इस प्रवृत्ति को सुदृढ किया है। ये सभी घटक (तत्व) देश में नियोजित आर्थिक विकास की प्रक्रिया में नगर-पृष्ठ प्रदेश सम्बंधों को कमजोर करने के लिए उत्तरदायी रहे है।

जिला एवं नगर/कस्बा स्तर पर विनिर्माण में रोजगार के बंटन के परिवर्तनशील ढांचे का अध्ययन रोचक परिणाम प्रदान करता है। प्रथम श्रेणी के शहरों (जहां की जनसंख्या एक लाख से अधिक है) में 1971 में भारत की जनसंख्या का 12 प्रतिशत भाग रहता था, जबकि गैर-

घरेलू विनिर्माण रोजगार (पुरुष) में उनका अंश 50 प्रतिशत था।[3] कुल रोजगार में गैर-घरेलू विनिर्माण रोजगार का प्रतिशत इन नगरों में लगभग 30 प्रतिशत था जबकि सभी छोटे कस्बों के लिए यह अनुपात केवल 15 प्रतिशत था। ग्रामीण क्षेत्र इससे भी अधिक क्षुब्धता पैदा करो वाला दृश्य उपस्थित करते है जहां गैर-घरेलू एवं घरेलू विनिर्माण में लगे श्रमिकों का प्रतिशत 6 प्रतिशत जितना कम था।

यदि हम 1971 'के शहरों और उनके पृष्ठ-प्रदेशों पर विचार करें तो हम 1981 में उनके विनिर्माण क्रिया-कलापों में महत्वपूर्ण वृद्धि पाते है। उप गमन पद्धति के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि 1971 में इन शहर में देश के कुल पूँजी निर्माण का 80 प्रतिशत से भी अधिक विद्यमान था और उसके बाद यह अंश और भी बढ़ा है। इस प्रकार, अन्तर्राज्य असमानताओं मैं कमी जहां सन्तुष्टि का कारण हो सकती है, वही औद्योगिक विनियोग का कुछ बड़े नगरीय केन्द्रों में एवं उनके पास अत्यधिक संकेन्द्रण चिन्ता का कारण है।

साठ एवं सत्तर के दशक में गैर-घरेलू एवं घरेलू आधारित विनिर्माण क्षेत्र के विकास के स्थानिक ढांचें का असामाजिक विश्लेषण प्रकट करता है कि प्रथम श्रेणी के नगर वृद्धिगत रोजगार के बड़े भाग को आकर्षित करने में सफल रहे है। कई छोटे एवं मध्यम कस्बों मे अपने घरेलू एवं गैर-घरेलू आधारित विनिर्माण क्रिया-कलापों को खो दिया। यह हानि उनके प्रगतिरोध और जनसंख्या में कमीकेलिए उत्तरदायी थी। दूसरी ओर सीमित छितराव की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप महानगरोंकेअड़ोस-पड़ोस में कई छोटे कस्बे एवं बड़ी संख्या में नये कस्बे विकसित हुए

19.4 क्षेत्रीय विषमता में कृषि का योगदान

आप आश्चर्य कर सकते है किस प्रकार उद्यौगो के विकास एवं विभिन्न सामाजिक आर्थिक आधारिक संरचना, क्रमश : सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र मुख्य है, ये अन्तर्राज्य असमानतायें घटते हुए भी प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पादन के विचरण गुणांक में साठ के दशक से वृद्धि हुई है, जैसा कि सारणी 19.1, 19.2 एवं 19.3 से स्पष्ट है। इसकी स्पष्ट व्याख्या प्राथमिक क्षेत्र, मुख्य रूप से कृषि, और उसका स्थानिक विकास करता है, जिसकी चर्चा हम अब करेगें।

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से भारतीय अर्थव्यवस्था के कृषि क्षेत्र में हुये परिवर्तन दूरवर्ती महत्व के है। कृषि सुधारों ने सामन्ती बेड़ियों को ढीला किया है और तकनीकी आपदाओं के उपयोग ने कई क्षेत्रों में उत्पादकता एवं उत्पादन को बढ़ाया है। कृषि उत्पादन 1950-85 की अवधि में काफी कालिक उच्चावचनों के साथ 2.9 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ा है।।केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (CSO) : 19881 यह विकास साठ के दशक के प्रारंभ सें तकनीकी आदाओं यथा उर्वरक, नल-कूप, सुधरे बीज एवं ट्रेक्टरों के बढ़ते हुये उपयोग से सम्बद्ध रहा है।

(3) भारतीय जनगणना में महिला रोजगार समंकों में परिभाषा सम्बंधी समस्याये होने के कारण पुरुष रोजगार पर विचार किया गया है।

यह आश्चर्यजनक है कि साठ के दशक में बहुचर्चित तकनीकी प्रस्फोट, जिसे भारत में हरित क्रान्ति कहा जाता है, के बावजूद उत्पादन में वृद्धि दर पचास के दशक की अपेक्षा कम थी। हनुमंत राव (1975) ने बताया कि प्रतीपगमन विश्लेषण के आधार पर अनुमानित यौगिक विकास दर जो पचास के दशक में 33 प्रतिशत थी साठ के दशक में घटकर 21 प्रतिशत रह गई। आधार एवं अन्तिम वर्षों के लिए त्रिवर्षीय औसत लेकर भल्ला एवं अलध (1976) ने अनुमान लगाया है कि 1954-65 की अवधि में वार्षिक वृद्धि दर लगभग 2.60 प्रतिशत एवं 1962-73 की अवधि में 2. 25 प्रतिशत थी।

उत्पादन में यह वृद्धि दो भागों में वियोजित है, प्रथम श्रेय 'कृषि के अन्तर्गत क्षेत्र में वृद्धि को और दूसरा (अवशेष घटक) मुख्यत : कूम की उत्पादकता में वृद्धि को है। इस प्रयोग के आधार पर यह बताया जा सकता है कि पचास के दशक में उत्पादन में वृद्धि का महत्वपूर्ण क्षेत्र में वृद्धि के कारण है, जबकि बाद के दशक में ऐसा नहीं है। साठ और उसके बाद के दशकों में उत्पादन में वृद्धि मुख्यत : उत्पादकता में वृद्धि के कारण है, जो कृषि विकास के लिए अपनाई गयी शैली में परिवर्तन को प्रतिबिम्बित करती है। साठ के दशक के प्रारंभ में सरकार ने 'विकास समर्थता' वाले कुछ जिलों को चुनकर उनमें सीमित पूँजी आदा लगाने का निर्णय किया ताकि अधिकतम परिणाम मिल सके। इसके परिणामस्वरूप भूमि एवं श्रम की उत्पादकता में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई, लेकिन केवल कुछ क्षेत्रों में। परिणाम स्वरूप, साठ के दशक में क्षेत्रीय विषमताओं में वृद्धि हुई। तब से इस नीति से कोई मुख्य विचलन नहीं हुआ है। कृषि में क्षेत्रीय असंतुलन गत कई वर्षों से निरंतर बढ़ रहा है।

सारणी 19.4 प्रमुख राज्यों में प्रति श्रमिक कृषि उत्पादकता समंक विषमता सूचकांक के साथ बताये गये है। इससे ज्ञात होता है कि 1 960- 86 की अवधि में राज्यों में प्रति व्यक्ति औसत उत्पादकता 0.94 टन से बढ़कर 1.49 टन हो गई। इसके साथ ही विचरण गुणांक 30 प्रतिशत से बढ़कर 93 प्रतिशत हो गया है। यद्यपि इस अवधि में भारत के सकल राष्ट्रीय उत्पाद में कृषि का अंशदान (1960-61 की कीमतों पर) 52 प्रतिशत से घटकर 30 प्रतिशत रह गया है, परन्तु कृषि मे क्षेत्रीय विषमताओं में वृद्धि इतनी तेज रही है कि इसने प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पादन की विषमताओं को प्रबल कर दिया है।

कई अध्येताओं ने कृषि विकास के ढांचे का विश्लेषण अन्त : राज्य स्तर पर किया है और अधिकांश अध्ययनों ने क्षेत्रीय विषमताओं में वृद्धि बताई है। कुण्डु एवं रजा (1982) ने कृषि उत्पादकता एवं विकास के स्थानिक ढांचे का विश्लेषणु राष्ट्रीय न्यादर्श सर्वेक्षण के 49 क्षेत्रों को विश्लेषण की आधारभूत इकाई मानकर किया है। इस अध्ययन में निम्न क्षेत्रों को उच्च कृषि उत्पादकता वाला स्थापित किया गया है-

(1) पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उत्तर प्रदेश

(2) पश्चिमी बंगाल का डेल्टा-प्रदेश

(3) आन्ध्र प्रदेश, केरल, कर्नाटक एवं तमिलनाडु के तटीय क्षेत्र

दक्षिणी का वर्षा आधारित कृषि वाला क्षेत्र,. उत्तर प्रदेश एवं बिहार में गंगा का मध्य मैदान और उड़ीसा में महानदी की घाटी मध्यम उत्पादकता वाले क्षेत्र प्रकट हुये है। दक्षिण विहार में छोटा नागपुर क्षेत्र, और गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान और मध्यप्रदेश के बड़े भाग में फैला हुआ शुष्क क्षेत्र न्यून उत्पादकता वाला टापू है जो सभी तरफ से उच्च या मध्यम उत्पादकता वाले क्षेत्र से घिरा हुआ है।

यह महत्वपूर्ण 'तथ्य है कि उच्च उत्पादकता वाला क्षेत्र देश की शुद्ध कृषि भूमि का 20 प्रतिशत है जबकि कृषि उत्पादन में यह 36 प्रतिशत योगदान करता है। लेकिन कुल तकनीकी आगत जिसमें उर्वरक, नल-कूप, ट्रेक्टर' एवं सकल सिंचित क्षेत्र शामिल है इन क्षेत्रों का अंश काफी अधिक क्रमश : 44, 50, 60 एवं 38 प्रतिशत है। इस प्रकार हम कह सकते है कि इस 20 प्रतिशत भूमि का उपयोग करने वाले कृषक तकनीकी आगत का 40 प्रतिशत या अधिक काम में लेकर उत्पादन का 36 प्रतिशत भाग पैदा करते है। यह दिखाता है कि उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि बड़ी मात्रा में तकनीकी आगत के अवशोषण के कारण हुई है। इस प्रकार, बीज - उर्वरक सिंचाई - ट्रेक्टर तकनीक पर आधारित कृषि विकास शैली का परिणाम देश में क्षेत्रीय असन्तुलनों का प्रबल- होता रहा है।

19.5 क्षेत्रीय विकास के संयुक्त सूचक

पहले ही स्पष्ट किया गया था कि प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पादन क्षेत्रीय विकास का काम चलाऊ माप है, क्योंकि. इसमें विकास के कई सामाजिक-आर्थिक आयाम समाविष्ट हो ने से रह जाते है.। विकास की धारणा बहु आयामी होने के कारण अध्येताओं ने इसे कई सूचकों से जोड़ने का प्रलय किया है। उन्होंने इन्हें राज्य, क्षेत्र एवं जिला स्तर पर बनाया है और संयुक्त तकनीक का उपयोग करके विकास के सामूहिक सूचकों को बनाया है। सूचकों के चुनाव, भार निर्धारण और संयुक्त सूचक के आधार पर तथ्यों का विकस श्रेणियों में वर्गीकरण करने के सम्बंध में गंभीर कार्य पद्धति सम्बंधी समस्यायें है। खेद है कि इन समस्याओं का कोई मानक हल नहीं है। आपके लिए यह उपयोगी होगा कि आप इन अध्ययनों (देखे कुण्डु. 1980, मित्रता : 1981, पंचमुखी :1985) में से कुछ का अध्ययन करें और उनकी कार्य पद्धति एवं परिणामों का विश्लेषण करें।

ऊपर वर्णित बहु-चरीय विश्लेषण के आधार पर विकास के स्वरूप सही चित्र प्राप्त करना कठिन है। इन अध्ययनों में से अधिकांश बताते है कि कृषि विकास के संयुक्त सूचक के आधार पर अन्तर्राज्य विषमताओं में वृद्धि हुई है लेकिन अन्य दशाओं में कमी हुई है। पिछड़े राज्यों के लिए किये गये कई अन्तर जिला विश्लेषण विकास के सभी पहलुओं में असमानतायें बढ़ना बताते है, जैसे कृषि, उद्योग एवं सामाजिक-आर्थिक आधारिक संरचना। विकसित राज्यों में प्रतिमान मिश्रित है - कुछ विषयों में अन्तर्राज्य असमानतायें बड़ी है लेकिन अन्य में बिल्कुल विपरीत स्थिति है।

19.6 सारांश

द्वितीयक समंको और साहित्य सर्वेक्षण पर आधारित अर्थप्रणाली के विभिन्न क्षेत्र के लिय क्षेत्रीय विकास के ढांचे का उपर्युक्त विश्लेषण बताता है कि' हमारी विकास नीति की मुफ्त असफलता क्षेत्रीय असंतुलनों के सम्बंध में सही है। साठकेदशक से अपनाई गयी कृषि विषय शैली, जो अनुमानित आदान द्वारा उत्पादकता में वृद्धि की ओर निर्दिष्ट थी स्थानिक विभेदीकरण के लिए उत्तरदायी रही है क्योंकि इसमें देश के कई बड़े भाग में कृषि सुधार, संस्थागत मार्ग विरोधों को हटाने और अच्छी जल प्रबन्ध प्रणाली पर ध्यान केन्द्रित करने के स्थान पर कुछ किसानों और कुछ जिलों को लाभान्वित करके, उत्पादकता में वृद्धि प्राप्त की गई। इसी प्रकार, औयौगिक विकास का कार्यक्रम उपनिवेशी काल से उत्तराधिकार में प्राप्त स्थानिक ढांचे की आधारभूत विकृतियों को सुधारने एवं निजी क्षेत्र के विकास को निर्देशित एवं नियंत्रित करने के लिए उपयुक्त संस्थानों की अभिकल्पना के बिना प्रारंभ किया गया। सरकार में अत्यधिक नौकरशाही एवं सुस्पष्ट दूरदर्शी नीति का अभाव सार्वजनिक क्षेत्र की अकुशलता और निजी उद्यमों को पिछड़े क्षेत्रों की ओर आकर्षित करने में असफलता के लिए उत्तरदायी रहे है। निजी उद्योगपति छल योजना एवं सार्वजनिक संस्थानों को प्रभावित करने और उनसे विभिन्न लाभ लेने में सफल रहे। इसके साथ ही उन्होंने राष्ट्रीय औद्योगिक नीति के घोषित उद्देश्यों के विपरीत कुछ बड़े शहरों के आस-पास ही अपनी इकाइयां स्थापित करने का प्रबन्ध कर लिया। गत कुछ वर्षो में उद्योगों को विनियत्रित करने के कई तदर्थ निर्णयों ने सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों को और कमजोर कर दिया, जिसमें हाल के वर्षों में अन्त राज्य असमानतायें और बढ़ी है।

19.7 शब्दावली

Regional Disparity	क्षेत्रीय असमता/विषमता
Sustained Growth	धारित संवृद्धि
State Domestic Product	राज्य घरेलू उत्पादन
Infrastructure	आधारिक संरचना
Administered Prices	निर्देशित कीमतें
Indices	सूचक
Regional Imbalances	क्षेत्रीय असंतुलन
Spatial Concentracture	स्थानिक संकेंद्रकरण
Household Manufacture	घरेलू विनिर्माण
Stagnation	प्रतिरोधक
Input	आदा/आगत/आदान
Residual Factor	अवशेष घटक
Potential; Development	विकास समर्थता
Technical Input	तकनीकी आगत

Composite Indices	संयुक्त सूचक
Hinterland	पृष्ठप्रर्देश
Haul	परिवहन
Break-Through	प्रस्फोट
Public Institution	सार्वजनिक संस्थान

तालिका 19.1

भारत के चयनीत राज्यो की प्रति व्यक्ति आय एवं उनकी कोटि

(रुपये में)

क्रम संख्या		1950-51 में आय 1960-61 की कीमतों पर (स्त्रोत NCAER)	कोटि	1975-76 में आय 1960-61 की कीमतों पर (स्त्रोत SSB)	कोटि	1985-86 में आय 1970-71 की कीमतों पर (स्त्रोत SSB)	कोटि
1.	आन्धप्रदेश	2.58	9	330	8	743	6
2.	आसाम	335	5	373	6	604	11
3.	बिहार	181	14	238	14	486	14
4.	गुजरात	381	3	409	3	362	3
5.	केरल	304	6	297	10	614	10
6.	मध्यप्रदेश	236	13	281	12	623	9
7.	महाराष्ट्र	373	4	478	2	1029	2
8.	कर्नाटक	287	7	407	4	698	7
9.	उड़ीसा	252	11	291	11	522	13
10.	पंजाब एवं हरियाणा	404	2	519	1	1419	1
11.	राजस्थान	256	10	315	9	663	8
12.	तमिलनाडू	245	12	358	7	779	5
13.	उत्तर प्रदेश	271	8	268	13	587	12
14	.पश्चिम बंगाल	471	1	397	5	858	4
	प्रमाण विचलन	76.2		78.4		234.5	
	राज्य आय का औसत (रु.)	304		354		748	
	विचरण गुणांक	25.1		22.2		31.3	

स्त्रोत: व्यवहारिक आर्थिक अनुसंधान की राष्ट्रीय परिषद (1967) एवं माथुर (1989)

तालिका 19.2

भारत के राज्यों की चालू कीमतों पर प्रति व्यक्ति आय एवं उनकी कोटि

(रुपयों में)

क्रम संख्या	राज्य	1970-71 में आय(रु.)	कोटि	1981-82 में आय(रु.)	कोटि
1.	आन्ध्रप्रदेश	536	12	1655	10
2.	आसाम	570	13	1476	15
3.	बिहार	418	20	1033	21
4.	गुजरात	845	3	2002	4
5.	हरियाणा	932	2	2655	2
6.	हिमाचल प्रदेश	676	6	1875	5
7.	जम्मू एवं कश्मीर	557	15	1713	8
8.	कर्नाटक	675	7	1759	7
9.	केरल	636	9	1608	12
10.	मध्य प्रदेश	489	19	1362	18
11.	महाराष्ट्र	811	4	2612	2
12.	मणिपुर	408	21	1601	13
13.	मेघालय	644	8	1323	19
14.	नागालैंड	508	17	1814	6
15.	उड़ीसा	541	16	1441	16
16.	पंजाब	1067	1	3182	1
17.	राजस्थान	629	10	1395	17
18.	तमिलनाडु	616	11	1629	11
19.	त्रिपुरा	563	14	1572	14
20.	उत्तर प्रदेश	493	18	1215	20
21.	पश्चिम बंगाल	729	5	1673	9
	प्रमाण विचलन	161.6		499.0	
	राज्य आयों का औसत	637		1743	
	विचरण गुणांक	25.4		28.6	

स्रोत: केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन (1978.1985 एवं 1986)

तालिका 19.3

भारत के चुने हुये राज्यों की स्थिर कीमतों (1970-71) पर प्रति व्यक्ति आय एवं कोटी

(रुपयों में)

क्रम संख्या	राज्य	1960-61 में आय	कोटि	1971-71 में आय	कोटि	1980-81 में आय	कोटी
1.	आन्ध्रप्रदेश	516	8	586	10	678	8
2.	बिहार	390	14	418	14	438	14
3.	गुजरात	697	4	845	3	384	4
4.	हरियाणा	627	5	932	2	1029	2
5.	कर्नाटक	559	7	675	6	723	6
6.	केरल	471	11	636	7	569	10
7.	मध्य प्रदेश	472	10	489	13	463	13
8.	महाराष्ट्र	769	1	811	4	1008	3
9.	उड़ीसा	392	13	541	11	514	12
10.	पंजाब	760	2	1067	1	1308	1
11.	राजस्थान	500	9	629	8	591	9
12.	तमिलनाडु	571	6	616	9	682	7
13.	उत्तर प्रदेश	457	12	493	12	524	11
14.	पश्चिमी बंगाल	758	3	729	5	765	5
	प्रमाण विचलन	124.4		176.6		242.2	
	राज्य आय का औसत (रू.	567		667		727	
	विचरण गुणांक	21.9		26.1		33.3	

स्रोत: भारतीय अर्थव्यवस्था के मोनिटरिंग के केन्द्र (1981)

तालिका 19.4

कुल श्रमिकों में पुरुष विनिर्माण श्रमिकों का प्रतिशत कारखाना क्षेत्र द्वारा प्रति व्यक्ति जोड़ा गया मूल्य

(रुपयों में)

क्रम संख्या	राज्य	1961	1971	1981	1961	1971	1981
1.	आन्ध्र प्रदेश	3.43	4.97	6.66	9	29	74
2.	बिहार	2.96	2.88	4.37	14	31	57
3.	गुजरात	8.77	10.42	14.82	52	108	245
4.	हरियाणा	NA	6.73	10.53	NA	70	169
5	कर्नाटक	5.13	6.47	8.32	14	62	107
6.	केरल	10.08	11.19	12.10	17	42	93
7.	मध्यप्रदेश	3.03	3.76	5.48	8	27	68
8.	महाराष्ट्र	10.19	12.53	14.98	69	167	324
9.	उड़ीसा	1.38	2.32	3.67	6	27	62
10.	पंजाब	5.84	8.10	10.65	4	52	136
11.	राजस्थान	2.47	3.49	6.18	5	26	56
12.	तमिलनाडू	7.43	9.99	12.57	24	75	166
13.	उत्तर प्रदेश	3.43	3.91	5.62	9	24	47
14.	पश्चिमी बंगाल	12.32	11.89	13.66	60	97	173
	प्रमाण विचलन	3.39	3.53	3.60	21.6	39.9	78.7
	राज्य आय का औसत	5.88	6.99	9.31	22.38	59.8	126.9
	विचरण गुणांक	57.68	50.52	40.34	96.88	66.70	61.9

स्त्रोत: भारत की जनगणना, सामान्य आर्थिक सारणिया (1981,1971 एवं 1981) एवं सी.एम.आई.ई.(1981)

तालिका 19.5

(उद्योगों में प्रति व्यक्ति विद्वत उपभोग (किलो वाट घण्टे)

क्रम संख्या	राज्य	1960-61	1970-71	1980-81	1986-87
1.	आन्ध्र प्रदेश	11	32	56	113
2.	आसाम	1	13	25	28
3.	बिहार	17	42	45	49
4.	गुजरात	39	95	155	179
5.	हरियाणा	NA	49	102	90
6.	कर्नाटक	31	83	106	102
7.	केरल	24	60	79	70
8.	मध्यप्रदेश	9	38	70	116
9.	महाराष्ट्र	47	120	149	163
10.	उड़ीसा	26	69	85	96
11.	पंजाब	32	105	112	204
12.	राजस्थान	27	27	46	62
13.	तमिलनाडु	27	75	98	114
14.	उत्तर प्रदेश	7	35	38	33
15.	पश्चिमी बंगाल	52	37	79	74
	प्रमाण विचलन	15.58	30.54	37.09	49.47
	राज्यों का औसत	23.2	62.0	83	99.7
	विचरण गुणांक	67.00	49.00	44.68	49.47

स्रोत: भारतीय अर्थव्यवस्था में मानीटरिग के लिए केन्द्र (1986)

तालिका 19.6

कृषि उत्पादकता (प्रति पुरुष कृषि श्रमिक खाद्यान्न उत्पादन)

क्रम संख्या	राज्य	1960-61	1964-65	1970-71	1980-81	1986-87
1.	आन्ध्रप्रदेश	0.56	1.01	0.03	0.97	0.89
2.	बिहार	0.71	0.75	0.64	0.72	0.79
3.	गुजरात	0.39	0.75	0.96	0.33	0.57
4.	हरियाणा	NA	NA	2.30	2.94	2.71
5.	कर्नाटक	0.32	0.93	1.06	0.86	0.97
6.	केरल	0.60	0.62	0.51	0.51	0.45
7.	मध्यप्रदेश	1.24	1.22	1.21	1.17	1.28
8.	महाराष्ट्र	0.92	0.95	0.69	1.05	0.77
9.	उड़ीसा	0.93	1.21	1.04	1.03	1.15
10.	पंजाब	1.73	2.04	2.95	4.17	5.71
11.	राजस्थान	1.10	1.16	1.67	1.05	1.10
12.	तमिलनाडू	0.90	0.96	0.90	0.69	0.91
13.	उत्तर प्रदेश	0.95	0.93	1.04	1.14	1.38
14.	पश्चिमी बंगाल	0.92	1.00	1.03	1.03	1.20
	प्रमाण विचलन	.20	.38	.72	.97	1.39
	राज्यों का औसत	.94	1.00	1.26	1.30	1.49
	विचरण गुणांक	20.0	21.0	57.5	74.2	52.2

स्रोत: सी.एम.आई.ई. (1981) एवं राकेश मोहन (1989)

इकाई 19

(भारत में क्षेत्रीय असमानतायें)

परिशिष्ट 1

तालिका 19. 7

कृषिगत व औद्योगिक सूचकों के अनुसार राज्यों में अन्तर

(1)		(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
राज्य		1991-92 से 1994-95 तक खाद्यान्नों, के' अखिल भारतीय' औसत उत्पादन का प्रतिशत	1994-95 मे कृषित भूमि मे प्रतिहेक्टेयर उर्वरकों का उपभोग (किलो मे)	1991-92 के लिये सकल सिंचित क्षेत्र कुल फसलों के क्षेत्रफल का प्रतिशत	फैक्ट्रियों में रोजगार फैक्ट्रियों में (1993-94) (लाख में)	फैक्टरियों में विनिर्माण द्वारा जोडा गया शुद्ध मूल्य (net value added by Manufacture) 1993-94 (करोड़ रूपये)
1.	आन्ध्र प्रदेश	6.5	121.4	40.8	8.7	4909
2.	असम	1.9	9.5	14.8	1.1	860
3.	बिहार	6.3	64.6	41.0	3.4	6729
4.	हरियाणा	5.6	126.4	77.9	2.9	2118
5.	गुजरात	2.5	77.5	21.2	7.6	9425
6.	हिमाचल प्रदेश	0.7	34.6	17.8	0.60	810
7.	जम्मू कश्मीर	0.8	48.2	41.2	0.15	193
8.	कर्नाटक	4.6	64.9	22.9	4.4	4137
9.	केरल	0.6	66.7	12.8	3.0	1815
10.	मध्य प्रदेश	9.7	37.4	20.6	4.5	5372
11.	महाराष्ट्र	6.6	75.4	14.0	13.2	21604
12.	उड़ीसा	4.0	22.5	22.8	1.8	1684
13.	पंजाब	11.55	174.7	94.6	4.4	2984
14.	राजस्थान	5.3	34.8	29.1	2.5	2380
15.	तमिलनाडु	4.7	136.6	46.7	11.0	9883
16.	उत्तर प्रदेश	20.7	99.3	57.2	7.8	5773
17.	पश्चिम बंगाल	7.2	86.2	22.1	7.4	5358
समस्त भारत (अन्य) राज्यों व संघीय प्रदेशों सहित		100.0	75.7	35.0	87.1	88434

इकाई 19

(भारत में क्षेत्रीय असमानतायें)

तालिका 19. 8

इन्फ्रास्ट्रक्चर के सापेक्ष सूचकांक व कुछ आर्थिक सामाजिक सूचकांकों

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
क्रम सं०	राज्य	इन्फ्रास्ट्रक्चर के सापेक्ष विकाम का सूचकांक (1992-93)	प्रति व्यक्ति विद्युत की खपत किलोवाट घंटों में (KWH) 1993-94	7 वर्ष व अधिक के व्यक्तियों के लिये साक्षरता की दर (1991) (%में)	शिशु मृत्यु दर (1995) प्रति हजार (SRS) (सेम्पलरजिस्ट्रेशन) सिस्टम के आधार आधार पर)
1.	आन्धप्रदेश	103	344	44.1	66
2.	असम	93	96	52.9	77
3.	बिहार	96	125	38.5	73
4.	हरियाणा	152	487	55.9	68
5.	गुजरात	125	590	61.3	62
6.	हिमाचल प्रदेश	84	217	63.9	
7.	जम्मू कश्मीर	69	197		
8.	कर्नाटक	97	323	56.0	62
9.	केरल	140	217	89.8	16
10.	मध्य प्रदेश	75	310	44.2	99
11.	महाराष्ट्र	111	459	64.9	55
12.	उड़ीसा	89	319	49.1	103
13.	पंजाब	205	703	58.5	54
14.	राजस्थान	80	254	38.6	85
15.	तमिलनाडु	138	387	62.7	56
16.	उत्तर प्रदेश	109	186	41.6	86
17.	पश्चिम बंगाल	113	164	57.7	59
समस्त भारत		100	299	52.2	74

इकाई 20

भारत मे संतुलित औद्यौगिक विकास की नीतियां

(Policies for Balanced Industrial Devlopment on India)

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 केन्द्रीय विनियोग

20.3 संस्थागत वित्त का संवितरण स्वरूप

20.3.1 वाणिज्यिक बैक

20.3.2 विकास बैक

20.4 औद्यौगिक छितराव के लिए नीतियाँ एवं कार्यक्रम

20.4.1 पांचवें एवं छठे दशक में परिदृश्य एवं तदुपरान्त नीति का स्वरूप

20.4.2 पिछड़े क्षेत्रों में औद्यौगिक विकास की प्रोत्साहित करने के लिए केन्द्रीय सरकार की योजनायें

20.4.3 राज्य स्तर पर योजनायें

20.5 क्षेत्रीय विकास नीति की समीक्षा

20.6 सारांश

20.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप.

(1) पिछड़े राज्यों में औद्यौगिक विकास को प्रवर्तित एवं प्रोत्साहित करने के लिए केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों की नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान जायेंगे।

(2) इन नीतियों एवं कार्यक्रमों में रही खामियों एवं विसंगतियों से परिचित हो जायेंगे।

(3) संतुलित क्षेत्रीय विकास एवं वित्तीय एवं राजकोषीय प्रेरणाओं और वैधानिक कार्यवाही एवं अधिमानिक लाइसेंस नीति की तुलनात्मक भूमिका का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे।

20.1 प्रस्तावना

स्वतंत्रता के समय भारत को उद्योगो का एक कमजोर एवं विकृत ढांचा उतराधिकार में मिला जो कुछ बड़े शहरों में केन्द्रित था। इसलिए क्षेत्रीय असन्तुलनों कों सुधारते हुए औद्योगिक विकास की गति कों त्वरित करना एक बड़ा कार्य था। 1951 में नियोजन के प्रारम्भ के साथ सरकार ने क्षेत्रीय सन्तुलन क्षेत्र में विनियोग एवं निजी क्षेत्र पर संस्थागत नियंत्रण द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इन सभी सरकारी उपायों की प्रकृति एवं क्षेत्रीय विकास पर उनके प्रभाव

का विश्लेषण करने हेतु देश में नियोजन प्रक्रिया के सन्दर्भ में केन्द्र राज्य सम्बन्धों पर दृष्टिपात से अध्ययन प्रारम्भ करना उपयोगी होगा।

20.2 केन्द्रीय संसाधनों का अन्तरण एवं प्रत्यक्ष केन्द्रीय विनियोग

केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को वित्तीय सहायता और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में प्रत्यक्ष विनियोग द्वारा पिछड़े राज्यों में विकास को प्रवर्तित एवं प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करती है। यह क्षेत्रीय समानता एवं सामाजिक न्याय के सिद्धांतो पर आधारित सुअभिकल्पित सूत्र के आधार पर राज्यो को कोष हस्तांतरित करती है। कोषों का हस्तांतरण दो माध्यमों से किया जाता है। - प्रथम, वित्त आयोग द्वारा जो गैर-योजना खर्चो के लिए वितरण करता है, द्वितीय योजना आयोग जो योजना अनुदान, प्रदान करता है। भारत सरकार भी पिछड़े राज्यों एवम् क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विनियोग करके सन्तुलित क्षेत्रीय विकास प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।

20.2.1 वित्त आयोग एवं योजना आयोग द्वारा हस्तांतरण

हम पहले गत चार दशाब्दियों में वित्त आयोगों के अध्ययन से हुए कोषों के हस्तांतरण का विश्लेषण करेंगे। सारणी 20.1 विभिन्न राज्यों को प्रति व्यक्ति के आधार पर उपलब्ध कराये गये साधनों को बताती है। इस सारणी. से स्पष्ट है कि उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र के छोटे राज्यों और जम्मू काश्मीर के साथ उच्च व माध्यम आय वाले कुछ राज्यों को भी प्रचुर राशि प्राप्त हुई है। यद्यपि, गरीब राज्यों में सें कुछ जैसे उड़ीसा एवं राजस्थान को राज्यों के औसत से अधिक प्रति व्यक्ति हस्तांतरण हुआ है लेकिन गरीब राज्यों के पक्ष में कोई स्पष्ट अभिनति नही है। यह खेदजनक स्थिति है कि बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े राज्यों को इस सारी अवधि में बहुत कम हस्तांतरण हुआ है।

योजना आयोग के माध्यम से योजनागत साधनों का हस्तांतरण भी कम विकसित राज्यों के पक्ष में कोई सार्थक अभिनति नहीं दर्शाता (सारणी 20.2) यद्यपि गरीब राज्यों में से कुछ जैसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं बिहार को प्रतिव्यक्ति के आधार पर तुलनात्मक रूप से अधिक केन्द्रीय सहायता प्राप्त हुई है, लेकिन महाराष्ट्र एवं पश्चिमी बंगाल जैसे विकसित राज्यों कों दूसरी एवं पांचवीं पंचवर्षीय योजना में प्रतिव्यक्ति योजना सहायता अधिक प्राप्त हुईं है।

इस प्रकार यह आलोचना कि केन्द्र से राज्यों को कोष हस्तांतरण की पद्धति क्षेत्रीय असन्तुलनों को सार्थक रूप में कम करने में विफल रही है, सही है। विद्वानों ने इस तथ्य के प्रति चिन्ता दर्शायी कि इस कैंन्द्र से कोषोंकेहस्तांतरण के बाद भी प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पादन (SDP) में असमानता बढ़ी है।

यहां इस तथ्य पर ध्यान देना उपयोगी होगा कि राज्यों के आय स्तर या आय वृद्धि को कम से कम आंशिक रूप से उनके प्रति व्यक्ति योजना परिव्यय या राजस्व व्यय के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। वास्तव में यह सही है कि तुलनात्मक रूप से विकसित राज्य कर एवं गैर-कर श्रौतो से (प्रति व्यक्ति) अधिक कोष सृजित करने में सक्षम है। इस दृष्टि से गरीब राज्य प्रतिकूल परिस्थिति में है। इसमें सन्देह नहीं है कि केन्द्रीय स्थान्तरणों का कुछ समकरण प्रभाव होता है, क्योंकि प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पादन व केन्द्रीय स्थानान्तरण में ऋणात्मक

सम्बंध है। इसमें यह अन्तर्निहित है कि कम विकसित राज्य केन्द्रीय राजकोष से अधिक धन प्राप्त कर सकते है, जिसके फलस्वरूप राज्य स्तर पर प्रति व्यक्ति योजना एवं गैर-योजना व्यय में असमानता घटेगी। अनेक विद्वानों ने वित्त आयोग एवं योजना आयोग के माध्यम से कोषों के अन्तरण में सार्थक झुकाव न होने के प्रति अप्रसन्नता प्रकट की है। क्योंकि गरीब राज्यों के पक्ष में अन्तरण इतना पर्याप्त नहीं है कि वह राज्य स्तर पर प्रति व्यक्ति योजना एवं गैर-योजना परिव्यय को समान कर सके अथवा देश मे संतुलित क्षेत्रीय विकास को सुनिश्चित कर सके।

यह तर्क दिया जा सकता है कि योजना आयोग के हस्तांतरणों की अपेक्षा वित्त आयोग के माध्यम से हुए अन्तरण अधिक समकारी है। ऐसा इसलिए है कि वित्त आज़ोग द्वारा कर आय में हिस्सा निर्धारण के लिए अपनाये गये सूत्र में प्रति व्यक्ति राज्य घरेलू उत्पादन के प्रतिलोम को अधिक भार दिया गया है। कुल मिलाकर, ऊपर वर्णित दोनों धाराओं से केन्द्र सरकार से अन्तरण उत्तर-पूर्व के छोटे राज्यों और कुछ मध्यम व कम आय वाले राज्यों के पक्ष में रहा है।

20.2.2 केन्द्रीय विनियोग

सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों में केन्द्रीय विनियोग पिछड़े राज्यों के पक्ष में उल्लेखनीय तरफदारी दर्शाता है। विशेष रूप से उन राज्यों को सर्वाधिक लाभ हुआ जो खनिज भण्डार एवं अन्य औद्योगिक संसाधनों में धनी थे, क्योंकि इन विनियोगों का प्राथमिक उद्देश्य स्थानीय संसाधनों के उपयोग के लिए आधारभूत उद्योगों का विकास करना था। यद्यपि यह बदनसीबी रही कि राजस्थान, जम्मू एवं काश्मीर, आसाम आदि राज्य अधिक केन्द्रीय विनियोग को आकर्षित नहीं कर सके। दूसरी ओर केन्द्रीय सरकार के उद्यमों में प्रति व्यक्ति विनियोग की दृष्टि से मध्य प्रदेश बिहार के बाद मुख्य लाभतभोगी रहा।

यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों के स्थान का यचन योजना आयोग एवं सम्बन्धित मन्त्रालय ने परियोजना के आर्थिक मूल्यांकनकेसाथ-साथ संतुलित क्षेत्रीय विकास को ध्यान में रखकर किया है। यहां औपचारिक सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण रूप की अपेक्षा राजनैतिक कारक भारी पड़े जिससे तुलनात्मक रूपसे विकसित राज्यों, जहाँ शक्तिशाली मुख्य मंत्री थे, को सहायता मिली। इस राजनैतिक कारक ने तुलनात्मक रूप से कम विकसित राज्यों में से कई को लाभ पहुंचाया। यद्यपि, बाद में सार्वजनिक क्षेत्र की इकाईयों के स्थान-निर्धारण एवं प्रबन्ध सम्बंधी निर्णयों में व्यावसायिक क्षमता एवं लागत वसूली को सर्वाधिक महत्व पूर्ण माना गया। परिणाम स्वरूप, कुल विनियोग योग्य संसाधनों में गरीब राज्र्यो के अशं में सुस्पष्ट कमी दिखती है। वित्त आयोग, योजना आयोग और विभिन्न मन्त्रालयों की प्रतिफल की वांछित दर प्राप्त करनेकेप्रति जागरूकता बढ़ने के साथ, ऐसी सम्भावना है कि भविष्य में विनियोग निर्णय पिछड़े क्षेत्रों के पक्ष में और भी कम होंगे।

20.3 संस्थागत वित्त का सविरण स्वरूप

विभिन्न राज्यों से निजी एवं सार्वजनकि क्षेत्र के विकास परिव्यय की वित्त व्यवस्था का एक और स्रोत है। वह क्षेत्र है सरकारी एवं स्वायत्तशासी वित्तीय संस्थायें जिसमें राष्ट्रीय कृत वाणिज्यिक बैंक, विकास बैंक एवं बचत एजेन्सियों जैसे जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम आदि शामिल है

20.3.1 वाणिज्यिक बैंक

कुण्डु, मिश्रा एवं मेहर (1986) द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसर वाणिज्यिक बैंकों से प्रति व्यक्ति साधनों का प्रवाह विकसित राज्यों के पक्ष मैं रहा है। पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, गुजरात एवं पश्चिमी बंगाल ने, जो देश के तुलनात्मक रूप से विकसित राज्य है, प्रति व्यक्ति बैंक वित्त राष्ट्रीय औसत से काफी अधिक प्राप्त किया है। दूसरी ओर, पहाड़ी राज्य जैसे हिमाचल प्रदेश, जम्मु एवं काश्मीर, त्रिपुरा, मणीपुर, मेघालय एवं नागालैण्ड जो आर्थिक दृष्टि से बहुत पिछड़े हुयें है, प्रति व्यक्ति बैंक ऋणों में ऊंचा स्थान प्राप्त करते हैं। बड़े पिछड़े राज्यों जेसे उड़ीसा, आसाम, उत्तर प्रदेश, राजस्थान एवं मध्य प्रदेश के साथ इस अपेक्षा जो घाटा है वह बहुत बुरा है। उन्हें प्रति व्यक्ति बैंक साख राष्ट्रीय औसत से बहुत कम प्राप्त हुई है।

20.3.2 विकास बैंक

विकास बैंको से प्राप्त निधि का स्वरूप भी इसी प्रकार का है। इन अभिकरणों से साख प्राप्त करने में भी विकसित राज्य स्पष्ट रूप से लाभ में रहे है। गुजरात एवं महाराष्ट्र ने 1973 - 80 की अवधि में अधिकतम प्रति व्यक्ति साख प्राप्त की है। दूसरी ओर मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा आसान आदि को तरफदारी प्राप्त नही हुई और उनको प्रति व्यक्ति आर्थिक सहायता राष्ट्रीय औसत का लगभग एक तिहाई प्राप्त हुई। जीवन बीमा निगम द्वारा विभिन्न राज्यों में किया गया प्रति व्यक्ति विनियोग भी 'वाणिज्यिक बैकिंग अभिनति ' दर्शाता है। जीवन बीमा निगम द्वारा प्रति व्यक्ति विनियोग में पंजाब, हरियाणा एवं गुजरात उच्चतम स्थान पर है जबकि मध्य प्रदेश एवं बिहार निम्नतम पर। ऐसा इसलिए है कि अन्य बैकिंग अभिकरणों के समान ही यह भी परियोजना की वाणिज्यिक क्षमता सुनिश्चित हो जाने पर ही वित्तीय सहायता. प्रदान करता है। साख-जमा अनुपात में स्थानिक विचरण बताता है कि ये संस्थान कम विकसित राज्यों के घरेलू क्षेत्र से बचतों के बड़ी मात्रा में जुटाव में सफल रहे है और इन्हें स्वतन्त्र बाजार शक्तियों की प्रक्रिया के रूप में विकसित राज्यों के कुछ केन्द्रों पर व्यपरिवर्तित किया है।

निर्धन राज्यों में केन्द्रीय सरकार द्वारा बड़े विनियोग एवं योजना आयोग द्वारा उनके पक्ष में अधिक, प्रन्तरणकेबाद भी संस्थागत वित्त के प्रतिगामी बंटन के कारण क्षेत्रीय विषमतायें बड़ी है। बैंकिंग संसाधन देश में कुल विकास व्यय का बड़ा अनुपात है। इन संसाधनों के अन्तर राज्य बंटन ने स्थानिक असंतुलनों को बढ़ाया है। इन संसाधनों का एक बड़ा भाग कुछ राज्यों में गया है। और इसका भी अधिकांश केवल कुछ बड़े नगरों में ही रहा है। इस प्रकार, यह कहा

जा सकता है कि सरकारी व्यय से आधारभूत उद्योगों और पिछड़े राज्यों में आर्थिक आधारिक संरचना का विकास हुआ है जबकि संस्थागत वित्तकेपरिणाम स्वरूप अन्य राज्यों में अन्तर सम्बन्धित उद्योग संभावित हुये है। यह ही पिछड़े राज्यों में गुणांक प्रभाव के कारण के लिए उत्तरदायी है। अधिकांश औद्योगिक इकाइयाँ जो स्टील, पैट्रो-रसायन, भारी विद्वत आदि आधारभूत सार्वजनिक उद्यमों की इकाइयों से प्रोद्योगिकी दृष्टि से अनर्विलित है, उसी क्षेत्र में स्थापित नहीं हुई है। इसके विपरीत वे विकसित राज्यों के कुछ बड़े शहरों के आस-पास स्थापित की गई। इसके परिणाम स्वरूप उत्पादन परिसरों की काट-छाँट हो गई। निस्तारण, प्राथमिक परिष्करण एवं कम मूल्य वाले उद्योग पिछड़े राज्यों में रहे जबकि अन्तिम परिष्करण क्रियायें, जिनमें जोड़ा गया मूल्य बड़ा अवयव होता है, विकसित राज्यों में चली गयी। इस प्रकार संस्थागत वित्त के संवितरण पर उपयुक्त नियन्त्रण न होना देश के असन्तुलित औद्योगीकरण की प्रक्रिया को सहायता देने वाला मुख्य घटक रहा है

20.4 औद्योगिक छितराव के लिए नीतियां एवं कार्यक्रम

20.4.1 पांचवें एवं छठे दशक में परिदृश्य एवं तदुपरान्त नीति का स्वरूप

सातवें दशक, तक पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने का कोई विशेष कार्यक्रम नहीं था। पांचवें एवं छठे दशक में इस हेतु अपनाये गये मुख्य नीतिगत उपकरण औद्योगिक लाइसेंसिंग एवं सार्वजनिक क्षेत्र के औद्यौगिक उद्यमों का स्थान निर्धारण था।[(1)] यद्यपि औद्योगिक सम्प्रदायों, लघु उद्योग प्रोत्साहन एवं ग्रामीण उद्योग परियोजनायें आदि कार्यक्रम थे। जो लघु उद्योगों के लिए आधारिक संरचना प्रदान कर उनके अन्त राज्य छितराव के लिए परिकल्पित किये गये थे।

औद्योगिक लाइसेंसों नीति जाँच समिति (1969) ने जिसने लाइसेंसिंग पद्धयति के संचालन का गहन अध्ययन किया, पिछड़े राज्यों के औद्योगीकरण में लाइसेंसिंग नीति की असफलता के दों मुख्य कारण निर्धारित किये। प्रथम तो उद्योगों की कोई ऐसी सूची नहीं थी जिनके छितराव का प्रयत्न किया जाना था। दूसरा, और अधिक महत्वपूर्ण कारण यह था कि पिछड़े राज्यों एवं क्षेत्रों का कोई सुस्पष्ट सीमांकन नही था।

1955 में प्रवर्तित औद्योगिक सम्पदा कार्यक्रम के मूल्यांकन अध्ययन दिखाते है कि यह कार्यक्रम भी देश में सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को प्रोत्साहित करने में बहुत अधिक प्रभावी नहीं रहा। सातवें दशक के मध्य तक भी शहरी सम्पदाओं के 25 प्रतिशत शेड भी कार्यशील नहीं थे। ग्रामीण क्षेत्रों की सम्पदाओं की असफलता की दर इससे काफी अधिक थी। एक औद्योगिक

---

(1) औद्येग़िक नीति प्रस्ताव जो सर्वप्रथम 1948 में घोषित किया गया और 1956 मे संशोधित हुआ उसमें उद्धोगों के स्थानिक केन्द्रीयकरण को रोकने का एक उद्देश्य था लेकिन इस हेतु सुस्पष्ट तरीके, नहीं बताये गये। तब से औद्योगिक नीति का कई बार संशोधन व पुनर्कथन किया गया है।

(2) योजना आयेग

सम्पदा की सफलता इसके स्थान-निर्धारण पर निर्भर करती है-विशेष रूप से बड़े शहरी केन्द्रों से इसकी निकटता पर जो इसके उत्पादनों के लिए बाजार उपलब्ध करते है। इसलिए, यह कार्यक्रम कुछ बड़े शहरों के आस-पास सीमित औद्योगिक छितराव ला सका।

कुछ औद्योगिक उत्पाद जैसे सीमेन्ट, इस्पात, कोयला आदि जो कई उद्योगों में आधारभूत आगतकेरूप में प्रयुक्त किये जाते है, के लिए समान कीमत निर्धारण नीति का विशेष उल्लेख भी आवश्यक है। इस नीति ने संसाधन समूह क्षेत्रों जैसे मध्य-प्रदेश उड़ीसा, बिहार आदिकी लाभदायक स्थिति को निष्प्रभावी कर दिया और इन आगतो का उपयोग करने वाले उद्योगों की स्थापना संसाधन आधार से दूर होने का मौका दिया - मुख्यत : उन बड़े शहरी केन्द्रों पर जो उपनिवेशी काल में विद्यमान थे। छठे एवं सातवें दशक में इस नीति का मुख्य लाभ उत्तरी-पश्चिमी क्षेत्र को मिला। इस्पात एवं कोयला उपयोग करने वाले अनेक उद्योग इस क्षेत्र में स्थापित हुये जिसने सार्वजनिक राजकोष की लागत पर इन आगतो का दूर तक ढोना आवश्यक कर दिया।

राष्ट्रीय विकास परिषद की एक समिति में 1968 में हुये विचार-विमर्श के बाद योजना आयोग ने पिछड़े क्षेत्रों की पहिचान करने और उसमें उद्योगों को आकर्षित करने के लिए प्रोत्साहनों की सलाह देंने के लिए एक कार्यदल गठित किया। कार्यदल ने, जिसकी अध्यक्षता बी.डी. पाण्डे ने की, मानदण्डों के दो सेट सुझाये - एक औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की पहिचान के लिए और दूसरा प्रथम मानदण्ड के आधार पर निर्धारित राज्यों व केन्द्र शासित प्रदेशों में विकास क्षमता वाले पिछड़े जिलों के निर्धारण हेतु। प्रथम सेट में पंजीकृत कारखानों में श्रमिकों के आधार पर औद्योगीकरण और आय एवं आधारिक - के सूचकों को समाविष्ट करता है। मानदण्ड के दूसरे सेट का उद्देश्य. ऐसे कम आय वाले क्षेत्रों का पता लगाना था जहाँ अप्रयुक्त प्राकृतिक साधन हों और श्रम शक्ति का तुलनात्मक रूप से कम प्रतिशत द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्र में लगा हो। औद्योगिक विकास के लिए चुने जाने वाले पिछड़े जिलों के निर्धारण में महत्वपूर्ण आधार आधारिक-सरचना की उपलब्धि और अल्पकाल में विकास की सम्भावनायें थी। दल (पाण्डे समिति) इस बारे में सुस्पष्ट था कि चुने हुये जिले बड़े शहरों और विद्यमान बड़ी औद्योगिक परियोजनाओं से दूर हों।[(2)] यद्यपि व्यवहार में दल की सिफारिशों से विचलन हुआ और राजनैतिक आधारों पर कई रियायतें देकर बड़े क्षेत्र को प्रेरणायें देने के लिए निर्धारित किया गया।

द्वितीय दल (वांचू समिति) द्वारा सुझाई गयी मुख्य प्रेरणाओं में साधारणतया पाच वर्ष के लिए विभिन्न करों व शुल्कों मे छूट, दूर के स्थानों तक परिवहन की लिए प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता और वित्तीय संस्थानों द्वारा प्राथमिकता से रियायती शर्तों पर पूंजी की व्यवस्था शामिल थी। दल की अन्य सिफारिशें निम्न थी

(1) लाइसेंस देने एवं पूंजीगत उपकरण आयात करने में प्राथमिकता।

(2) सूची मैं प्रतिबद्ध वस्तुओं के उत्पादन हैतु लाइसेंस में रियायतें।

(3) विकसित भूखण्ड एवं निर्मित स्थान की व्याख्या।

(4) मशीनरी एवं उपकरणों की आपूर्ति आदि।

दल ने यह भी प्रस्तावित किया' कि बड़े औद्योगिक केन्द्रों पर नई इकाइयों को लाइसेंस नही दिये जावे, ऊर्जा अशिर्त के आवेदन पत्रों को निरस्त किया जावे और विद्यमान इकाइयों के. विस्तार पर ऊर्जा एवं पानी की दण्डात्मक दरें वसूल की जावें।(3)

राष्ट्रीय विकास परिषद ने इन सिफारिशों पर विचार किया और इसके साथ-साथ ही निर्णय किया कि -

(1) रियायती वित्त सभी राज्यों के चयनित पिछड़े क्षेत्रों में उपलब्ध कराया जावे।

(2) पिछड़ा क्षेत्र निर्धारण के मानदण्ड योजना आयोग द्वारा संस्थानों एवं राज्य-सरकारों की सलाह से तय किय जावें।

मानदण्डों का अन्तिम स्वरूप जो प्रकट हुआ वह इस प्रकार था। वे जिले जो निम्न सूचकों के आधार पर राज्यों के औसत से काफी नीचे आये उन्हें वित्तीय प्रेरणायें प्रदान करने के लिए चयनित किया गया-

(i) प्रति व्यक्ति खाद्यान्न/व्यापारिक फसलों का उत्पादन।

(ii) कृषि कर्मियों से जनसंख्या का अनुपात।

(iii) प्रति व्यक्ति सकल औद्यौगिक उत्पादन।

(iv) प्रति लाख जनसंख्या में कारखाना कर्मियों की संख्या या द्वितीयक एवं तृतीयक क्रियाओं में लगे व्यक्ति।

(v) प्रति व्यक्ति विद्युत उपभोग, एवं

(vi) जनसंख्या की तुलना में सतही सड़कें य रेलवे मील-दूरी।

20.4.2 पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों को प्रोत्साहित करने के लिए केन्द्रीय सरकार की योजनायें

सातवें दशक से केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहनों के ढांचे और परिमाण में कई परिवर्तन हुए है। आठवें दशक में, विशेष रूप से प्रेरणाओंकेयोग्य क्षेत्रों के पुर्नवर्गीकरण के बाद, परिवर्तन बहुत तेजी से हुए है। यहां पर हम उन प्रेरणाओं, रियायतो एवं अन्य लाभों के बारे में विचार करेंगे जो वर्तमान में विभिन्न योजनाओंकेअर्न्तगत पहिचाने गये पिछड़े क्षेत्रों की औद्योगिक इकाइयों कों उपलब्ध है (4)

1. रियायती वित्त

यह योजना 1971 से प्रचलन में है। इसके अन्तर्गत पिछड़े क्षेत्रों की इकाइयों भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय अद्यौगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम आदि वित्तीय संस्थाओं से सामान्य ब्याज दर से 1 या 2 प्रतिशत कम पर प्राप्त करनें के लिए योग्य होती है। ये संस्थान इन इकाइयों से कम दर पर अभिगोपन कमीशन लेते है, परिशोधन की लम्बी

---

(3) योजना आयोग

(4) इस खण्ड में दिया गया विवरण पिछड़े क्षेत्रो के विकास के लिए राष्ट्रीय आयोग (1980) के औद्यौगिक छितराव पर प्रतिवेदन और उद्योग मंत्रालय द्वास समय-समय पर जारी की गई विज्ञप्तियों रख प्रेस सूचनाओं पर आधारित है।

अवधि देतें है ओर विशिष्ट मामलों में जोखिम पूंजी में भी भाग लेते है। इस सुविधा के लिए पांच जिलों की संख्या 1983 में पर्याप्त बढ़ाकर 246 से 299 कर दी गयी थी।

2. केन्द्रीय विनियोग आर्थिक-सहायता

यह योजना भी 1971 से प्रचलन मैं है। रियायती वित्त के लिए योग्य जिलों में से कुछ जिले कैंन्द्रीय सरकार द्वारा तत्काल आर्थिक सहायताकेलिए चयन किये गये। प्रारम्भ में आर्थिक सहायता राशि परियोजना की पूंजीगत लागत का 10 प्रतिशत थी, जिसकी अधिकतम सीमा रूक.5 लाख थी। 1973 में आर्थिक-सहायता की राशि 15 प्रतिशत और अधिकतम सीमा रु.15 लाख तक बढ़ा दी गई। 1981 में उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र एवं सिक्किम के लिए आर्थिक-सहायता दर 20 प्रतिशत और अधिकतम सीमा रू 20 लाख तक बढ़ा दी गई।

इस योजना के अर्न्तगत प्रारम्भ में औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ें राज्यों मे सें प्रत्येक में दो जिलों एवं शेष राज्यों में से प्रत्येक राज्य से एक जिले को चुना गया। बाद में 1972 में, आर्थिक-सहायता के लिए पाच जिलों की संख्या दुगनी कर दी गई-पिछड़ें राज्यों से 4 एवं अन्य राज्यों से, 2 जिले शामिल करके।

वर्ष 1983 सें योजना कों श्रेणी आधार पर लागू किया जा रहा है। सभी अधिसूचित पिछड़े, जिलों/क्षेंत्रों को A,B एवं C तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है।

i) श्रेणी ' A ' में बिना उद्योग वाले एवं विशेष क्षेत्र है। (5)

ii) श्रेणी 'B' में, श्रेणी ' A ' मैं शामिल जिलों को छोडकर शेष वे जिले है जो अप्रैल 1983 तक केन्द्रीय विनियोग आर्थिक-सहायता के पात्र थे।

iii) श्रेणी ' C ' में, श्रेणी ' A ' व 'B' को छोड़कर वे शेष जिले है जो अप्रैल 1983 तक रिसायती वित्त प्राप्त करने के पात्र थे।

आर्थिक-सहायता की दर A, B एवं C श्रेणीकेजिलोंकेलिए क्रमश : 25,15 एवं 10] प्रतिशत है और कुल आर्थिक-सहायता की अधिकतम सीमा क्रमश : 25 लाख रूपये, 15 लाख रूपये एवं 10 लाख रूपये है।

तीनों ही श्रेणियों के जिले रियायती वित्त एवं केन्द्रीय विनियोग आर्थिक-सहायता के पात्र है। इसके, साथ ही 1971 में परिवहन आर्थिकसहायता की योजना प्रवर्तित की गईं इस योजना सें पहाड़ी जिलों, मुख्य रूप से उत्तरी-पूर्वी राज्यों में स्थापित औद्योगिक इकाइयों को लाभ मिल सकता है। वे कच्चे माल एवं निर्मित माल की परिवहन लागत के 50 प्रतिशत की प्रतिपूर्ति प्राप्त कर सकती है।

---

(5) जिन जिला में कोई भी बड़ा या मध्यम पैमाने का उददयोग नही है उन्हें बिना उद्योग वाले जिले माना गया हैं। हिमांचलप्रदेश जम्मू एवं काश्मीर, सिक्किम, अण्डमान एवं निकोबार द्वीप समूह के कुछ जिलों, चंडीगढ़ एवं दिल्ली को छोड़कर शेष सभी केन्द्र शासित प्रदेश और पश्चिमी बंगाल के दार्जलिंग जिलों "विशेष क्षेत्रों" में शामिल किया गया है।

बाद में सरकार ने पूंजीगत आर्थिक-सहायता की व्यवस्था को समाप्त कर दिया (परिवहन आर्थिक-सहायता के अतिरिक्त) और सारे देश में फैले हुए 100 विकास केन्द्रों को उच्च स्तरीय आधारित-संरचना एवं सार्वजनिक सुविधायें उपलब्ध कराकर पिछड़े क्षेत्रों के विकास की योजना प्रवर्तित की। यह आशा की जाती है कि ये सुविधायें निजी उद्योगपतियों को इन केन्द्रो पर आकर्षित करेंगी जिससे इन क्षेत्रों के विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में विनिर्माण इकाइयों की स्थापना की आवश्यकता घट जायेगी।

3. नियमन एवं अन्य दायित्वों से छूट

एकाधिकारी और प्रतिबंधक व्यापार व्यवहार अधिनियम 1969 के अन्र्तगत पंजीकृत कम्पनियाँ केवल कुछ उद्योगों, जिन्हें 'अनुसूची-I के उद्योग ' कहा गया है।, में विस्तार की अनुमति है। ये साधारणतया वे उद्योग है जिनमें प्रचुर विनियोग एवं/या परिष्कृत प्रोद्योगिकी की आवश्यकता होती है। कुछ निगर्त बाध्यता के साथ वे इससे बाहर के क्षेत्र में भी विस्तार या प्रवेश कर सकते है। इसी प्रकार के प्रतिबन्ध विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम 1973 के अन्र्तगत प्रभावी विदेशी स्वामित्व वाली कम्पनियों पर अनुबद्ध है। लेकिन, यदि ये कम्पनियाँ अपनी इकाइयों अधिसूचित पिछड़े दोनों क्षेत्रों में स्थापित करती है तो उन्हें अपने निर्गत का बड़ा भाग घरेलू बाजार में बेचने की छूट दे दी जाती है। वर्ष 1983 में, निर्यात बाध्यता B एवं C श्रेणी के जिलों में सभी श्रेणी के उत्पाद जो लघु उद्योग क्षेत्र के लिए सुरक्षित नहीं है, के लिए इकाई स्थगित होने पर घटाकर50 प्रतिशत एवं A श्रेणी के जिलों के लिए 30 प्रतिशत कर दी गई। इससे पूर्व सभी स्थानोंकेलिए निर्यात बाध्यता 60 प्रतिशत थी। दिसम्बर 1985 में, वांछनीय निर्यात प्रतिशत में फिर कमी करके B एवं C श्रेणी के स्थानों के लिए 25 प्रतिशत कर दिया गया और A श्रेणी के स्थानों के लिए यह प्रतिबद्धता बाध्यता पूर्णतया घटा दी गई।

वर्ष 1986 में, एकाधिकारी और प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम (MRTP) एवं विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम (FERA) के अन्तर्गत आने वाली कम्पनियों के सम्बंध में दो मुख्य नीतिगत परिवर्तन किये गये। प्रथम, यदि वे अपनी इकाइयाँ अधिसूचित पिछड़े जिलों में स्थापित करती है तो उन्हें कई नये उद्योगों में विनियोग करने की छूट दे टी गई जो उनके लिए पहले प्रतिबन्धित थे। द्वितीय, वे उद्योग जिनमें ये कम्पनियाँ पहले विनियोग कर सकती थी लेकिन इन्हें लाइसेंस लेना पड़ता था, अब पिछड़े क्षेत्रों में इकाइयाँ स्थापित करने पर उन्हें लाइसेंस लेने की आवश्यकता नहीं रही।

4. लाइसेंस नीति

सातवें दशक के प्रारम्भ तक, निजी उद्योगपतियों के स्थान निर्धारण निर्णय को प्रभावित करने वाला एक मात्र साधन लाइसेंस नीति थी। जैसा कि खण्ड 20.4.1 में स्पष्ट

---

(6) 1977 में प्रकाशित औद्यगिक नीति वक्तव्य में बड़े नगरों मे निवास की परिस्थितियों में तेजी से गिरावट, विशेष रूप से श्रमिकवर्ग की, के प्रति चिन्ता प्रकट की गई और घोषित किया गया कि इन केन्द्रों पर उद्योग के आगे विस्तार को हतोत्साहित किया जायेगा। इसी से उन बड़े उद्योगों को ज्यों पिछड़े क्षेत्रों में स्थानान्तरित होना चाहते है, सहायता प्रदान करने का विचार चर्चित हुआ।

किया गया है यह बहुत प्रभावी नहीं थी। सातवें दशक के प्रारम्भ में कई प्रोत्साहन योजनायें प्रवर्तित करने के बाद भी, पिछड़े जिलों में बहुत अधिक औद्योगिक इकाइयाँ आकर्षित नही की जा सकी। वर्ष 1977 मैं, लाइसेंसिंग नीति का उपयोग विद्यमान शहरी औद्योगिक केन्द्रों पर उद्योग के केन्द्रीयकरण को प्रभावी रूप से रोकनेकेलिए करने का प्रयास किया गया।(6) बड़े शहरों में स्थापित या स्थापना चाहने वाली इकाइयों के लिए लाइसेंस प्रक्रिया में शिथिलीकरण को अप्रयोज्य बना दिया गया। यद्यपि, 1980 से पुन इन नगरों में विस्तार या स्थापना चाहने वाली इकाइयों के प्रति उदार दृष्टि अपनाई जा रही है। सम्भव तया 1981 में पहली बार, अधिकृत रूप से यह घोषणा की गई कि पिछड़े राज्यों और केन्द्र शाषित प्रदेशों के लिए औद्योगिक लाइसेंस निर्गमित करने को विशेष महत्व दिया जायेगा। इसके अनुसरण में 1982 में यह घोषित किया गया कि 'बिना उद्योग वाले जिलों में औद्यौगिक परियोजनाओं की स्थापना के आवेदन पत्रों को अभिभावी प्राथमिकता दी जायेगी। वर्तमान में औद्योगिक इकाइयों को लाइसेंस देने और उनके डी.जी.टी.डी. जैसे तकनीकी प्राधिकरणोंकेपास पंजीयन मे A श्रेणी के जिलों को अधिकर्तम, और उनके पश्चात् B व C श्रेणी के जिलों को प्राथमिकता एवं विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम के अन्र्तगत न आने वाली कम्पनियों को कुछ वस्तुओं के उत्पादन लाइसेंस लेने की अनिवार्यता से 1985 के प्रारम्भ में मुक्त कर दिया गया था, दिसम्बर 1985 में यह मुक्ति एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम एवं विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम के अन्र्तगत आने वाली उन कम्पनियों को भी प्रदान कर दी गई जो अपनी इकाइयों को पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित करती है।

वर्ष 1988 में, 26 उद्योगों को छोड़कर शेष उद्योगों में 15 करोड़ रूपये के विनियोग तक लाइसेंसिंग सें छूट दे दी गई। पिछड़े जिलों के लिए यह सीमा इससे दुगनी रखी गई। तथापि, मौजूदा शहरी केन्द्रों मैं उद्योगों के अधिक केन्द्रीयकरण को रोकने के लिए, यह अनुबद्ध किया गया है कि कोई भी इकाई 25 लाख से अधिक आबादी वाले महानगरों से 50 किलोमीटर, 15 से 25 लाख आबादी वाले नगरों से 30 किलोमीटर और 7.5 लाख से 15 लाख आबादी वाले नगर से 15 किलोमीटर की सीमा में स्थापित न की जाये। छोटे नगरीय केन्द्रों पर कोई भी इकाई उनकी नगर सीमा में स्थापित न की जाये।

5. विकास केन्द्र अभिगम एवं नाभिक संयंत्र

विकास केन्द्र अभिगमकेएक अंग के रूप में 1983 से एक नई श्रेणी की औद्यौगिक इकाइयां इकाइयां जिन्हें नाभिक (केन्द्रक) सयंत्र कहा जाता है, पिछड़े क्षेत्रों में विकसित की जा रही है। नाभिक संयत्रों की सफलता मूलरूप से अनुषंगी करण सम्भावना पर निर्भर करती है। इन संयन्त्रों से अपेक्षा की जाती हैं कि वे अपनी अनुषंगि इकाईयों को प्रोद्योगिकी, डिजाइन, एवं जहां सम्भव हो कच्चा माल उपलब्ध करवायेंगे। मूल (नाभिक) सयंत्र का कम से कम आधा उत्पादन संयोजन एवं उप-संयोजन कार्य के हस्तांतरण और विभिन्न अवयवों के उत्पादन द्वारा अनुषंगी इकाइयों द्वारा किया जायेगा। नाभिक सयंत्र में सृजित रोजगार से कम से कम तीन गुना रोजगार उस सयंत्र की अनुबंधी इकाइयों में सृजित होना चाहिए। एकाधिकार एवं प्रतिबन्धक व्यापार व्यवहार अधिनियम एवं विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम के अन्र्तगत आने वाली

कम्पनियों सहित सभी नाभिक संयत्रों को अतिरिक्त रियायतें एवं प्रोत्साहन उपलब्ध है, जैसे- आवधिक ऋण देने वाले संस्थानों से लिए गये ऋण पर परिवर्तनीयता की शर्त 7 वर्ष तक लागू न करना, बिक्री कर दायित्व से मुक्ति, राज्य कोषों से अतिरिक्त पूंजी विनियोग आर्थिक सहायता आदि। हाल तक ये कंपनियाँ नाभिक संयन्त्र A या B श्रेणी के जिलों में स्थापित करने पर पूंजी आर्थिक-सहायता के लिए भी पात्र थी।

6. अन्य कार्यक्रम

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लि० ने विनियोग आर्थिक सहायता की पात्र पिछड़े क्षेत्रों मैं स्थापित इकाइयों के लिए लघु पैमाने के उद्यमियों कों किराया-क्रय पद्धति पर मशीनरी अर्शित की शर्तो एवं प्रतिबन्धों को उदार बनाया है। पिछड़े क्षेत्रों की लघु पैमाने की इकाइयों के लिए कच्चा माल आयात की सीमा 3 लाख रूपये है, जबकि अन्यों के लिए 3 लाख रूपये। नियंत्रित सामग्री प्राप्त करने में भी वे प्राथमिकता का व्यवहार प्राप्त करेंगी।

संघीय सरकार ने देश में लघु एवं ग्रामीण उद्योगों में छितरा हु आ औद्योगीकरण लाने के लिए कई अन्य अभिकरणों की स्थापना की है। इन अभिकरणों में लघु उद्योग बोर्ड, खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग, अखिल भारतीय हस्तकला बोर्ड, नारियल-रेशा बोर्ड, केन्द्रीय रेशम बोर्ड आदिशामिल है। ये उद्योग औद्यौगिक सहकारिताओं सहित केन्द्रीय सरकार द्वारा पोषित अनेक, अभिकरणों ने रियायती वित्त प्राप्त कर सकते है।

1977 के औद्योगिक नीति वक्तव्य की सिफारिशों की अनुपालना में केन्द्रीय सरकार की योजना के अन्तर्गत लगभग सभी। जिलों में एक ही छत तले उद्यमियों को संपूर्ण प्रशासनिक ढांचा एवं सहायक सेवायें (साख, कच्चे माल की खरीददारी, प्रशिक्षण, विपणन आदि) उपलब्ध कराने के लिए जिला उद्योग केन्द्र स्थापित किये गये है। इन्होंने मध्यम श्रेणी के कस्बों में लघु पैमाने के उद्योगों को प्रोत्साहित करने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विविधता लाने में सीमित सफलता प्राप्त की है।

20.4.3 राज्य स्तर पर योजनायें

केन्द्रीय सरकार द्वारा दी गई रियायतो एवं छूटों के अतिरिक्त, विभिन्न राज्य सरकारों ने भी अपने स्वयं के प्रोत्साहन पैकेज अपने राज्य में उद्योगों को आकर्षित करने के लिए विकसित किये है। इनमें सम्मिलित है - राज्य विनियोग-आर्थिक सहायता, व्याज मुक्त ऋण, आधारिक संरचना की व्यवस्था, रियायती दर्रो या दीर्घकालीन लीज पर विकसित औद्योगिक भूखण्डों का आबंटन, चुंगी शुल्क से मुक्ति या प्रत्यारोपण वापसी, उनके उत्पाद की प्राथमिकता से खरीद, आदि। पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु राष्ट्रीय आयोग (NCDBA:1980) के अनुसार इन सभी प्रोत्साहन में से व्याज मुक्त विक्रय-कर, ऋण सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रमाणित हु आ है। उदीयमान उद्योगों के लिए राज्य द्वारा दी गई रियायतें भी काफी महत्वपूर्ण मानी गई है।

इसके अतिरिक्त, राज्यों के अपने औद्योगिक विकास एवं विनियोग निगम है जो औद्योगिक विकास के लिए उत्प्रेरक का कार्य करते है। वे औद्योगिक परियोजनाओं को केन्द्रीय सरकार से अनुमोदन प्राप्त करते है और प्रवर्तकों को संयुक्त या सहायता-प्राप्त क्षेत्र में शामिल

करने का प्रयत्न करते है। हाल में, राज्यों के मध्य विभिन्न प्रकार के प्रोत्साहन देकर औद्योगिक इकाइयों को आकर्षित करने में स्पष्ट प्रतियोगिता रही है। पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए राष्ट्रीय आयोग (NCDBA) ने पाया है कि इस प्रकार के प्रोत्साहन देने में छीना झपटी की स्थिति है। कुल औद्योगिक लाइसेंसों एवं केन्द्रीय वित्तीय संस्थानों से वित्त में महाराष्ट्र, गुजरात, एवं तमिलनाडु जैसे विकसित राज्यों के बड़े अंश का कारण आधारिक-संरचना सुविधाओं जैसे सड़क उर्जा आदि एवं अन्य सामाजिक सुख सुविधाओं के अतिरिक्त इन राज्यों के प्रोत्साहन पैकेज का अधिक आकर्षक होना है। योजना आयोग ने नई औद्योगिक नीति पर अपनी नोट में विकसित राज्यों द्वारा प्रोत्साहन योजनाओं के माध्यम से प्रतिभार मुहैया कराने पर चिन्ता प्रकट की है। इसने माना है कि "राज्य सरकारों ने रियायतों एवं घंटो के जो पैकेज पेश किये है उन्होंने प्रोत्साहनों की केन्द्रीय योजना के प्रयोजना को विफल कर दिया है।"[(7)]

20.5 क्षेत्रीय विकास नीति की समीक्षा

यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि हाल के वर्षों में पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए सरकार का निजी क्षेत्र पर भरोसा बढ़ रहा है। प्रारम्भिक योजनाओं में यह सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों के स्थान-निर्धारण द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया। इस परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारण है-पिछड़े क्षेत्रों में बड़े सार्वजनिक उद्यमों को स्थापित करने में आने वाला कठिनाइयाँ एवं अलाभ, संचित हानियों की भारी मात्रा एवं क्षेत्र में आनुषंगिक उद्योगों के विकास हेतु निजी विनियोग कर्ताओं को आकर्षित करने में असमर्थता है। जैसा कि 20.4 में विवेचन किया गया है, हाल के वर्षों में निजी उद्यमियों को अपनी इकाइयाँ पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित करने के लिए प्रेरित करने हेतु अनेक प्रोत्साहन अभिकल्प किये गये है। केन्द्रीय विनियोग के पिछड़े से तुलनात्मक रूप से विकसित राज्यों में खिसकने के लिए दीर्घकालीन नीति मे यह परिवर्तन उत्तरदायी है। 1980 - 85 की अवधि में महाराष्ट्र जैसे विकसित राज्य अधिकत्म केन्द्रीय विनियोग प्राप्तकर्त्ता के रूप में उभर, जबकि बिहार एवं मध्य प्रदेश का हिस्सा 19.98 एवं 14.14 प्रतिशत से घटकर क्रमश : 13.24 एवं 12.24 प्रतिशत रह गया।[(8)] दुर्भाग्यवश यह खेद जनक है कि राज्य सरकार की विनिर्माण इकाइयों के स्थान-निर्धारण के सम्बन्ध में बहु त कम सूचना उपलब्ध है। क्षेत्रीय विकास पर सरकारी विनियोग के प्रभाव की व्यापक जांच करने के लिए राज्य स्वामित्व वाले उद्यमों के स्थानिक ढांचे का अध्ययन करना भी आवश्यक होगा।

दूसरा क्षेत्र जिसमें आनुभविक अनुसंधान की आवश्यकता है वह राज्य औद्योगिक विकास एवं विनियोग निगमों की भूमिका जो कि संयुक्त क्षेत्र के उद्यमों में मुख्य सहभागी है। ये निगम अक्सर उद्योगपतियों को लाइसेंस प्राप्त करने एवं सम्बन्धित औपचारिकतायें पूरी करने में सहायता करते है। वे निजी प्रवर्तकों की अपेक्षा अंश पूंजी में तुलनात्मक रूप से अधिक : नागीदारी रखते है अत : स्थान सम्बंधी निर्णय को प्रभावित कर सकते है। लेकिन यह खेद जनक है कि अपनी उच्च स्थिति का उपयोग उन्होंने राज्यों में औद्योगिक छितराव को प्रोत्साहित करने में नहीं कियानिजी क्षेत्र के अधिकांश बड़े उद्यम बाह्य वित्त पर काफी निर्भर

(7) यह नोट 5, 6 एवं 7 जून 1986 के Business Standard (कलकत्ता) में दोहराया गया।

करते है। केन्द्रीय विनियोग आर्थिकसहायता कुल परियोजना लागत का केवल एक छोटा भाग होती है। दूसरी ओर, सर्वाधिक ऋण प्रदाता संस्थान और बैंको से उधार लिये गये कोष उनकी लागत का महत्त्वपूर्णभाग होते है।[9] इसका यह परिणाम निकलता है कि निजी विनियोग कर्ताओं को पिछड़े क्षेत्रों मैं आकर्षित करने मैं विनियोग आर्थिक सहायता की अपेक्षा रियायती वित्त की योजना अधिक महत्वपूर्ण है। बड़े उद्यमों के स्थान को निर्धारित करने वाला अन्य प्रमुख घटक कर रियायतें है।

नियमन करने वाले प्रावधानों से छूट निजी उद्यमियों के स्थान-निर्धारण सम्बन्धी निर्णयों को केवल तभी प्रभावित कर सकती है जब कठोर नियन्त्रण हो अर्थात् नियन्त्रणों को टालने की लागत काफी अधिक हो। विदेशी विनिमय नियमन अधिनियम एवं एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम को बड़े औद्योगिक घरानों को प्रभावित करने वाले दो कड़े उपाय समझा जाता है। यद्यपि, वर्तमान उदार लाइसेंसिंग पद्धति के अन्तर्गत, बहुत थोड़ी कम्पनियां ही इनसे प्रभावित होती है। विदेशी विनिमय नियम अधिनियम के अन्तर्गत आने वाली कम्पनियाँ जो मुख्यत: 'कम प्रायिकता ' एवं हल्की प्रोद्योगिकी वाले उद्योगों में कार्यशील हैं, बहुत कम हैं। गत पिछले वर्षों में उनकी संख्या भी घट गई है, क्योंकि इन इकाइयों में से अधिकांश ने, जो उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में कार्यशील है, अपनी विदेशी अंश पूंजी को 40 प्रतिशत या इससे भी कम करके विदेशी विनिमय नियमन अधिनियमकेनियंत्रण से मुक्ति प्राप्त कर ली है। इनमें से कई एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत नहीं है औरसाथ ही उनकी सम्पतियां 100 करोड़ रूपये के निर्धारित स्तर से कम है। इस प्रकार के उदार वातावरण में, फेरा कम्पनियों को लाइसेंस देने में शिथिलीकरण से पिछड़े क्षेत्रों के औद्योगिकरण में सहायता असम्भव है।

एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम (एम. आर. टी. पी.) के अन्तर्गत पंजीयन को टाला जाना कठिन बनानेकेलिए 1984 में पंजीयनकेमानदण्ड को मजबूत किया गया, लेकिन बड़े औद्योगिक परिवारों के स्वामित्व वाली कई कम्पनियां इन मानदण्डों से बाहर निकलकर [1०] ऐसे उत्पादों के विनिर्माण में लगती है जो, एम. आर. टी. पी. कम्पनियों के लिए खुले नहीं हैं। इसलिए, लाइसेंसिग प्रावधानों में शिथिलीकरण या छूट द्वारा एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के अन्तर्गत आने वाली कम्पनियों को पिछड़े क्षेत्रों की ओर आकर्षित करना असम्भव है।

---

(8) प्रतिशत अंश की गणना सार्वजनिक उपक्रम ब्यूरो के 1980-81 एवं 1984-85 के प्रतिवेदनों मे दी गई (रचना के आधार पर कीं गई है। प्रतिशत की गणना करते समय अन-आबंटित राशि को कुल में से घटा दिया गया है।

(9) Currency and Finance के अध्ययन में शामिल 441 कम्पनियों द्वारा प्रवनित औद्येगिक परियोजनाओं में लगत का 45.8 प्रतिशत सावधि ऋणदानी संस्थानों, बैंक एवं बीमा कम्पनियों का ऋण है। 441 में से नई 409 कम्पनियों में यह प्रतिशत और भी अधिक 54.5 है। इसके विपरीत, केन्द्रीय सरकार से आर्थिक सहायता एक प्रकइशत से कुछ अधिक बनाते है।। (Currency & Finance 1984 & 85 Vol. II Statistical Statement में प्रदत्त सूचना पर आधारित)

इस तथ्य, से कि वर्ष 1983, 1984 एवं 1985 में 561 संकल्प-पत्रों एवं 122 औद्यौगिक लाइसेंस पिछड़े क्षेत्रों में उद्योगों की स्थापना के लिए थे, ऐसा लग सकता है कि एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के अन्तर्गत आने वाली कम्पनियां पिछड़ेक्षेत्रों की और बढ़ रही है।[11] दुर्भाग्यवश, औद्योगिक स्थान-निर्धारण की दृष्टि से सबसे कम आकर्षक, उद्योग विहिन जिलों-में इनमें सें कोई बहुत अधिक नही गई। 1982 से 1 1984 की अवधि में उद्योग-विहिन जिलों के लिए निर्गमित 41 औद्योगिक लाइसेंसों में से केवल 3 इन कम्पनियों द्वारा प्राप्त किये गये थे। [12], श्रेणी A व Bकेजिलों में विनियोग आर्थिक सहायता में केवल 15 लाख रूपये का अन्तर है, जो कि एकाधिकारी एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम के अन्तर्गत आन वाली कम्पनियों के कुल विनियोग: का बहुत छोटा भाग है, परिणाम स्वरूप श्रेणी के अनुसार आर्थिक-सहायता की योजना का उनके स्थान-निर्धारण सम्बंधी निर्णयों पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है। B अथवा C श्रेणी के स्थान का चयन कर वे रियायती वित्त, अनुकूल लाइसेंसिंग नीति, कर-मुक्ति आदि लाभ लेने के साथ औद्योगिक विकास के लिए तुलनात्मक रूप से अच्छे वातावरण का उपभोग कर सकते है। इन इकाइयों में से अनेक बड़े नगरों के निकटवर्ती पिछड़े जिलों में स्थापित की जा रही है। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि कई उद्योगपति पिछड़े क्षेत्रों में इसलिए जा रहे है कि बड़े नगरों में भूमि उपयोग और पर्यावरण संख्या सम्बंधी प्रतिबन्ध है, न कि लाइसेंसिंग में शिथिलीकरण के कारण।

बड़ी कम्पनियों (एकाधिकारी. एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम एवं विदेशी विनियम नियमन अधिनियम के अर्न्तगत आने वाली कम्पनियों सहित) के लिए पिछड़े क्षेत्रों में जाने की अपेक्षा प्रतिबन्धित उद्योगों में प्रवेश एवं विस्तार करने के अनेक वैधानिक रूप से स्वीकार्य, सुविधाजनक, एवं सम्भवतया अधिक लाभदायक तरीके है। बहुत सी कम्पनियां दूसरे निमीताओं/लघु पैमाना क्षेत्र सहित। के उत्पादों का विपणन कर रही है और यह विद्यमान नियमों के अन्तर्गत अनुज्ञेय है। बहुधा बड़ी कम्पनियों ने इसका उपयोग अपने लाभ के लिए ऐसे उत्पादों के बाजार में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए किया है, जिनमें उन्हें अन्यथा निर्माता के रूप में प्रवेश या विस्तार नहीं करना चाहिए।

इस बात पर ध्यान देना भी महत्त्वपूर्ण है कि स्वयं लाइसैंस नियमों में भी समय समय पर शिथिलन होता रहा है। नीति में इस प्रकार के परिवर्तन हाल के वर्षो में बारंबार हुये है क्योंकि सातवीं योजना में भौतिक नियंत्रणों की कठोरता एव फैलाव को घटाने और वित्तीय नियंत्रणों पर अधिक निर्भरता की आवश्यकता को स्वीकार किया गया, जो अवसर तो प्रदान करे किन्तु अकुशलता एवं विलम्ब को प्रश्रय न दें।[13] प्रारम्भिक वर्षो मे भी लाइसेंस पद्धति को कार्यान्वित करना कठिन था क्योंकि निर्माता क्षमता प्रतिबन्धों का कठोरता से पालन नहीं करते थे और क्षमता सीमा का उल्लंघन करने पर कोई शक्ति भी नहीं थी।

ऊपर वर्णित आर्थिक उदारता के दर्शन का सरकार की विभित्र नीति निधारण निकायों में लोकप्रिय होना और औद्योगिक नीति में बदलाव कई अनुभवाश्रित प्रश्न उठाता है। यदि यह तर्क दिया जाय कि बड़े सार्वजनिक क्षेत्र संयत्रों की पिछड़े क्षेत्रों में स्थापना तकनीकी कारणों और उत्पादन की मितव्ययताओं के कारण कठिन है तो यह बात निजी क्षेत्र की परियोजनाओं के लिए

भी सही होगा। यदि सार्वजनिक उद्यम दूरस्थ क्षेत्रों में अलाभकर है क्योंकि उन्हें आधारिक संरचना का विकास और अपने कर्मचारियों के लिए सार्वजनिक सुख सुविधाओं की व्यवस्था करनी होती है, तो यह बात निजी कम्पनियों के लिए भी मान्य होगी, जब तक कि हम सुविधाओं के प्रावधानों की दृष्टि से निजी. एवं सार्वजनिक क्षेत्र के कर्मचारियों में भेदभाव को अनुज्ञेय एवं प्रोत्साहित न करें। इसलिए पिछड़े क्षेत्रों के विकास का दायित्व निजी औद्योगिक घरानों को सौंपना राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए, कल्याण उद्देश्य के त्याग की लागत पर ही, कम खर्चीली प्रस्थापन हो सकती है। यद्यपि, यह मानना युक्तिसंगत होगा कि निजी कम्पनियाँ पिछड़े क्षेत्रो में तब तक नहीं जायेगा, जब तक सरकार औद्योगिक इकाइयों के लिए आवश्यक अधिकांश सुविधायें उपलब्ध नहीं करती। योजना आयोग का हाल ही का एक प्रकाशन स्पष्ट रूप से बताता है कि सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा आधारभूत संरचना और सार्वजनिक सुविधायें उपलब्ध कराने के प्रस्ताव पर गंभीरता से विचार किया जा रहा है। इस प्रकार औद्योगिक नीति में इस परिवर्तन से सार्वजनिक व्यय मैं महत्वपूर्ण कमी असंभव है।

यह तर्क दिया जा चुका है कि सरकारी आर्थिक सहायता बड़े औद्योगिक घरानों के स्थान-निर्धारण निर्णय के लिए कोई सुदृढ़ अभिप्रेरणा नहीं है। वित्तीय एवं राजकोषीय प्रेरणाओं द्वारा उन्हें प्रेरित करनेंकेस्थान पर वैधानिक कार्यवाही एवं अधिमानिक लाइसेंस नीति द्वारा उन्हें पिछड़े क्षेत्रों में स्थान:चयन के लिए बाध्य करना सम्भव है। इस नीति की औद्योगिक छितराव के प्रभावी उपकरण के रूप में काम में लेने की सम्भावना की कमी भी घोषणा नहीं की गई। बड़ी कम्पनियों को प्रेरणायें न्यायोचित भी नही लगती क्योंकि, साधारणतया उनके पास पिछड़े क्षेत्रों में असुविधाओं की क्षतिपूर्ति करनें की प्रबन्धकीय वित्तीय एवं तकनीकी सामर्थ्य है। देश में औद्यौगिक घरानों में से बहुत सें वर्तमान में पिछडे क्षेत्रों में आधारिकसरंचना एवं सुविधाओं का निर्माण करके अपना 'इकाइयां स्थापित करने का सामर्थ्य रखते है। वास्तव में वें ऐसा तब ही करेंगें जब वे अनुभव करेंगे कि नियंत्रक तन्त्र एवं अधिकारी-वर्ग से व्यवहार करने का कोई सरल तरीका नही है। उन्हें कभी भी अपनी इकाइयां बड़े नगरों या उनके समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थापित करने या सरकार पर उनके लिए आधारभूत संरचना विकसित करने के लिए दवाब डालने की अनुमति नही दी जानी चाहिए। यद्यपि, इस दृष्टिकोण की सफलताकेलिए विद्यमान नियंत्रक-तन्त्र को सुदृढ़ करना और इससे बाहर-बाहर निकलने के रास्ते को ध्यान पूर्वक नियंत्रित करना आवश्यक होगा। कुछ आधारभूत सुविधाओं संस्थागत वित आदि का

(10) टी. वी. एस. आयंगर हाउस द्वारा किये गये एक अध्ययन में ऐसी कम्पनियों की सूची दी गई है जो इनके परिवार के सदस्यों द्वारा मद्रास एवं कर्नाटक में प्रारम्भ की गई है। लेकिन इनमें से कई एम. आर. टी. पी. एक्ट के अर्न्तगत पंजीकृत नहीं है। (स्वमिनाथन : 1985). यह बताना भी प्रासंगिक होगा कि रिलायन्स बैंक ऋण मामलों में उद्धृत कम्पनियों में से कोई भी इस अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत नहीं है।

(11) अतारांकित प्रश्न 2059 का राज्य सभा मे 17 मार्च 1986 को दिया गया उत्तर

(12) पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक इकाइयों की स्थापना के लिए 1982 एवं 1984 की अवधि में निर्गमित लाइसेंसों की सूची अतारांकित प्रश्न 654 के उत्तर में राज्यसभा में 29 जुलाई को उपलब्ध कराई गई।

(13) योजना आयोग (1985)

प्रावधान (मुख्य रूप से मध्यम व लघु उद्योयों के लिए) कठोर नियंत्रण पद्वति व बड़े उद्योगों के विशाल नगरों में या उनके समीप स्थापना पर प्रतिरोध के साथ चल सकता है।

यह तथ्य, भी ध्यान देने योग्य हें कि उद्योगीकरण कृत राज्य सदैव अति स्वयं की प्रेरक योजनायें प्रवर्तित करके क्षेत्रीय विकास के लिए केन्द्रीय नीतियों जैसे उद्योग/विहिन जिलों को वरियता आदि के कारण सृजन तुलनात्मक प्रतिकूलता का प्रति-सन्तुलन करने ' प्रयत्न करते है। प्रतियोगिता की स्थिति में स्पष्ट रूप से ही दें अधिक प्रोत्साहन प्रदान करने में' पिछड़े राज्यों की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ स्थिति में होंगे।

विकसित राज्य यह मांग करते है कि क्षेत्र के निर्धारण हेतु को आधार लिया जाय। यह उनके क्षेत्र के अधिक भाग को केन्द्रीय आर्थिक-सहायता और उदार लाइसेंस नीति का पात्र बना देगा [(14)] इस मांग को स्वीकार करने से सारा कार्यक्रम ही धीमा पड़ जायेगा क्योंकि अधिक क्षेत्र तरफदारी वाले व्यवहार के पात्र हो जायेंगे, जिससे पिछड़े क्षेत्रों के हितो को हानि पहुंचेगी। यहां यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि पाण्डे समिति ने महसूस किया था कि विकसित राजा अपने राज्य में उद्योगों का छितराव विप्रेरणाओं द्वारा प्राप्त कर सकते है। दल ने यह भी उल्लेख किया है कि वित्तीय रूप से धनी राज्यों को केन्द्रीय सहायता पर निर्भर रहे बिना ही प्रेरणायें एवं रियायतें प्रदान करनी चाहिए। इसके साथ ही उन्हें पिछड़े राज्यों के साथ प्रतियोगिता में नहीं आना चाहिए। इस दृष्टि कोण को पुष्टि में बहुत कुछ कहा जा सकता है क्योंकि इससे केन्द्र को अपने सीमित संसाधन, पिछड़े राज्यों में व्यय करने का अवसर मिल जायेगा।

दूसरी और, राज्य सरकारों को यह सलाह देना उपयुक्त होगा कि वे विनियोग कर्त्ताओं को फुसलाने में प्रतियोगिता करने के स्थान पर संतुलित क्षेत्रीय विकास के राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में आधारिक संरचना के विकास पर अपने को संकेन्द्रित करें। सरकार कुछ नगरों में उन स्तर की आधारिक संरचना का सृजन करके 'केन्द्रीयकरण के छितराव ' की नीति की उद्घोषणा करती रही है। पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु राष्ट्रीय आयोग (NCDBA:1980) और योजना आयोग द्वारा शहरी विकासकेलिए सुदृढ़ दलील दी थी। शहरीकरण पर राष्ट्रीय आयोग (1988) ने भी आर्थिक गतिकेजनक के रूप में चयनित शहरी केन्द्रों के उनयन की सिफारिश की है। इस दृष्टिकोण के आधार पर, उद्योग मंत्रालय ने देश में एक सौ विषम् कस्बों में उच्च स्तर की आधारिक संरचना- उपलब्ध कराने की योजना अपनायी है। सामाजिक सुख-सुविधायें जैसे विद्यालय, चिकित्सालय औद्योगिक आवास, क्लब आदि भी आधारिक संरचना के अंग होंगे जिनको बड़े निजी उद्यमियों को आकर्षित करने के लिए विकसित किया जायेगा। योजना आयोग संरचना विकास के इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया है और विस्तृत क्षेत्रों को पूँजीगत आर्थिक-सहायता देने की नीति का परित्याग कर दिया है, जैसा कि पहले उल्लेख लिया गया था।

निधि (कोष) की सहायताकेकारण, बड़े निजी उद्यमों को आकर्षित करने के लिए जिस स्तर एवं प्रकार की सुख-सुविधायें अपेक्षित है, उन्हें स्पष्ट रूप से ही बहुत सारे शहरी केन्द्रों पर उपलब्ध नही कराया जा सकता। इसलिए चयनित केन्द्रों पर आधारिक-संरचना में विनियोग का

(14)Financial Express, नवम्बर 15,1985

लाभ उन थोड़े से उद्योगपतियों को प्राप्त होगा जो वहां स्थित है। पिछड़े क्षेत्रों के लघु एवं मध्यम कस्बोंकेहजारों लघु एवं मध्यम स्तर के उद्यमियों की इन आधारिक सुविधाओं तक पहुंच नही होगी। पूंजीगत आर्थिक-सहायता की समाप्ति, जिसे सातवें दशक सें अपनाया गया, बड़े औद्योगिक घरानों के विनियोग निर्णय को, प्रभावित नही करेगी जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है।, लेकिन निश्चित रूप से ही पिछड़े क्षेत्रों में स्थित लघु एवं मध्यम स्तर के उद्यमियों को कई कठिनाइयों में डोल देगी।

इसलिए कुछ केन्द्रों पर आधांरिकसंरचना के विकास का नीति के अभिग्रहण द्वारा संतुलित क्षेत्रीय विकास लाना असम्भाव्य है। किसी भी विकास केन्द्र व्यूहरचना की सफलता के लिएद्वितीयक तृतीयक एवं अन्य निचले स्तर के अधिवासों कों सुदृढ़ करने और स्वस्थ ग्रामीण-शहर सम्बन्धों की स्थापना की आवश्यकता होगी। इसके लिए एक ऐसी नीति की आवश्यकता है जो कुछ बड़े शहरोंकेसाथ अनेक लघु एवं मध्यम कस्बों मे आधारभूत सुविधायें प्रदान कर सके, जिससे देशकेसन्तुलित क्षेत्रीय विकास की प्रक्रिया को बढ़ावा देने वाले संतुलित सोपागमक अधिवास का आविर्भाव हो सकें।

20.6 सारांश

स्वतंत्रता के बाद भारत मे औद्योगिक विकास की शैली क्षेत्रीय संतुलन एवं विकास के दोहरे उद्देश्य से प्रेरित रही है। इन उद्देश्यों को बड़े पैमाने पर सार्वजनिक विनियोग और संस्थागत नियंत्रण द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया है। केन्द्र से योजना आयोग व वित्त आयोग की सिफारिशों के आधार पर कोषोंकेहस्तांतरण का अध्ययन बनाता है कि यह हस्तांतरण उत्तर-पूर्व के छोटे राज्यों और कुछ मध्यम व कम आय वाले राज्यों के पक्ष में रहा है। केन्द्रीय सरकार के उद्यमों के स्थान निर्धारण सें उन राज्यों को सर्वाधिक लाभ हुआ जो खनिज भण्डार और औद्यौगिक संसाधनों मे, धनी थे। निर्धन राज्यों में केन्द्र सरकार द्वारा भारी विनियोग और योजना आयोग द्वारा उनके पक्ष में अधिक हस्तांतरण के बाद भी संस्थागत वित्त के प्रतिगामी बंटन के कारण क्षेत्रीय विषमतायें बढ़ी है। औद्योगिक लाइसेंस नीति भी पिछड़े राज्यों के औद्यौगीकरण में असफल रही है। सातवें एवं आठवें दशक में केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहनों के ढांचे एवं परिमाण में कई परिवर्तन किये गयें जैसे- पिछड़े जिले। क्षेत्रों का तीन श्रेणियों में वर्गीकरण, श्रेणी के अनुसार रियायती वित्त, आर्थिक-सहायता, नियमन एवं अन्य दायित्वों से कुछ लाइसेंसिंग मानदण्डों का शिथिलीकरण, विकास केन्द्र आदि। ये प्रोत्साहन योजनायें भी पिछड़े जिला में बहुत अधिक औद्योगिक इकाइयों को आकर्षित नही कर सकी। आठवें दशक में औद्योगिक लाइसेंस नीति 'का उपयोग शहरी केन्द्रों पर नये उद्योगों की स्थापना रोकने के लिए किया गया। पिछड़े क्षेत्रों मैं नाभिक सयंत्र स्थापित करने की योजना भी परिवर्तित हो गई। हाल के वर्षों में निजी उद्यमियों कों अपनी इकाइयां पिछड़े क्षेत्रों में नाभिक संयन्त्र स्थापित करने की योजना भी प्रवर्तित की गई। हाल के वर्गो में निजी उद्यमियों को अपनी इकाइयां पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित करने हेतु अनेक प्रोत्साहन अभिकल्प दिये गये हें। प्रावधानों मे शिथिलीकरण करके एकाधिक रण एवं प्रतिबन्धात्म्क व्यापार व्यवहार अधिनियम एवं विदेशी विनिमय नियमन अधिनियमनकेअर्न्तगत आनें वाली कम्पनियों को पिछड़े क्षेत्रों में आकर्षित करने का कार्यक्रम भी अधिक सफल नही रहा है। कुछ केन्द्रों पर आधारित संरचना के

विकास द्वारा संनुलित क्षेत्रीय विकास लाना भी असम्भाव्य है। विकसित राज्य भी स्वयं की प्रेरक योजनाओं द्वारा केन्द्रीय नीतियों सें सृजित प्रतिकूलता का प्रति-सन्तुलन करने का प्रयत्न करते है बड़े औद्योगिक घरानों को केवल वैधानिक कार्यवाही और अधिमानसिक लाइसेंस नीति द्वारा पिछडे क्षेत्रो में स्थान चयन के बाध्यकिया जा सकता है।

तालिका 20.1

वित्त आयोग की अनुशंसा पर केन्द्र से राज्यों को कोषों का अन्तरण

क्र. सं.	राज्य-	द्वितीय वित्त आयोग(1957-58 to1961-62)	तृतीय वित्त आयोग (1962-63 to 1965-66)	चतुर्थ वित्त आयोग (1966-67 to1970-71)
1.	आन्ध्र प्रदेश	26.43	33.94	63.08
2.	आसाम	42.17	49.33	122.09
3.	बिहार	22.00	22.09	42.51
4.	गुजरात	18.94	41.28	58.91
5.	हरियाणा	-	-	-
6.	हिमाचल प्रदेश	-	-	-
7.	जम्मू व काश्मीर	71.76	61.08	185.08
8.	कर्नाटक	33.49	34.447	91.93
9.	केरल	24.31	40.49	
10.	मध्यप्रदेश	24.18	26.82	50.05
11.	महाराष्ट्र	30.12	30.22	65.33
12.	मणिपुर	-	-	-
13.	मेघालय	-	-	-
14.	नागालैण्ड	-	18.23	2,164.08
15.	उड़ीसा	28.84	57.67	132.12
16.	पंजाब	51.13	29.05	28.22
17.	राजस्थान	26.47	34.83	64.70
18.	सिक्किम	-	-	
19.	तमिलनाडु	22.68	27.24	61.36
20.	त्रिपुरा	-	-	-
21.	उत्तर प्रदेश	20.49	20.06	50.38
22.	पश्चिम बंगाल	32.55	26.83	56.52
	भारत	26.74	30.39	65.65

तालिका 20.1 लगातार

क्र. सं.	राज्य	पांचवा वित्त आयोग (1969-70 to 1973-74)	छठा वित्त आयोग (1974-75 to 1978-79)	सातवां वित्त आयोग (1979-80 to ....
1.	आन्ध्र प्रदेश	77.99	102.62	294.94
2.	आसाम	130.81	218.09	281.77
3.	बिहार	72.79	134.98	322.24
4.	गुजरात	63.75	222.96	289.80
5.	हरियाणा	59.29	107.16	245.47
6.	हिमाचल प्रदेश	-	520.65	764.87
7.	जम्मू व काश्मीर	231.42	436.62	625.82
8.	कर्नाटक	67.28	200.99	280.37
9.	केरल	90.61	117.72	293.04
10.	मध्यप्रदेश	65.73	117.72	293.04
11.	महाराष्ट्र	76.10	127.06	200.44
12.	मणिपुर	-	1,007.95	1,211.01
13.	मेघालय	-	743.03	1,003.67
14.	नागालैण्ड	1,562.98	2,180.23	3,041.38
15.	उड़ीसा	114.23	234.40	361.80
16.	पंजाब	65.00	124.09	259.00
17.	राजस्थान	86.02	109.19	207.30
18.	सिक्किम	-	-	1,474
19.	तमिलनाडु	72.63	121.11	316.81
20.	त्रिपुरा	-	718.42	940.84
21.	उत्तर प्रदेश	70.20	130.96	814.76
22.	पश्चिम बंगाल	82.32	100.73	347.76
	भारत	82.64	65.32	356.62

तालिका 20.2

केन्द्र द्वारा प्रति व्यक्ति हस्तांतरण

क्र. सं.	राज्य	प्रथम, द्वितीय, एवंतृतीय योजना 1951-66	तीन वार्षिक योजनायें 1966-69	चतुर्थ योजना 1969-74	पांचवी योजना 1974-79
1.	आन्ध्र प्रदेश	110	44	53	152
2.	आसाम	142	72	117	230
3.	बिहार	82	33	79	113
4.	गुजरात	182	26	58	114
5.	हरियाणा	264	58	76	157
6.	हिमाचल प्रदेश	262*	MA	286	613
7.	जम्मू व काश्मीर	262	260	263	902
8.	कर्नाटक	124	45	57	113
9.	केरल	116	52	80	145
10.	मध्यप्रदेश	127	43	83	114
11.	महाराष्ट्र	79	28	47	89
12.	मणिपुर	IV	-	255	600
13.	मेघालय	121**	72	334	771
14.	नागालैण्ड	244**	288	759	1663
15.	उड़ीसा	173	45	71	169
16.	पंजाब	262	45	72	149
17.	राजस्थान	152	50	112	145
18.	सिक्किम	IN	-	472	360
19.	तमिलनाडु	100	35	40	122
20.	त्रिपुरा	IN	-	472	360
21.	उत्तर प्रदेश	80	25	70	143
22.	पश्चिम बंगाल	112	32	40	104
	भारत	111	41	88	143

स्रोत: प्रथम चार पंच वर्षीय योजनाओं के समंक- योजना आयोग की अप्रकाशित सामग्री से लिये गये है पांचवी योजना के समंक RBI Bulletin के विभिन्न अंकों से लिए गए है।

इकाई-21
भारतवर्ष में बहुराष्ट्रीय निगम

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषतायें

21.3 बहुराष्ट्रीय निगमों में प्रवेश में बाधायें

21.4 व्यवसाय विधि तथा तकनीकी

21.5 अमेरिका की दशा बिगड़न

21.6 पूंजीगत तकनीकी

21.7 कनाडा तथा भारत के अनुभव

21.8 सारांश

21.9 शब्दावली

21.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

21.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप

- जान सकेंगे कि बहुराष्ट्रीय निगम किसे कहते है?
- इनके प्रवेश में क्या बाधाएं आती है?
- समझ सकेंगे कि इस सम्बन्ध में भारत के अनुभव कैसे है?

21.1 प्रस्तावना

आज हम ऐसे युग में रह रहे है जिसमें तकनीक के विकास ने विभिन्न राष्ट्रों के बीच की दूरी को घटाकर अत्यधिक कम कर दिया है तथा कोई भी राष्ट्र पूर्ण रूप से स्वावलम्बी होने की बात भी नहीं सोच सकता। एक प्रकार से एक राष्ट्र की दूसरे पर निर्भरता बढ़ गई है। आज की सरकारों का कार्य साधारण व्यक्ति के कल्याण में वृद्धि करना है। अत: विकासशील राष्ट्रों की सरकारें अपने आर्थिक विकास तथा देशवासियों की भलाई के लिये बहुराष्ट्रीय निगमों से तालमेल बनाये हुए है।

बहुराष्ट्रीय निगम की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि यह एक ऐसी संस्था अथवा निगम है जिसमें, एक या एक से अधिक देश का अधिपत्य होता है। परन्तु इसका उत्पादन अथवा सेवायें. विभिन्न राष्ट्रों को भेजी जाती है, जो मुख्य रूप से विकासशील देश है। इसमें लगी हुई सम्पत्ति उन्हीं राष्ट्रों द्वारा लायी जाती है जिनका इन पर आधिपत्य है। इस निगम में कार्य करने वाले लोगों का चयन पूर्णरूपेण योग्यता पर आधारित होता है। भले ही वे उस देश के न हों जहां पर ये निगम कार्य कर रहे हों। इस प्रकार ये बहुराष्ट्रीय निगम राष्ट्रीय फर्म अथवा निगम से भिन्न होते है।

21.2 बहुराष्ट्रीय निगमों की विशेषतायें

बहुराष्ट्रीय निगमों की कुछ प्रमुख विशेषतायें है जो इन्हें स्थानीय निगमों या राष्ट्रीय निगमों से अलग करती है, वे इस प्रकार से है :-

1. यह निगम शोध नथा विज्ञापन पर अधिक व्यय करती है, उन कम्पनियों की तुलना में जिनका कार्य क्षेत्र इतना व्यापक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय नहीं है। उदाहरण के लिये अमेरिकी बहुराष्ट्रीय निगमों को लिया जा सकता है।
2. इसी प्रकार यह निगम जिनमें मुख्य रूप से अमेरिकन कम्पनी आती है, अधिक बड़े होते है तथा उनकी उत्पादन पद्धति में विभिन्नता अधिक होती है। इनका विशेष जोर निर्यात पर होता है तथा यह अपने कार्यकर्ताओं को अधिक मजदूरी देते है।
3. यह निगम मुख्य रूप से अपने दृष्टिकोण में अन्तर्राष्ट्रीय होते है। हालांकि जापानी बहुराष्ट्रीय निगम जो कि मुख्य रूप से तकनीकी विस्तार पर आधारित है, अपने दृष्टिकोण में इतने व्यापक नहीं है।
4. यह निगम समस्त बाहर से आने वाली रायल्टी, फीस तथा लाभ के 90% भाग के उत्तरदायी है
5. इन निगमों के द्वारा जो प्रत्यक्ष विनियोग अन्य राष्ट्रों में हो रहा है उसके कारण विभिन्न राष्ट्रों में एक प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा आ गई है तथा विभिन्न औद्योगिक राष्ट्रों में समानता की प्रवृति भी इसी कारण से आयी है। बहुराष्ट्रीय निगम वर्तमान औद्योगिक राष्ट्रों के विकास का प्रतीक है। वर्तमान समय में यह वाद-विवाद का विषय बन गया है। प्रथम, इनका आकार बहुत बड़ा होता है। द्वितीय, यह निगम जिन व्यापारिक गतिविधियों में निपुण होते है उन्हीं पर जोर देते है। भले ही यह गतिविधि राष्ट्रीय हित से मेल न खाती हो। तृतीय, इनके नियन्त्रण तथा प्रबन्ध की जो विधि है वह अलग है।

   हालांकि यह नहीं समझना चाहिये कि ये निगम सदैव राष्ट्र के हित में कार्य नहीं करते। इनसे विकासशील राष्ट्रों को कई प्रकार के लाभ भी प्राप्त हुये है, मुख्य रूप से तकनीक के क्षेत्र में।

21.3 बहुराष्ट्रीय निगमों मे प्रवेश में बाधायें

बहुराष्ट्रीय निगमों को कई प्रकार की बाधाओं का सामना करना पड़ता है। प्रथमत : इन निगमों का संगठन अत्यंत विकसित होना चाहिये ताकि यह आने वाली जटिल समस्याओं को सही प्रकारसे संभाल सके। मुख्य रूप से ये क्षेत्र है, डिजाईन, उत्पादन सम्भव करना जिसके लिये उत्पादित वस्तु का चयन अति आवश्यक है, और फिर उत्पादित वस्तु को बाजार में सफलता से बेचना। यहाँ पर यह बात विदित है कि कुछ-विकासशील राष्ट्रों में इनका विरोध होता रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि अपने बड़े आकार के कारण इन निगमों को मेहमान देश में अपना समान बेचने में उस देश के उत्पादकों की अपेक्षा कई प्रकार के लाभ प्राप्त होते है। जैसे, तांबा, ऐल्यूमीनियम. तथा वाहन उद्योग आदि में देखा गया है। इस प्रकार राष्ट्रीय उत्पादकों के हित में तथा 'बहुराष्ट्रीय निगमों में विरोध होता रहता है। इसी प्रकार से कुछ अन्य बाधाओं का

भी सामना करना पड़ता है, जैसे लाइसेन्स नीति तथा बाजार में पुराने चलने वाले पेटेन्ट या नाम।

बहु राष्ट्रीय निगम प्राय : विभिन्न प्रकार के उत्पादन में व्यवसाय करते है इससे उनकी प्रबन्ध सम्बन्धी समस्यायें तो बंट ही जाती है साथ ही यह बाजार में उनकी प्रतिस्पर्धा की शक्ति को बढ़ाकर दृढ़ता भो प्रदान करता है। किसी वस्तु की मांग की कमी या धीमेपन की दूसरी वस्तु की मांग बढ़ाकर पूरा किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त वह क्षेत्र जिसमें यह निगम कार्य करती है तुलनात्मक रूप से बड़ा होता हैं जिससे भी इसे लाभ प्राप्त होता है। प्रारम्भ में यह निगम अति सतर्कता से नई दशा के बाजार में प्रवेश करती है। परन्तु जब एक बार इनके पैर इस क्षेत्र में जम जाते है तो यह बहु त तेजी से बढ़ते है

21.4 व्यवसाय विधि तथा तकनीकी

बहु राष्ट्रीय निगमों का क्षेत्र जहां तक औद्योगिक विकास का प्रश्न है, वाद-विवादात्मक रहा है। इन निगमों का महत्व तकनीकी उत्थान तथा वैज्ञानिक क्षेत्र में पर्याप्त माना जाता हैं, परन्तु इस बारे में कभी-कभी शंका भी व्यक्त की गयी है। इसमें सन्देह नहीं कि ये निगम, नये-नये उत्पादन बाजार में रखने में सफल हु ये है। जिनमें अधिक मात्रा में धन की आवश्यकता होती है और उत्पादन काल भी अधिक होता है। बहु राष्ट्रीय निगमों की सफलता के कारण कभी-कभी इन निगमों तथा स्थनिय उद्योंगों अथवा सरकारों में खींचातानी होने लगती है। कभी-कभी ऐसा सोचा जाता है कि इन निगमों के कारण देश के आर्थिक विकास व तकनीकी के सृजन में बाधा उत्पन्न हो रही है और देश विदेशी तकनीकी तथा पूंजी पर अनावश्यक रूप से निर्भर होता जा रहा है।

बहु राष्ट्रीय उद्योगों को प्राय : स्थानीयकरण सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्यायें तीन प्रकार की हो सकती है। प्रथम, कहां पर उत्पादन प्रबंधित का कार्य किया जाये, द्वितीय कहां पर वस्तु निर्माण किया जाये, तथा तृतीय कहां उत्पादित वस्तु को बेचा जाये। बहुराष्ट्रीय निगमों के लिये नये उत्पादन की बिक्री में परीक्षण करना अपने ही देश में अधिक सरल व लाभकारी है दूसरे देशों की तुलना में। वास्तव में शोधकार्यों 'से ऐसा पता चला है कि वे वस्तुएं अथवा उत्पादन जिनकी स्थानीय खपत अथवा मांग होती है उनके बारे में अन्वेषणात्मक सफलता अधिक सरल हें। उदाहरणार्थ तकनीकी सिद्धान्त अथवा वैज्ञानिक सिद्धान्त चाहे कहीं भी विकसित हु आ हो, परन्तु जय उसको उत्पादन में बदला जाना है तो स्थानीय स्वीकृति तथा पर्याप्त मांग आवश्यक हो जाती है। ये बात जापान के छोटे-छोटे टेलिविजन व रेडियो सेट के सम्बन्ध में सही उतरती है। जो जापान के सरल रहन-सहन के हिसाब से अधिक. उपयुक्त थे।

निम्नलिखित तालिका में विभिन्न. देशों में हु ए विभिन्न प्रकार की अन्वेषणात्मक सफलतायें दिखाई गयी है जो विभिन्न कारकों पर आधारित है।

तालिका 21.1

बहु राष्ट्रीय निगमों द्वारा अपनाई गई पद्धति

अन्वेषण के उद्देश्य	संयुक्तराष्ट्र अमेरिका		इंग्लैण्ड		द्वीप यूरोप		जापान	
तथा स्वरूप	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
I. **अन्वेषण की प्रक्रिया**								
1. पदार्थ अथवा सामान की बचत	58	18.8	122	47.8	95	3.7	12	48.0
2. श्रम की बचत	189	61.1	66	25.9	32	18.1	04	15.0
3. पूंजी की बचत	58	18.8	61	23.9	43	24.3	07	28.0
4. विविध बचतें	04	1.3	06	2.4	07	3.9	02	8.0
कुल योग	309	100.0	255	100.0	177	100.0	25	100.0
II. उत्पादन अन्वेषण								
1. पदार्थ अथवा सामान की बचत	117	22.6	127	40.3	100	50.3	20	29.0
2. श्रम की बचत	142	27.5	13	4.1	09	4.5	20	2.9
3. नवीन फलन	106	20.5	50	15.9	33	6.6	12	17.4
4. अन्य	152	29.4	125	39.7	57	28.6	35	50.7
कुल योग	517	100.0	315	100.0	199	100.0	87	100.0

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि अन्वेषण स्थानीय मांग से प्रभावित होता है। उदाहरण के, लिये अमेरिकन अन्वेषण का आधार श्रम की खपत को व्यय करना था, क्योंकि - अमेरिका में श्रम अभाव तथा अन्य अधिक थी। इसके विपरीत अन्य क्षेत्रों में अन्वेषण का उद्देश्य सामान की बचत है

इन कारकों की सफलता में अन्तत : मुख्य बात तकनीकी. कुशलता न रहकर उत्पादन लगान तथा उस वस्तु की अमुक बाजार में कितनी मांग है।. इस पर निर्भर करती है। सत्यता यह है कि विकासशील राष्ट्र में अधिकतर जनसंख्या की आय कम है और उनमें आर्थिक तथा सामाजिक पिछड़ापन है जिसके कारण प्राय:वे कम लागत का सामान मांगते है। बहु राष्ट्रीय निगमोंकेप्रमुख राष्ट्रों को यह बात समझना चाहिये कि सफलता के लिये उनके सहयोगी राष्ट्रों के आर्थिक वातावरण की अध्ययन अति आवश्यक है। समस्त अन्वेषण इन्हीं बातो को ध्यान में रखकर किये जा रहे है। एक सफल उत्पादन को बाजार में रखने के लिये कई प्रकार के परीक्षण करने पड़ते है और उनको 'कई अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। यदि दो प्रतिस्पर्धात्मक उत्पादनों के बीच में चयन करना है तो इस सम्बन्ध में निर्णय बहु त छानबीन से करना पड़ता है। और इस बात का अध्ययन करना पड़ता है कि उपभोक्ता इनमें से किसका चयन करेंगे तथा किन कारणों से वह अमुक उत्पादन को इस्तेमाल करना चाहेंगे। इस प्रकार बहु राष्ट्रीय निगमों के उपभोक्ता की मांग से सम्बन्धित शोध कार्य निरन्तर करना पड़ता है। नयी उत्पादन इकाई कहां

पर रखी जायेगी। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि जिन देशों में इनकी खपत होगी वहां की व्यापार नीति तथा आयात कर संरचना किस प्रकार की है। हवाई जहाज के निर्माण तथा कपड़ा उद्योगों में ऐसा पाया गया कि बदलती आवश्यकताओं व मांग के कारण अतिशीघ्र उत्पादन मांग के बाहर हो गया है, इस कारण बहुराष्ट्रीय निगम यह विचार करने पर विवश हो गये कि यदि कोई नया उत्पादन विचार किया जाये तो वह घरेलू बाजार तथा परिस्थितियों से अलग नहीं होना चाहिये।

21.5 अमेरिका की दशा बिगड़न

उदाहरण स्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध से संयुक्त राष्ट्र, अमेरिका का बाजार पर अधिपत्य बना हुआ है तथा शोध कार्य में भी अमेरिका अत्यधिक आगे है। इस बात का प्रमाण इससे भी मिलता है कि नोबेल पुरस्कार विजेता विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में अधिकतर, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के ही है, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रमुख रूप से 1970 के पश्चात संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का उत्पादन तथा उसके निर्यात जापान एवं अन्य यूरोपीय देशों की तुलना में घटे है। मुख्य रूप से यह कमी दूरदर्शन, प्लास्टिक सामान, दवाइयां, रेफ्रिजिरेशन सम्बन्धी सामान तथा यांत्रिक उपकरणों के क्षेत्र में आई है। मोटर गाड़ी के उद्योग के क्षेत्र में भी संयुक्त राष्ट्र अपनी बढ़त को बनाये रखने में असफल रहा है। 1970 के बाद एक समय ऐसा आया जबकि जापान तथा अन्य यूरोपीय देशों की सस्ती तथा अधिक उपयोगी गाड़ियों ने अमेरिका के कार उद्योग में मंदी की प्रवृतियां उत्पन्न कर दी। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में इस समय कार बनाने के उद्योग में जो मंदी आई थी उसका मुख्य कारण अमरीकन उद्योगपतियों की उपभोक्ता की मांग का सही विश्लेषण नहीं करना था। वास्तव में उपभोक्ता के अधिमान में परिवर्तन होता रहता है और इसका अध्ययन अति आवश्यक होता है! यदि कोई भी उद्योग इसकी अवहेलना करेगा तो उसे हानि उठानी पड़ेगी। इस सबके बावजूद कुछ अन्य क्षेत्रों में अमेरिकन उद्योग उत्तरोत्तर वृद्धि करता है। जैसे - लोहा इस्पात, अल्युमीनियम, रसायनिक तथा मुख्य रूप से औद्योगिक विद्युत उपकरण तथा कम्पयूटर उद्योग। इन क्षेत्रोंकेअलावा लेसर जैसे तथा खान सम्बन्धी उपकरण व अंतरिक्ष उपकरण भी सम्मिलित थे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का इन क्षेत्रों में सफलता का कारण न केवल संयुक्त राष्ट्र के बाजार का बड़ा आकार था वरन् मुख्य रूप से यह बात भी थी कि सरकार ने स्वयं इस कार्यक्रम को बड़े स्तर पर चलाया और सहायता दी। इस सहायता में अनुदान भी सम्मिलित था उसका लगभग 50% सरकारी धन था।

विकसित राष्ट्रों की इस प्रगति की तुलना में जब हम प्रगतिशील राष्ट्रों थे देखते है तो हम ये पाते है कि वहाँ तकनीकी विकास के बारे में इस प्रकार की उत्सुकता नहीं है कुछ प्रगतिशील राष्ट्र तो केवल पाश्चात्य विकसित तकनीक को ज्यों की त्यों अपनाना चाहते है तथा अपना रहे है। इनमें मुख्य रूप से कुछ रसायनिक मशीन उपकरण तथा विद्युत मोटर सम्मिलित है, जबकि कुछ विकसित राष्ट्र तकनीक की अपनी आवश्यकताओं तथा हालात के अनुसार बदलकर अपनाने की चेष्टा कर रहे है। इस प्रयास को बीच की तकनीक कहा जा सकता है जो न अत्यधिक पूंजीगत है, न श्रमगत। इस सम्बन्ध में हम ये पाते है कि कुछ तकनीक विकास सबकी प्रमुख सामान्य विशेषतायें इस प्रकार है : जैसे, अधिकतर इस प्रकार की

तकनीकी खोज विकसित औद्योगिक राष्ट्रों में हुई, परन्तु इसको लागू करते समय आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जाना ही विकासशील राष्ट्रों के हित में है। मैक्सिको, ब्राजील तथा भारतवर्ष में विभिन्न क्षेत्रों में जो प्रयास हुए है वे विकासशील राष्ट्रों के लिये अधिक उपयोगी है, जापान तथा यूरोपीय तकनीक की तुलना में।

विकासशील राष्ट्रों में समस्या न केवल कभी-कभी अनुपयुक्त उत्पादन की है वरन् वहां पर एक महान समस्या अत्यधिक उत्पादन की किस्मों की है। जिसके कारण उपभोक्ता को निर्णय लेने या चयन करने में कठिनाई उत्पन्न होती है। अभाग्यवश कई प्रसाधन वस्तुएँ, खाने की वस्तुएँ, सिगरेट आदि का उत्पादन, छोटे-छोटे स्तरों पर विभिन्न प्रकार की किस्मों में किया जा रहा हें और विज्ञापनों द्वारा उनको विभिन्न प्रकार मे उपभोक्ताओं तक पहुंचाने का प्रयत्न किया जा रहाहै। प्रत्येक वस्तु का विज्ञापन अपनी वस्तु को श्रेष्ठ या सर्वश्रेष्ठ बताता हे। निश्चय ही आम आदमा के लिये यह जानना कठिन हो जाता है कि कौन सी वस्तु अधिक उत्तम है।

21.6 पूंजीगत तकनीकी

बहुराष्ट्रीय निगम भी किसी हद तक इस प्रकार की स्थिति के लिये जिम्मेदार है जो न केवल नवीन उत्पादन वरन् नवीन तकनीक को सामने लाती जा रही है।

बहुराष्ट्रीय निगम का उतादन बड़े स्तर पर होता है जिसके कारण बड़े स्तर की मितव्ययताऐं प्राप्त होती है।और उत्पादन लागत घट जाती है। अत : इन कम्पनियों में श्रम लागत उत्तरोत्तर बढ़ रही है और एक प्रकार से पूंजीगत लागत तुलनात्मक रूप से घट रही है। बहुराष्ट्रीय उद्योगों के उत्पादन पर यह रोक लगाई जाती है कि ये अत्यधिक पूंजीगत है और वे उन्हीं उद्योगों में केन्द्रित है जो पूंजी अधिक प्रयोग करते है जहाँ पर बहुराष्ट्रीय निगमों के सहायक देशों के उद्योग घरेलू उद्योग के साथ कार्य करते है अथवा प्रतिस्पर्धा करते है वहां पर ऐसा पाया गया है कि ये उद्योग बहुत बड़े आकार के होते है जिनके कारण उनकी उत्पादन क्षमता भी अधिक होती है। घरेलू उद्योगों को इनसे प्रतियोगिता में कठिनाई उत्पन्न होती है। इसी कारण आम जनता ये समझती है कि समस्त बहुराष्ट्रीय उद्योग अत्यधिक पूंजीगत उद्योग होते है। इस सम्बन्ध में कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि यदि इन उद्योगों को घरेलू बड़े आकार के उद्योगों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है तो बहुराष्ट्रीय उद्योग ऐसी तकनीक का चयन करते है जो अधिक विकसित तथा अधिक पूंजीगत होती है। विकासशील राष्ट्रों में बहुराष्ट्रीय निगम इन परिस्थितियों में अपनी उत्पादन लागत का अनुमान ध्यानपूर्वक करते है ताकि वे वहां पर प्रतिस्पर्धा कर सकें, परन्तु जब वे इन्हीं राष्ट्रों में अपने उत्पादन को अन्तर्राष्ट्रीय ब्रांड के अन्तर्गत बेचते है तो लागत पर इतना ध्यान नहीं देते क्योंकि उस समय उत्पादक विदेशी वस्तु के नाम या धोखे से खरीदता है।

21.7 कनाडा तथा भारत के अनुभव

ये एक वास्तविकता है कि इस प्रकार की बहुत सी तकनीक तथा उतादन विकसित राष्ट्रों के लिये उत्पन्न की गई थी वे विकासशील राष्ट्रों में भी बहुत उपयोगी पाई गई। दूसरे वो तकनीकें जिनमें श्रम की बचत होती है, एक प्रकार से पूंजी की भी बचत सम्भव कराती है। श्रम-प्रधान तकनीक में जो पूंजी बचत उसे अन्यत्र लगाकर विकास प्रक्रिया को बढ़ाया जाता है,

तथा अधिक रोजगार का सृजन किया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यहां उत्पादन लागत कुछ अधिक होती है। परन्तु लागत ही विचार में रखी जाये तो लागत तकनीक का चयन ही करना होगा। वर्तमान समय में कभी-कभी ऐसा देखने में आया है कि भारत केवल बहुराष्ट्रीय तकनीक को चुपचाप सहन कर रहा है और केवल इसीलिये इसका विरोध नहीं कर रहा है कि कहीं पाश्चात्य देश नाराज न हो जायें।

यह देखना रुचिकर होगा कि इस सम्बन्ध में भारत और कनाडा के अनुभव क्या-क्या है? सच्चाई तो ये है कि दोनों ही देश एक दूसरे से कुछ न कुछ सीख सकते है।

कनाडा मुक्त व्यापार नीति को अपनाये हुऐ है और इस कारण कनाडा में विदेशी तकनीक तथा सामान, मुख्य रूप से अमेरिका का, स्वतंत्र रूप से आ रहा है। इससे कनाडा- की अर्थव्यवस्था का कई दिशा में विकास हुआ है, राष्ट्रीय उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति आय बढ़ी है, रोजगार बढ़ा ने- और साथ ही साथ विदेशी ऋण से कनाडा बचा है तथा कनाडा को अपना भुगतान सन्तुलन ठीक रखने के लिये बड़ी मात्रा में सोना आदि बाहर नहीं देना पड़ा है, परन्तु साथ ही साथ हम में भी देखते है कि इस प्रकार कनाडा विदेशी तकनीक तथा व्यापार पर अत्यधिक निर्भर हो गया है और उसकी स्वयं की तकनीक का विकास रुक गया है। इसके विपरीत भारतवर्ष में विदेशी सामान तथा तकनीक पर रोक लगाई जिसके कारण हमें विदेशों से न केवल बड़ी मात्रा में ऋण तथा तकनीक ऋण के रूप में लेनी पड़ी जिससे देश को अत्यधिक नुकसान पहुंचा है।

निश्चय ही बीच का रास्ता दोनों राष्ट्रों के लिये अधिक उत्तम होगा।

भारतवर्ष में जो कठिनाइयों उत्पन्न हुई है वो इस प्रकार से है -

1. देश विदेशी ऋण जाल में फंसता जा रहा है।
2. बाहर से ली हुई तकनीक को आधुनिकतम बनाने के लिये विदेशियों पर निर्भरता और अधिक ऋण।
3. हमें विदेशी तकनीक के धारकों पर अधिक निर्भर करना पड़ा है जिन्होंने हमें पर्याप्त मात्रा में सहायता नहीं की।
4. विदेशी वित्तीय संसाधनों पर निर्भरता जिनका मिलता हुआ धन अनार्थिक सार्वजनिक उद्योगों पर खर्च किया गया है। हालांकि इनसे कुछ सामाजिक लाभ उत्पन्न हुए।
5. विदेशी विनियोग उन उद्योगों में लगाया गया जहां पूंजी निर्माण कम हुआ और देश के विकास में बाधा आई।
6. देश में स्वयं की तकनीक पर अपर्याप्त विनियोग, अत : इससे लाभ कम हुआ।
7. आयात तथा आयात-प्रतिस्थापन पर अधिक जोर दिया गया परन्तु अपनी स्वयं की तकनीक के विकास पर उतना ध्यान नहीं दिया गया।

बोध प्रश्न - 1

1. बहुराष्ट्रीय निगम किसे कहते है? उदाहरण सहित स्पष्ट करिये।
2. बहुराष्ट्रीय निगमों की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख करिये।
3. बहुराष्ट्रीय उद्योगों के प्रमुख उद्देश्यों का उल्लेख करिये।

4. क्या आप के विचार में बहु राष्ट्रीय निगमों से विकासशील राष्ट्र जैसे भारत देश को लाभ पहुंचा है? प्रमुख लाभों को केवल बिन्दुओं में लिखिये।
5. बहु राष्ट्रीय निगमों से विकासशील देशों को क्या-क्या हानि पहुंची है,? केवल बिन्दुओं में उत्तर लिखिये।
6. क्या आप के विचार में बहु राष्ट्रीय निगमों की कार्यविधि पर रोक लगाये जाने की आवश्यकता है? संक्षेप में लिखिये।
7. तकनीकी-हस्तान्तरण तथा बहु राष्ट्रीय निगम पर एक टिप्पणी लिखिये।

21.8 सारांश

इस प्रकार हम ये देखते है कि बहु राष्ट्रीय निगम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के ऊपर एक ऐसा प्रयास है जिसके द्वारा विकसित राष्ट्र तथा विकासशील राष्ट्र एक दूसरे से तालमेल करके उन कम्पनियों का अथवा निगमों को अपने देश में कार्य करने की स्वीकृति देते है जो कई राष्ट्रों द्वारा मिला-जुला कर बनाई जाती है। सामान्यतया इनकी तकनीक अधिक उत्तम होती है तथा इनके वित्तीय स्रोत भी अधिक होते है। इनकी प्रबन्ध क्षमता व्यापक तथा आधुनिक होती है और इनका क्षेत्र लगभग अन्तर्राष्ट्रीय होता है। इन निगमों के कारण कोई राष्ट्र बिना प्रत्यक्ष विदेशी सहायता अथवा तकनीक के बगैर विकास कर सकता है। पूंजी विनियोग जो महत्वपूण समस्या है उसका हल हो जाता है। विदेशी नई तकनीक जो उसके पास नहीं है, वह प्राप्त हो जाती है, देश में रोजगार बढ़ता है। वास्तव में आज की अवस्था में तकनीक इतनी विकसित हो गई है और दूरसंचार इतना व्यापक तथा क्षमतापूर्ण हो गया है कि संसार की दूरी सिकुड़कर बहुत कम हो गई है। समस्त संसार ही एक कुटुम्ब बन गया है। अब ये कहना कि बहुराष्ट्रीय निगम सदैव देश के हित में नहीं होतें है उपयुक्त न होगा। वास्तव में यदि इनका भली प्रकार से नियंत्रित किया जाये और इनसे होने वाले लाभों तो अधिकतर उन्हीं देशों में पुन : लगाया जाये जहां ये उत्पन्न हो रहे है तो इसमें कोई संदेह नही कि राष्ट्रीय निर्माण का यह सरल तरीका है। प्राय : ऐसा देखा गया है कि इन निगमों के अभाव में विकासशील देशों को बड़ी मात्रा में विदेशी ऋण तथा तकनीक लेनी पड़ी है जिससे नाना प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न हुई है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहु राष्ट्रीय निगमों की कार्य विधि में कई दोष भी है यह निगम अधिकतर लाभ देश से बाहर ले जाते है तथा देश के लोगों के कल्याण का उतना ध्यान नहीं देते, जितना कि देना चाहिये। (जैसे भोपाल गैस त्रासदी) कभी-कभी ऐसा भी समझा जाता है कि ये अपनी तिरस्कृत तकनीक को अन्य देशों पर थोपते है। और इस प्रकार यह तकनीक जिस देश में लगाई जा रही है उसकी परिस्थितियों के अनुकूल नहीं होती। निश्चय ही देश को लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है। प्राय : ऐसा भी कहा जाता है कि निगमों के माध्यम से पाश्चात्य देश नये देशों पर अपना आधिप्रत्य बनाये रखना चाहते है। इस प्रकार दासता अथवा उपनिवेशवाद का यह एक नया स्वरूप है।

21.9 शब्दावली

1. **श्रम प्रधान तकनीक : -** यह तकनीक मुख्य रूप से विकासशील राष्ट्रों में, प्रयोग की जाती है इसमें श्रम का प्रयोग अधिक होता है, परन्तु उत्पादकता कम होती है। इसमें रोजगार अधिक होता है।
2. **पूंजी प्रधान तकनीक :-** यह पाश्चात्य तकनीक है, इसमें अधिक पूंजी लगाई जाती है। इसका आधार आधुनिक मशीन तथा उपकरण होता है। उत्पादकता अधिक होती है परन्तु रोजगार घट जाता है।
3. **उपयुक्त तकनीक : -** यह तकनीक ऊपर की दोनों तकनीकों के बीच का मार्ग है, इसमें स्थानीय बातो को ध्यान में रखा जाता है तथा परिस्थितियों के अनुसार इसे श्रम-प्रधान या पूंजी-प्रधान बनाया जाता है। जोर इस बात पर होता है कि पर्याप्त रोजगार इससे उत्पन्न हो तथा उत्पादन भी ठीक हो। इसी को राष्ट्रीय तकनीक अथवा देशी तकनीक भी कह सकता है।
4. **आविष्कार -** आविष्कार का अर्थ सैद्धान्तिक रूप से किसी नयी चीज का जन्म देना है जिसका आधार विज्ञान तथा तकनीक होता है।
5. **अन्वेषण : -** इसका यह तात्पर्य है कि अविष्कार को उत्पादन कार्य में प्रयुक्त करके व्यापारिक प्रयोग किया जाये।
6. **अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संस्थायें :-** ये संस्थायें मुख्य रूप से दो प्रकार की है -

   (अ) **विश्व बैंक :-** जो विकास कार्यो के लिये ऋण देता है।

   (ब) **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष -** जो भुगतान सन्तुलन को सही रखने के लिये ऋण देता
7. **व्यापार-सन्तुलन:-** इसमें केवल वस्तुओं के आयात-निर्यात को ही रखा जाता है।
8. **भुगतान सन्तुलन :-** इसमें समस्त दृश्य अ अदृश्य चीजों को सम्मिलित? किया जाता है जिसमें पूंजी आदि का हस्तान्तरण भी सम्मिलित है।
9. **आयात-प्रतिस्थापन:-** इसके अन्तर्गत आयात की जाने वाली वस्तु के देश के अन्दर ही उसका विकल्प ढूंढा जाता है जिससे विदेशी मुद्रा की बचत हो।
10. **लाभ को बाहर भेजना:-** बहुराष्ट्रीय निगम होने वाले लाभ को अपने देशों को भेजती है जिनका अनुपात भिन्न-भिन्न होता है।
11. **मुक्त व्यापार:-** इसके अन्तर्गत व्यापार पर किसी प्रकार की रोक-टोक नही होती।

21.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की हेन्डबुक ऑफ एअरलाइन्स स्टेटिस्टिक्स, 1975
2. सांख्यिकी वार्षिक पुस्तक, 1972 - (पेन्सि-यूरेस्को 1973)
3. बुलेटिन ऑफ द सोसाइटी फॉर लेटिन अमेरिका कन्ट्रीज, नं० 26 मार्च 1976
4. आर० एफ० कुट्रेल: एग्रीकल्चरल ट्रैक्टर कैम्ब्रिज : 1973
5. नेशनल काउन्सिल फॉर एपलाइड इकोनोमिक रिसर्च विदेशी तकनीक तथा विनियोग न्यू देहली. 1971

21.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बहुराष्ट्रीय निगम ऐसे निगम होते है जो कई राष्ट्र मिलकर बनाते है पर इनका कार्यक्षेत्र अन्तर्राष्ट्रीय होता है। मुख्य रूप से ये विकासशील राष्ट्रों में कार्य करते है। इनमें मुख्य रूप से अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी के द्वारा बनाये गये निगम होते है।
2. ये निगम अधिक पूंजीगत उद्योगों में पैसा लगाते है तथा इनका अधिक जोर तकनीक के विकास और शोधकार्य पर होता है। साथ ही साथ इनका आकार बहुत बड़ा होता है। और उत्पादन में विभिन्नता अधिक होती है। ये अधिक मजदूरी देते है। प्रबन्ध होता है, तथा विज्ञापन पर भी जोर देते है।
3. इनका मुख्य उद्देश्य विकसित तकनीक को अन्य देशों तक पहुंचाना है। साथ ही नये-नये उत्पादन को इन देशों को देना होता है।
4. यह प्रश्न विवादात्मक है क्योंकि एक प्रकार से इन निगमों से भारतवर्ष लाभ पहुंचा है जैसा कि उपसंहार में बताया गया है।
5. बहुराष्ट्रीय निगमों से विकासशील राष्ट्रों को कई प्रकार की कठिनाइयां महसूस हुई है। इनका भी उल्लेख उपसंहार में कर दिया गया है।
6. वास्तव में इन निगमों पर सम्पूर्ण रोक लगाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि देश में पूंजी की कमी है और हमारी औद्योगिक नीति के अनुसार अधिकाधिक विदेशी पूंजी की जरूरत है। परन्तु इस बारे में सतर्कता आवश्यक है। हमें अपनी परिस्थिति अनुसार भी करना चाहिये ताकि स्वदेशी तकनीक को बढ़ावा मिले।
7. जैसा उपसंहार में बताया जा चुका है। तकनीकी हस्तान्तरण से नये देशों को लाभ हुआ है। परन्तु इस बारे में हमें यह देखना चाहिये कि इस तकनीक से हमारी राष्ट्रीय तकनीक के विकास पर किसी प्रकार का बुरा असर नही पड़ता।

परिशिष्ट

जुलाई 1991 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा के बाद भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रति उदारवादी नीति अपनाई गई। जिससे भारत में विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग में काफी वृद्धि हुई। जिसे निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका 21.2

प्रत्यक्ष विनियोग की राशि मे पिछले वर्षो में हुई वृद्धि

(करोड डालर में)

वर्ष	1990-91	1991-92	1992-93	1993-94	1994-95	1995-96
विदेशी प्रत्यक्ष विनियोग (शुद्ध राशि)	6.8	15.0	34.1	58.6	131.4	213.3

इकाई 22
भारतवर्ष की समानान्तर अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य

22.1 प्रस्तावना

22.2 कालेधन की परिभाषा, स्रोत तथा क्षेत्र

22.2.1 परिभाषा तथा धारणायें

22.2.2 काले धन की उत्पति के स्रोत

22.3 काली आय के अनुमान

22.4 काले धन को रोकने के उपाय

22.5 काले धन में वृद्धि के प्रभाव

22.6 सारांश

22.7 शब्दावली

22.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

22.0 उद्देश्य

आपने देश के आर्थिक विकास में बहु राष्ट्रीय निगमों के स्थान का अध्ययन किया तथा बाह्य व आन्तरिक ऋणों के अर्थ व्यवस्था पर होने वाले प्रभावों का अध्ययन किया है।

इस इकाई में हम भारत वर्ष में चल रही समानान्तर अर्थ व्यवस्था का अध्ययन करेंगे। इसे समझने के बाद आप निम्न बातो को भली प्रकार समझेंगे :

- समानान्तर अर्थव्यवस्था के अर्थ को समझना इसका कारण (काला धन) और किन बातो की वजह से यह उत्पन्न होती है।
- काले धन के सोतो तथा उसके मुख्य क्षेत्र जहां यह प्रचलित है को भली भांति समझना
- देश में मौजूद काले धन की मात्रा तथा आकार; तथा
- इसके निवारण के लिए उठाये गये कदम की जानकारी।

इसके अध्ययन द्वारा अनियमित बढ़ते हुये काले धन की समस्या को भली प्रकार समझ सकेंगे कि किस प्रकार यह भारतीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर रही है।

22.1 प्रस्तावना

आपने बहुराष्ट्रीय निगमों का अध्ययन 21 वीं इकाई में किया और ये देखा कि इन निगमों के क्षेत्र में आने से हमारी अर्थव्यवस्था तथा आंतरिक उत्पादन पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

वर्तमान इकाई में आप देश में बढ़ते काले धन की समस्या तथा समानान्तर अर्थव्यवस्था के बारे में अध्ययन करेंगे। काले धन की समस्या में सौदों का आदान प्रदान छुपकर किया जाता है ताकि कानून के दायरे से ये सौदे बाहर रहें और इनसे होने वाली आय से

सरकार को जो अंश मिलना चाहिए उससे वंचित हो जागी है, इसी को काले धन की समस्या कहते है। इसके विपरीत श्वेत धन वो धन होता है जिसका लेन देन खुले रूप से होता है ताकि कानूनी तौर पर जो अंश सरकार को प्राप्त होना है वह वह उसको मिल जाये। काले धन की समस्या के लिए कुछ बातें जिम्मेदार है। काला धन एक निश्चित क्षेत्र में उत्पन्न होता है और उसको चोरी छिपे ही खर्च किया जाता है। काले धन के "इस क्षेत्र को समानान्तर अर्थव्यवस्था का नाम दिया जाता है, क्योंकि यह श्वेत धन के साथ साथ चलती है। इसका कुप्रभाव भारतीय अर्थव्यवस्था पर कितना पड़ता है उसको उसी समय समझा जा सकता है जब हम ये जानें कि देश में काला धन कितनी मात्रा में है। जब काला धन श्वेत धन के साथ साथ चलता है और इसकी मात्रा बढ़ती जाती है तो इससे देश को अत्यधिक हानि होती है और इस प्रकार काले धन को रखने वाले सरकारी निर्णय को भी प्रभावित करने लगते है। अत : ऐसे कदम उठाये जाने चाहिये कि जिससे इस प्रकार के प्रभाव को जहां तक संभव हो समाप्त किया जा सके। हमें सह समझना चाहिये कि इस समस्या से देश में वित्तीय सोतो की कमी आ जाती है और विकास कार्यो के लिए धनाभाव हो जाता हैं।

दूसरे इससे समाज के विभिन्न वर्गो में आय विषमता बढने के कारण समाज के विभिन्न वर्गो में संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है, जिसके कारण कुछ असामाजिक तत्व देश के धन के एक बड़े भाग को अनुचित रूप से हथिया कर बैठ जाते है।

22.2 काले धन की परिभाषा, स्रोत तथा क्षेत्र

22.2.1 परिभाषा तथा धारणायें: काला धन, काली आय अथवा छिपाई हुई आय का प्रयोग उस आय अथवा धन के लिए किया जाता है जिसको कानून की नजर से बचाकर रखा जाता है। इसको चुरा छिपा कर रखा जाता है तथा इस पर कर नहीं दिया जाता। अत: इसका विकास तेजी से होता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है कि इस प्रकार श्वेत अर्थव्यवस्था के साथ-साथ समानान्तर अर्थव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है।

काले धन का उदय द्वितीय युद्ध काल में हुआ जबकि बाजार में वस्तुओं की कमी हो गई थी और व्यापारियों ने वस्तुओं को अधिक दाम पर बेचने के लिए उसका संग्रह करना शुरू कर दिया। इससे वस्तु आम आदमी को प्राप्त नहीं होती थी पर वही वस्तु अत्यधिक दाम पर चारी छिपे धनी वर्ग को बेची जाती थी। इस प्रकार से प्राप्त आय को व्यापारियों ने चोरी छिपे रखना शुरू कर दिया ताकि वे कानून की नजर से दूर रहें और उस पर किसी प्रकार के कर के भुगतान से बचा जा सके।

22.2.2 कालेधन की उत्पत्ति के सोत: काला धन तीन प्रकार से उत्पन्न होता है।

1. कर वंचन
2. कर न देना
3. श्वेत धन का चोरी-छिपे इस्तेमाल!

इन तीनों ही से कर योग्य आय को छिपाया जाता है और सरकार को कर से वंचित रखा जाता है। धन सरकार को न मिलकर गलत तरीके के व्यापारियों के हाथ में जाता है, जो उसका अनुचित प्रयोग करते है तथा सरकार पर गलत असर डाल सकते है। इस प्रकार का लाभ

कभी-साथ बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी भी ले भागते है। अर्थात वे सरकारी संगठनों अथवा उद्योगों के धन को चुरा-छिपाकर अपने कब्जे में कर लेते है।

1. **कर वंचन :** कर वंचन का अर्थ यह है कि इसके द्वारा कर देने वाला खातो में हेर-फेर करके कर कम देता है या कर देने से बच जाता है। कर वंचन के अनेक तरीके हो सकते है, जैसे बही खाते में हेर-फेर करना अथवा कई प्रकार के बही खाते रखना अथवा कृत्रिम नाम से खाते खोलना जिसे बेनामी खाता कहते है। इसी प्रकार ठेके अथवा व्यापार कृत्रिम नाम से करना, व्यापारिक लेन-देन को खाते में न दिखाना, सम्पत्ति का कम मूल्य आंकना तथा विदेशी विनिमय के साथ हेर-फेर करना। इस प्रकार व्यापारी तथा काले धन का धंधा करने वाले समाज तथा सरकार को धोखा देते है। कभी-साथ तो वे कई खाते विभिन्न बैकों में खोलते है ताकि आयकर अधिकारी को उसकी सही आय का पता न लग सके। हमारी बैंकिग पद्धति कुछ इस प्रकार है, कि हम खाता खोलने वालों के बारे में पूरी जानकारी नहीं प्राप्त करते। विभिन्न बैकों में प्रतिस्पर्धा के कारण भी ऐसा होता है कि किसी पार्टी के बारे में संदेह होने पर भी बैंक चुप्पी साध लेते है अथवा पार्टी इतनी प्रभाव शाली होती है कि वह उसके बारे में कुछ पूछ ताछ या तो करता नहीं और यदि करता भी है तो उसे सही बात का पता नहीं चलता। कभी-2 ठेके विभिन्न नामों से लेकर ठेकेदार आयकर बचा जाता है। इसी प्रकार सम्पत्ति का मूल्य कम दिखाकर आयकर अधिकारियों को धोखा दिया जाता है। कभी-साथ जमीन तथा मकान की बिक्री का एक ही भाग श्वेत धन के रूप में दिखाया जाता है और शेष चोरी छिपे दे दिया जाता है। उपर्युक्त केवल कुछ उदाहरण ही कर वंचन के है।

2. **कर न देना:** इसका अर्थ ये है कि व्यापारी तथा सरकारी कर्मचारी कानून के अन्तर्गत अपनी आय को इस प्रकार दिखाता है कि उस पर या तो बहुत थोड़ा कर पड़ता है अथवा कर से वो पूरी तरह मुक्त हो जाता है। यहां पर व्यापारी आयकर कानून की कमियों से फायदा उठाता है अत. उसे प्राय: गैर कानूनी या अनैतिक नहीं समझा जाता। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से है, जैसे धार्मिक ट्रस्ट खोलना, पति-पत्नी की आय को एक साथ न दिखना। उपहार कर, मृत्यु कर इत्यादि से बचना। वैसे तो समाज में गरीबों के लिए, यतीमों के लिए, असहाय औरतो तथा बच्चों के लिए या धर्म कर्म के लिए धन व्यय करना, बहुत अच्छा माना गया है परन्तु अभाग्यवश आजकल इस प्रकार की संस्थायें चलाने के पीछे समाज सेवा का उद्देश्य उतना नहीं है जितना कि सरकर तथा समाज को धोखा देना। समाज के ठेकेदार तथा धर्मात्मा इसका प्रयोग कर से बचने के लिए कर रहे हैं कभी-कभी कर से बचने के लिए निजी कम्पनियां बनाई जाती है जिससे बीबी-बच्चे तथा दूसरे परिवार के लोग सदस्य या अंश धारक बना दिये जाते है। इस प्रकार के बहुत से कार्य करके व्यक्ति कर से बच जाता है।

3. **श्वेत धन का चोरी छिपे प्रयोग :** यहां पर हम ये देखेंगे कि किस प्रकार से जब बड़े-बड़े ठेके दिये जाते है तो उसमें अत्यधिक भ्रष्टाचार छिपा रहता है जैसे ठेका सही दाम पर न देना, अत्यधिक कमीशन अथवा लेना। अत : श्वेत धन का प्रयोग सरकारी अधिकारियों को देकर ठेकेदार ठेके अथवा खाते के मूल्य बढ़ा देता है इससे सरकार को नुकसान होता है और सरकारी अधिकारी तथा ठेकेदार को लाभ होता है। हम सब जानते है कि ये पद्धति अत्यधिक प्रचलित है

पर इसको रोकने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किया जार रहा है। इसी में सामान की तस्करी तथा सामान का संग्रह व चोर बाजारी भी शामिल है। निम्नलिखित कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनके द्वारा काले धन का जन्म होता है।

(i) मूल्यवान धातुओं तथा विलासिता की वस्तुओं की तस्करी,

(ii) आम उपभोग की वस्तुओं का संग्रह,

(iii) सट्टा मुनाफाखोरी तथा काला बाजार पद्धति,

(iv) रिश्वत तथा कमीशन के द्वारा

(v) शहरी क्षेत्रों में चल तथा अचल सम्पत्ति में विनियोग

(vi) बेनामी खाते तथा बेनामी व्यापार

(vii) धार्मिक तथा सामाजिक सेवा ट्रस्ट

(viii) धनी वर्ग का विलासितापूर्ण रहन सहन।

बोध प्रश्न - 1

(1) समानान्तर अर्थव्यवस्था का अर्थ बतायें? भारत वर्ष के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में इसका महत्व क्यों अत्यधिक है?

(2) काले धन के प्रमुख स्रोतो का उल्लेख कीजिये? उन क्षेत्रों को भी बताइयें जहां काला धन प्रचलित है?

22.3 काले धन का अनुमान

भारत वर्ष में कितना काला धन है इसका केवल एक ही अनुमान लगाया जा सकता है। क्योंकि इसकी सही मात्रा को जानना सरल नहीं। काले धन का लेन-देन चोरी छिपे होता है अत: इसे सही तरीके से आकड़ा संभव नहीं। काले धन को सफेद में परिवर्तित किया जाता है और सफेद को फिर काले में परिवर्तित कर लिया जाता है। कभी-कभी तो केवल वस्तु विनिमय से ही लेन-देन हो जाता है। ऐसा इसलिये सम्भव है कि अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनका पूरी तरह से मौद्रीकरण नहीं है और न कच्चे माल के उत्पादन से अन्तिम उत्पादन तक की विभिन्न अवस्थाओं को समन्वित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार हमें मुख्य रूप से ये समझना है कि काले धन का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर किस प्रकार से पड़ता है? भारत में जहां प्राय : आवश्यक वस्तुओं का अभाव हो जाता है वहां इसके महत्व को आसानी से समझा जा सकता है।

1. **मैलकौम अथिशिसयया का अनुमान:** इनके अनुसार कुल राष्ट्रीय उत्पादन वर्तमान मूल्य पर यदि लिया जाये तो इसका लगभग 40% काले धन के रूप में है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के एक सर्वेक्षण के अनुसार काला धन वर्तमान मूल्य पर राष्ट्रीय उत्पादन का 50% है।

निमलिखित तालिका में काले धन का अनुमान दिया गया है :

तालिका 22.1 : वर्ष 1981- 82 से 1985- 86 के बीच

पाँच वर्षों का काले धन का अनुमान

(रू करोड़ों में)

वर्ष	कुल राष्ट्रीय उत्पादन वर्तमान मूल्य साधन लगन पर	% वृद्धि पिछला वर्ष	काला धन आशिसिय्य 40% (GNP) (रू. करोड़ मे)	% वृद्धि पिछला वर्ष 50% (GNP)	IMF अनुमान	% वृद्धि पिछला वर्ष
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)
1981-82	103763	-	41505	-	51882	-
1982-83	145280	40	58112	40	72604	40
1983-84	171713	7	68685	18	85857	18
1984-85	189417	10	75767	10	51882	10
1985-86	213553	13	85421	13	72604	13
योग	823726	70	329491	81	85857	81

उपर्युक्त तालिका से निमलिखित तथ्य प्राप्त होते है :

1. 1981-82 के कई वर्षो में कुल राष्ट्रीय उत्पादन की सकल वृद्धि दर 70% है। परन्तु इसी काल में काले धन की सकल वृद्धि दर दोनों ही अनुमान में 81% है।
2. इसका अर्थ ये हें कि काले धन की वृद्धि की दर कुल राष्ट्रीय आय की वृद्धि से अधिक है। जिसको रोकना आवश्यक है।

काले धन के कुछ अन्य अनुमान :- काले धन के प्रमुख स्रोत कर वंचन है। अत: इसके आकड़ों से भी काले धन की मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि इस सम्बंध में विभिन्न अनुमानों में पर्याप्त अन्तर है।

कोल्डर के अनुसार कर वंचन की मात्रा 1956-57 में लगभग 200-300 करोड़ थी।

वांचू कमैटो के अनुसार (1971 रिपोर्ट) 1961-62 में इसकी मात्रा 700 करोड़ थी, 1965-66 में 1000 करोड़ तथा 1968-69 में 1400 करोड़ थी।

डॉ. रगनेकर के अनुसार, 1961-62 मे इसकी मात्रा 1150 करोड़, 1965-66 में 2350 करोड़, 1968-69 में 2833 करोड़ और 1969-70 में 3080 करोड़ू थी।

सूरज बी.गुप्ता के अनुमान के अनुसार वर्ष 1987-88 में काली मुद्रा की मात्रा 1 ,49,297 करोड रुपये थी जो GNP का 50.7 प्रतिशत थी वित्त पर संसदीय स्टेन्डिग कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 1994-95 में चालू मूल्यों पर काली मुद्रा की मात्रा 11,00,000 करोड़ थी जबकि इस वर्ष GNP 843294 करोड थी। इस प्रकार काली मुद्रा GNP का 130 प्रतिशत थी अर्थात GNP से भी अधिक हमारे देश में काली मुद्रा प्रचलित थी।

उपर्युक्त अनुमानों से यह विदित है कि देश में काले धन की समस्या अत्यंत विकराल है।

22.4 काले धन को रोकने के उप

काले धन को रोकने की दो विधियाँ है

(1) प्रथम विधि अनुसार काले धन रखने वाले लोगों को प्रोत्साहन देकर काले धन को बाहर निकालना। इसे नरम पद्धति भी कहा जा सकता है।

(2) दूसरी पद्धति के अनुसार कानून के द्वारा सख्ती करके काले धन को बाहर निकालना इसे दृढ़ पद्धति भी कहा जा सकता है।

नरम पद्धति : इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार से है-

(i) स्वेच्छा से काले धन को बताने की योजना,

(ii) धारक बॉडस द्वारा काले धन को बाहर निकालना,

(iii) काले धन को सही दिश में प्रयोग के लिये प्रोत्साहित करना,

(iv) समझौते से काले धन को बाहर निकालना।

स्वेच्छा से काले धन की मात्रा को बताने की योजना काफी उत्साह वर्धक सिद्ध हुई है क्योंकि इसमें यह नहीं पूछा जाता कि व्यक्ति काला धन कहां से लाया है, अभाग्यवश इसमें अन्त में अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऐसा ही धारक बॉड योजना में है। इसमें भी कोई खास सफलता नहीं मिली। इसके असफल होने के मुख्य कारण ये हो सकते है कि पहले तो इसमें व्याज की दर बहुत कम है। दूसरे लोगों को डर था कि इस प्रकार उन्हें अन्तत : कर के जाल में फंसा लिया जायेगा। इसी प्रकार काले धन को अन्य सामाजिक रूप से लाभदायक स्रोत जैसे सड़क तथा पुल बनाना आदि की योजना भी असफल हो गई क्योकि इसमें लाभ कम और जोखिम अधिक था, समझौता योजना भी सफल न हो सकी क्योंकि बड़े-बड़े कर दाता अन्तत : कर के जाल में नहीं आना चाहते।

दृढ़ उपाय : इस प्रकार के उपाय मुख्य रूप से काल्डर ने सुझाये थे जैसे, एक न्यूनतम आय के ऊपर वाले कर दाताओं के खातो की अनिवार्य जांच करना।

प्रत्येक कर दाता के लिए स्थायी खाता संख्या देना, कर अधिकारियों की शक्ति को बढ़ाना तथा बही खातो के निरीक्षण में अथवा उनके जब्त कर लेने में पूर्ण छूट देना तथा उन व्यक्तियों पर जो दोषी पाये जायें जुर्माना लगाना और उनका आम जनता में प्रचार करके अन्य लोगों को डराना इत्यादि।

इसी प्रकार की सिफारिश बाबू कमैटी ने की थी। इन दीनों के ही अनुसार एक निश्चित आय के ऊपर वाले करदाताओं के खातो का अनिवार्य रूप से निरीक्षण किया जाना चाहिये। अथवा ये निरीक्षण तथा आडिट चार्टड एकाउन्टेन्ट के द्वारा किया जाना चाहिये इस सम्बंध में न्यूनतम आय की सीमा एक लाख से पांच लाख तक सुझाई गई थी।

इस प्रकार के प्रयास किये गये थे कि जो चार्टड एकाउनटेन्ट इस कार्य में मदद करेगें उन पर बड़े-बड़े करदाताओं का प्रभाव न पड़े और इसी लिये सरकार ने उनको दिये जाने वाले पारिश्रमिक का एक भाग स्वयं वहन करने की घोषणा की। काल्डार का ये विचार था कि भारी जुर्माने और जनता में बदनामी का असर करदाताओं पर अत्यधिक पड़ेगा। और कर की चोरी करने वाले कर देने को तैयार हो जायेंगे। परन्तु इसके लिए कर अधिकारियों की पर्याप्त संख्या होनी चाहिये। उनमें कर की चोरी करने वालों पर छापा मारने की क्षमता तथा हिम्मत होनी चाहिये। साथ ही साथ उनमें एक सीमा तक ईमानदारी भी होनी चाहिये, इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि इस कार्य को ईमानदारी से किया जाये तो पर्याप्त काला धन बाहर लाया जा सकता है और समस्या का समाधान किया जा सकता है। परन्तु जैसा की हम जानते है कि वर्तमान परिस्थितियों में जहां कर अधिकारियों की कार्य-क्षमता तथा ईमानदारी का स्तर नीचा है वहां

पूर्ण सफलता मिलने में कठिनाई होती है। अभाग्यवश राजनीतिज्ञ भी इसके भागी हो जाते है और इस प्रकार वे भी इस योजना के असफल होने के जिम्मेदार है। शायद लोक आयुक्त की नियुक्ति से तथा हर सरकारी अधिकारी की आय व सम्पत्ति का ब्यौरा लेकर इस क्षेत्र में कुछ किया जा सकता है।

बोध प्रश्न - 2

नोट : अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलायें।

(1) काले धन के अनुमान किन प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते है?

(2) आपके विचार में कर वंचन रोकने का कौन सा तरीका सर्वोत्तम है?

22.5 काले- धन की वृद्धि के प्रभाव

काले धन से होने वाले वित्तीय : ये होते है कि विभिन्न राज्यों या सरकार की आय घट जाती है और इनके विकास कार्यो के लिए धनाभाव हो जाता है इसी प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र जिसका महत्व अत्यधिक है उसके लिए भी धनाभाव हो जाता है। इस प्रकार देश महत्वपूर्ण सेवा योजनायें को पूरा नही कर पाना अथवा कुछ आवश्यक पूंजीगत वस्तुयें प्राप्त नही करता। इसका कुप्रभाव आधुनिक तकनीक पर भी पड़ता है। एक प्रकार से हम इसी कारण दूसरे देशों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लेने के लिए बाध्य हो जाते है ताकि आवश्यक विनियोगों के लिए धन की कमी को पूरा किया जा सके। अभाग्यवाश हमारे निर्यात इतने नहीं है कि हम विदेशी कुण के भार को आसानी से वहन कर सकें। अत : विदेशी ऋण भार हमारी अर्थव्यवस्था पर दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। और ऋण जाल की समस्या उत्पन्न हो गई है। इस कमी को पूरा करने के लिए आधुनिक तकनीक के आयात के लिए छूट देनी पड़ी। इसका भी प्रभाव देश में बहुत अच्छा नहीं पड़ा। और इस सम्बंध में काफी वाद-विवाद उत्पन्न हो गया कि बाहरी तकनीक को हम किस हद तक बढ़ावा दें। एक और प्रभाव इसका ये हुआ कि हमारे सार्वजनिक उद्योगों की लागत बढ़ गई है और हमारी प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति घट गई है।

कर चोरी के कारण सरकार को आंतरिक प्रशासन के लिए भी धनाभाव हो जाता है जिसके कारण सरकार को आंतरिक ऋण लेना पड़ता है। और इस प्रकार इससे उत्पन्न होने वाली कई प्रकार की बुराइयों को झेलना पड़ता है जैसे जब इस धन का प्रयोग अनुत्पादक कार्यो के लिए किया जाता है तो देश में मुद्रा स्फीति की दर बढ़ने लगती है। यदि एक प्रकार से देखा जाये तो मुद्रा स्फीति का एक प्रमुख कारण काला धन है।

नियोजन की प्राथमिकता पर प्रभाव : हमारे नियोजन का प्रमुख उद्देश्य आय विषमता को दूर करके गरीबी तथा बेकारी की समस्या को सुलझाना है। इसके लिये सरकार को पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है ताकि आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन किया जाये और नये- 2 रोजगार के स्रोत खोले जायें। परन्तु जब देश में धन का एक बड़ा भाग चोरी छिपे कुछ लोगों के हाथ में है जो उसे अपनी व्यक्तिगत विलासिता पर व्यय करते है तो निश्चय ही राष्ट्र के पास अपनी उपर्युक्त योजनाओं के लिए धनाभाव हो जाता है। काले धन से धनाभाव बढता है तथा मुद्रा स्फीति भी। कुछ लोग बड़े-2 बंगलों में विलासिता की जिंदगी गुजारते है जबकि करोड़ लोग आवश्यक आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते।

राजनैतिक ढांचे में भ्ष्टाचार : काले धन के कारण देश के राजनैतिक ढांचे में भी भ्रष्टाचार उत्पन्न हो जाता है क्योंकि ये बड़े- 2 धनवान राजनीतिक को तो खरीद लेते है या उन पर अत्यधिक प्रभाव बना लेते है। अभाग्यवश हमारे राजनीतिक अपने ईमानदारी के स्तर को एक निश्चित स्तर तक बनाये रखने में असफल रहे है। यही नहीं ऐसा भी देखा गया है कि कभी-2 तो कानून के रखवालों को भी इनके सामने झुकना पड़ता है। पैसे में बड़ी शक्ति है और ये लोग इसे समझते है कि इससे किसी को भी अपने वश में किया जा सकता है और इन में ये लोग किसी हद तक सफल भी हुये है।

इस प्रकार काले धन के प्रभाव अत्यंत विनाशकारी है।

बोध प्रश्न - 3

नोट : अपने उत्तरों का मिलान येत में दिये गये उत्तरो से करिये-

1. काले धन का राज्य के आर्थिक स्रोतो पर क्या प्रभाव पड़ता है?।
2. योजना की प्राथमिकताओं में काला धन किस प्रकार बाधक है?
3. काला धन देश में आय विषमताओं को बढ़ाता है ऐसा कहा जाता है। काला धन इसे किस प्रकार बढाता है?

22.6 सारांश

समानान्तर अर्थव्यवस्था उस क्षेत्र का नाम है। जिसमें गैर कानूनी तरीके से कमाया हुआ काला धन आता है। इसका मुख्य स्रोत कर वंचन तथा कर देने को बचाना है। काले धन के कारण सरकार के निर्णय को प्रभावित किया जा सकता है। काले धन का अनुमान सरल नहीं है परन्तु विभिन्न अनुमानों के अनुसार कुल राष्ट्रीय आय का 40% से 50% है। काले धन से बचने के मुख्य उपाय दो है- प्रथम, कर की चोरी करने वालों को प्रोत्साहन देकर काले धन का बाहर लाना, द्वितीय, ऐसे व्यक्तियों को कड़ी सजा देना और दृढ़ तरीकों से कर की रोकने के उपाय करना जैसे, खातों की अनिवार्य जांच इत्यादि। कर की चोरी से राज्य के लाभ तथा आय कम हो जाती है और राज्य द्वारा किये जाने वाले विनियोग घट जाते है। इस प्रकार राज्य की कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक योजनायें अधूरी रह जाती है।

22.7 शब्दावली

बहु अथवा विभिन्न खाते	:	किसी विनियोग पर अर्जित की गई कुल या वास्तविक आय को छिपाने के लिए एक से ज्यादा खाते रखना।
विदेशी विनिमय	:	विदेशी मुद्रा जिससे विदेशी उतादकों की वस्तुयें खरीदी जा सकती है। इसे निर्यात द्वारा कमाया जाता है।
आय को मिला देना	:	दो या दो से अधिक व्यक्तियों की आय को मिलाना।
चोरी छिपे लेन-देन	:	गलत तरीकों से लेन-देन करना।
सीधा समन्वय	:	इसके अन्तर्गत उत्पत्ति प्रक्रिया में कच्चे माल लेकर उत्पादन की अंतिम अवस्था तक हर कड़ी को एक साथ जोडकर अध्ययन किया जाता है।
सकल राष्ट्रीय उत्पाद	:	कुल उत्पादन जो बिना घिसावट को निकाले मुद्रा में गिना

		जाताहै ।
समझौता कार्यप्रणाली	:	एक ऐसी प्रणाली जिसमें कर दाता को यह अधिकार होता है कि वे अपने कर से सम्बन्धित झगड़े को किस प्रकार तय करें।
प्राथमिक सूचना	:	जिनका आधार प्रथम प्राप्त सूचना सामग्री से होता है।
बाजारी ब्याज की दर	:	किसी समय पर दिया गया ब्याज जो फंड की मांग और पूर्ति पर निर्भर होता है।
अतिरिक्त उत्पादन शक्ति	:	वह उत्पादन शक्ति जो उस उत्पादन शक्ति से ज्यादा होती है जो वास्तव ने उत्पादन में प्रयोग की जाती है।
मुद्रा स्फीति स्थिति	:	ऐसा समय जब मूल्य बढ़ रहे होते है।
योजना की प्रथमिकताए	:	पंचवर्षीय योजनायें जो कार्य को एक क्रम में करने के लिये बनाई जाती है। उदाहरण के लिये सातवीं पंचवर्षीय योजना में कार्य, भोजन और उत्पादकता को प्राथमिकता गई है।
जन उपभोग की वस्तुयें	:	वे उत्पादन जो देश के सब भागों में उपभोग किये जाते है।

22.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. केबरा, के. एन. – भारतीय काले धन की अर्थव्यवस्था-समस्यायें नीतियां
2. मेहता, वी. एल. – बेरोजगारी, असमानतायें, समानान्तर- एक समाधान
3. कॉल्डर, एन. – भारतीय कर व्यवस्था, आर्थिक मामलों का विभाग, वित्तमंत्रालय, भारत सरकार (1956)
4. भारत सरकार वित्त मंत्रालय – प्रत्यक्ष कर निरीक्षण कमैटी की रिपोर्ट (1971)
5. दत्ता, एन. सुन्दरम – भारतीय अर्थव्यवस्था, घाठ 52 एस० चांद एंड कम्पनी दिल्ली

22.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1

1. सामानान्तर अर्थव्यवस्था सकल अर्थ व्यवस्था का वह भाग है जहां व्यापारिक कार्य विधि कानून की निगाह से बचकर चोरी छिपे की जाती है। वर्तमान समय में सह समस्या अत्यधिक बढ़ गई है तथा इसका कुप्रभाव सामान्य अर्थव्यवस्था पर पड़ा है और इसी कारण इसका महत्व बढ़ गया।
2. काले धन के तीन प्रमुख स्रोत है। कर की चोरी, कर न देना अथवा बचाना तथा। सही अथवा स्वच्छ मुद्रा का चोरी छिपे प्रयोग करना। काले धन के कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र इस प्रकार है। तस्करी, मकानों तथा भवनों में रूपया लगाना, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों के लिए ट्रस्ट बनाना।

बोध प्रश्न - 2

1. काला धन तेजी से बढ़ रहा है। यह भारत के समस्त राष्ट्रीय उत्पादन का 50% है। उपर्युक्त वातावरण मिलने पर यह तेजी से बढ़ रहा है।

2. कर की चोरी से बचने के दो तरीके हो सकते है - दृढ़ तरीका तथा मुलायम तरीका, काले धन को बाहर लाने की स्वेच्छिक योजना जो प्रोत्साहन आधारित है कि साथ-साथ कर की चोरी करने वाले के विरूद्ध सख्त कदम उठाये जाने चाहियें और इस सम्बंध में हर महीने कार्यवाही की जानी चाहिए।

बोध प्रश्न - 3

1. कर की चोरी तथा कर से बचना का प्रभाव राज्य के आय को कम करता है। जिससे राज विनियोग के लिए धन की कमी हो जातीं है।
2. देश की पंचवर्षीय योजनाऐं कुछ सामाजिक उद्देश्यों को ध्यान में रख कर वनाई जाती है जैसे - आर्थिक तथा सामाजिक असमानता को कम करना, रोजगार देना। जब काला धन अधिक हो जाता तो देश में इन मदों पर खर्च करने के लिए धन की कमी हो जाती है।
3. काला धन उन मदों में लगाया जाता है जहां शीघ्र तथा अधिक लाभ कमाया जा सके। क्योंकि इस धन पर कर नहीं दिया जाता अत: इसके कारण देश में असमानता बढ़ जाती है।

इकाई 23

भारत का भुगतान सन्तुलन

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

23.1 प्रस्तावना

23.2 भुगतान सन्तुलन का अर्थ

23.3 भुगतान सन्तुलन की मदें

23.4 स्वतंत्रता के पूर्व भुगतान सन्तुलन

23.5 स्वतंत्रता के उपरान्त भुगतान सन्तुलन

- 23.5.1 प्रथम योजना
- 23.5.2 दूसरी योजना
- 23.5.3 तीसरी योजना
- 23.5.4 वार्षिक योजनाएं
- 23.5.5 चौथी योजना
- 23.5.6 पांचवी योजना
- 23.5.7 छठी योजना
- 23.5.8 सातवीं योजना

23.6 भुगतान सन्तुलन में घाटे के कारण

23.7 भारत सरकार द्वारा प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन के समाधान हेतु उपाय

23.8 भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के उपाय

23.9 सारांश

23.10 शब्दावली

23.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

23.12 अभ्यासों के उत्तर

23.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको भारत की भुगतान सन्तुलन स्थिति से अवगत कराया जायेगा। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- भुगतान सन्तुलन का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे,
- भुगतान सन्तुलन की मदों को बता सकेंगे,
- स्वतंत्रता के पूर्व भुगतान संतुलन की स्थिति बता सकेंगे,
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भुगतान की स्थिति की व्याख्या कर सकेंगे,
- भुगतान सन्तुलन में घाटे के विभिन्न कारण पर प्रकाश डाल सकेंगे,

- ❍ भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के लिए सरकार द्वारा किये गये प्रयासों का वर्णन कर सकेंगे,
- ❍ भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के सुझाव दे सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

भुगतान सन्तुलन एक आर्थिक बेरोमीटर है। इससे किसी भी देश की आर्थिक स्थिति का पता लगाया जा सकता है।

आपको यह बताया जायेगा कि भुगतान सन्तुलन की स्थिति का अर्थ क्या है और व्यापार सन्तुलन से वह भिन्न किस प्रकार है? आपको फिर भुगतान सन्तुलन में शामिल की जाने वाली मदों की जानकारी दी जायेगी। आपको यह स्पष्ट किया जायेगा कि विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भुगतान सन्तुलन की स्थिति क्या रही है और क्यों रही है? भारतीय सरकार ने भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के लिये जो भी उपाय किये है, उनकी चर्चा की जायेगी। अन्त में आपको भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता दूर करने के लिए सुझाव दिये जायेंगे।

23.2 भुगतान सन्तुलन का अर्थ

किसी भी देश का भुगतान सन्तुलन एक निश्चित काल में उस देश की अन्य देशों के साथ कुल लेनदारी और देनदारी का एक लेखा-जोखा होता है। इसमें प्राय : आयात और निर्यात के मद सबसे महत्वपूर्ण होते है। पर इन मदों के अतिरिक्त पूँजी, ऋण, ब्याज और भुगतान से सम्बन्धित सभी मदों को भी शामिल किया जाता है।

पी टी. एल्सवर्थ ने कहा है कि "भुगतान सन्तुलन एक देश के निवासियों और शेष विश्व के बीच किये गये समस्त लेन-देनों का लिखित विवरण है। यह किसी दिये हुए समय साधारणत : एक वर्ष के लिये होता है।''

बेनहम ने भुगतान की परिभाषा करते हुए कहा है कि "सम्पूर्ण और सही भुगतान सन्तुलन में वे सभी भुगतान शामिल होते है, जो एक निश्चित अवधि में विदेशियों द्वारा एक देश के निवासियों को और उस देश के निवासियों द्वारा विदेशियों को किये जाते है। इनमें प्रथम भुगतान को जमा भुगतान और दूसरे भुगतान को नाम भुगतान कहते है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि एक निश्चित अवधि में एक देश को विदेशों से जो भुगतना मिलता है और जो भुगतान करना होता है, उसके क्रमबद्ध विवरण को भुगतान सन्तुलन कहते है।

व्यापार सन्तुलन से किसी देश की वास्तविक आर्थिक स्थिति का पता नही लगता है, क्योंकि इसमें केवल आयातों और निर्यातों को सम्मिलित किया जाता है। भुगतान सन्तुलन में आयातों और निर्यातों के अतिरिक्त पूंजीगत लेन-देन भी शामिल होते है। वास्तविकता तो यह है कि व्यापार सन्तुलन भुगतान सन्तुलन का ही एक भाग है। यदि हम सूत्र के रूप में व्यक्त करें-

भुगतान सन्तुलन = व्यापार सन्तुलन + पूंजीगत लेन-देन

भुगतान सन्तुलन के दो भाग होते है -

(i) चालू खाते का भुगतान सन्तुलन

(ii) पूंजीगत खाते का भुगतान सन्तुलन।

इन दोनों खातों का सन्तुलन ही भुगतान सन्तुलन है। चालू खाते के भुगतान सन्तुलन में वस्तुओं और सेवाओं का लेन-देन और एक पक्षीय हस्तान्तरण जैसे कि अनुदान, भेंट को शामिल किया जाता है। पूंजीगत खाते के भुगतान सन्तुलन में पूंजीगत मदों जैसे कि विदेशों से ऋण लेना और देना, विदेशों में प्रतिभूतियाँ और परिसम्पत्तियाँ खरीदना और बेचना आदि को शामिल किया जाता है।

इस प्रकार भुगतान सन्तुलन = चालू खाते का भुगतान सन्तुलन + पूंजी खाते का भुगतान सन्तुलन।

एक देश में विदेशी विनिमय कोष में होने वाले परिवर्तनों को पूंजी खाते में शामिल किया जाता है। भुगतान खाते का, चालू खाता सन्तुलन की दशा मे नहीं होता है। यह अनुकूल (+) अथवा प्रतिकूल (-) होता है। जब चालू खाते का सन्तुलन प्रतिकूल होता है तो उसे पूंजीगत खाते के परिवर्तनों से साम्य में लाया जाता है। दूसरे शब्दों में विदेशों से ऋण लेकर कुछ देनदारियों को निपटाया जाता है। इस तरह चालू खाते की स्थिति ही भुगतान सन्तुलन की स्थिति को बताती है। भारत के भुगतान सन्तुलन की स्थिति देश के विदेशी विनिमय कोष में हुए परिवर्तनों से ज्ञात की जा सकती है।

23.3 भुगतान सन्तुलन की मदें

भारत के भुगतान सन्तुलन को जानने की लिए उससे सम्बन्धित मदों की जानकारी कर लेना ठीक रहेगा।

प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन का अर्थ होता है कि चालू खाते और पूंजी खाते में भुगतान की राशि प्राप्तियों से अधिक है। प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन होने पर ऋण का चिन्ह लगाया जाता है। पर भुगतान सन्तुलन सन्तुलित ही होना चाहिये। अत : इसके प्रतिकूल होने पर उतनी ही राशि विदेशी सहायता, अनुदान या अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से लेकर इसे सन्तुलित किया जाता है।

विकासशील देशों का भुगतान संतुलन अधिकतर प्रतिकूल रहता है। ये देश विकास के लिये पूंजीगत वस्तुओं और तकनीकों का आयात करते है और कुछ वर्षो में विदेशों से प्राप्त सभी ऋणों का भुगतान करने में समर्थ हो सकते है। इसलिए यदि कुछ वर्षों तक ही भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल रहता है तो चिन्ता का कोई बड़ा कारण नहीं है। पर यदि भुगतान सन्तुलन लम्बे समय के लिए प्रतिकूल रहता है तो अवश्य ही चिन्ता का कारण है।

भुगतान सन्तुलन की मदों को तालिका से इस प्रकार दिखाया जा सकता है -

भुगतान सन्तुलन की मदें

मद	प्राप्तियां (I)	भुगतान (II)
1 - चालू खाता		
(अ) दृश्य मदें	निर्यात	आयात

(ब) अदृश्य मदें		
(I) पर्यटन	विदेशी पर्यटकों का आना	भारतीय पर्यटकों का विदेश जाना
(II) परिवहन	जहाज-भाड़ा की प्राप्ति	जहाज-भाड़ा क भुगतान
(III) बीमा	बीमा प्रीमियम की प्राप्तियां	बीमा प्रीमियम का भुगतान
(IV) लाभांश	प्राप्तियां	भुगतान
(V) अन्य	प्राप्तियां	भुगतान

चालू खाते का सन्तुलन I - II

2 - पूंजीगत खाता

(I) निजीनिवेश	विदेशी पूंजी का भारत मे निवेश	भारतीय पूंजी का विदेशों में निवेश
(II) ऋण-निजी क्षेत्र	प्राप्तियां	ऋणों का भुगतान
(III) ऋण-सार्वजनिक	प्राप्तियां	ऋणों का भुगतान
(IV) अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से रूपये की खरीद	-	भुगतान
(V) बैंकिग पूंजी	प्राप्तियां	भुगतान

पूंजीगत खाते का सन्तुलन I -II

23.4 स्वतंत्रता के पूर्व भुगतान सन्तुलन

स्वतंत्रता के पूर्व भारत का भुगतान सन्तुलन अनुकूल था। अंग्रेजों के आने तक यूरोप और पश्चिम एशिया के अनेक देशों से व्यापार था। भारत निर्मित वस्तुओं का निर्यात करता था। आयातों की तुलना में निर्यात अधिक होते थे। भारत को इसलिए स्वर्ण में भुगतान मिलता था।

अंग्रेजों के पराधीन भारत का व्यापार सन्तुलन अनुकूल था। पर यह अनुकूलता अब निर्मित वस्तुओं के निर्यात के कारण नहीं थी बल्कि कच्चे माल के निर्यात के कारण थी। निर्मित वस्तुओं का अब विशेषकर ब्रिटेन से आयात होता था। विदेशी विनिमय निर्यात अधिक होने के कारण प्राप्त तो अवश्य होता था पर यह विदेशी विनिमय ब्रिटेन को गृह पत्रों (Home Expenses) की पूर्ति के लिए देना पड़ता था और यह भी स्थिति आती थी कि जब विदेशी विनिमय की प्राप्तियां गृह-व्ययों को चुकाने के लिये पर्याप्त नहीं हुआ करती थी तो फिर इन व्ययों की पूर्ति के लिए स्वर्ण का निर्यात करना पड़ता था।

भारत की स्थिति दूसरे महायुद्ध से परिवर्तित हुई। ब्रिटेन को अपनी युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारत से बहुत अधिक आयात करना पड़े जिससे निर्यात में बहुत वृद्धि हुई और दूसरी तरफ माल की कमी और परिवहन सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण आयात कम हो गये। इस सबका परिणाम यह हुआ कि भारत का व्यापार संतुलन पौंड पावनों (sterling balance) के रूप में एकत्रित हो गया। अनुमान है कि पौड पावमों के रूप में एकत्रित यह राशि 1,733 करोड़ रुपये थी। भारत ने इस राशि का उपयोग स्वद्तंत्रता के बाद व्यापार घाटों को पूरा करने के लिए किया।

बोध प्रश्न 1

1. भुगतान सन्तुलन से आप क्या समझते है?।
2. भुगतान सन्तुलन और व्यापार सन्तुलन में क्या अन्तर है?
3. भुगतान सन्तुलन में किन मदों को शामिल किया जाता है?

23.5 स्वतंत्रता के उपरान्त भुगतान सन्तुलन

1948 से 1951 तक भारत का भुगतान सन्तुलन विपक्ष में था। भुगतान सन्तुलन में 260 करोड़ रुपये का घाटा था। इस घाटे के अनेक कारण थे जैसे कि विभिन्न प्रकार के नियन्त्रण, देश का विभाजन, खाद्यानों और कच्चे माल की कमी। 1949 में रुपये का अवमूल्यन किया गया था। पर इस अवमूल्यन से भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने में कोइ, विशेष सहायता नहीं मिल सकी थी।

23.5.1 प्रथम योजना (1951 - 56)

पहली योजना में भुगतान सन्तुलन केवल 42 करोड़ रुपये से ही प्रतिकूल था। भुगतान सन्तुलन पर प्रमुख रूप से तीन बातो का प्रभाव पड़ा था -

(I) 1950 में कोरिया युद्ध के कारण भारत के निर्यात बढ़े,

(II) अमरीका में 1953 की मन्दी का भारत पर अनुकूल प्रभाव रहा,

(III) देश में अनुकूल मानसून के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई, आयातों पर नियन्त्रण रखा गया।

प्रथम योजना में भुगतान सन्तुलन की स्थिति की एक तालिका से स्पष्ट किया जा सकताहै -

तालिका 23.1

पहली योजना में भुगतान सन्तुलन

(करोड़ रुपयों में)

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान सन्तुलन
1951-52	-232.8	+70.2	+462.6
1952-53	-31.1	+91.3	+60.2
1953-54	-52.1	+99.5	+47.2
1954-55	-93.1	+99.1	+6.0
1955-56	-132.8	+139.5	+6.7
कुल	-541.9	+499.6	-42.3

तालिका से पता लगता है कि योजना के प्रथम वर्ष को छोडकर अन्य वर्षों में भुगतान सन्तुलन में आधिक्य की स्थिति थी। प्रत्येक वर्ष व्यापार घाटा तो रहा पर शुद्ध अदृश्य मदों के धनात्मक होने के कारण भुगतान संतुलन की प्रतिकूलता 42 करोड़ रूपये ही थी।

23.5.2 दूसरी योजना (1956 - 61)

इस योजना में भुगतान सन्तुलन में भारी घाटा था। इस घाटे के कारण विदेशी विनिमय का संकट उतना हुआ। जहां प्रथम योजना में भुगतान सन्तुलन का घाटा मात्र 42 करोड़ रूपये था वह दूसरा योजना में बढ़कर 1725 करोड़ रूपये हो गया। यह तालिका से इस प्रकार दिखाया जा सकता है-

तालिका 23.2

दूसरी योजना में भुगतान सन्तुलन

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान संतुलन
1956-57	-467	+154	-313
1957-58	-639	+132	-507
1958-59	-453	+126	-327
1959-60	-305	+119	-186
1960-61	-475	+83	-392
कुल	-2339	+614	-1725

घाटे के प्रमुख कारण थे-

विकास कार्यों के लिए आयातों में तेजी से वृद्धि हुई थी। मेहलानोबिस के माडल का इस योजना में प्रयोग किया गया था। इस माडल में आधारभूत उद्योगों को प्राथमिकता दी गई थी। इन उद्योगों में बड़ी मात्रा में पूंजीगत साज-सामान का आयात हुआ था।

योजना अवधि में विशेषकर अंतिम वर्ष में खाद्यान उत्पादन में कमी के कारण भारी मात्रा में खाद्यान्नों का आयात हुआ था क्योंकि कृषि उत्पादन में आवश्यक वृद्धि नहीं हुई थी।

निर्यातों में वृद्धि नहीं हुई थी बल्कि निर्यात प्रथम योजना काल से भी कम हुए थे।

देश में मुद्रा प्रसार जैसी परिस्थतियों के कारण से भी निर्यात में कमी और आयातों में अधिकता थी।

23.5.3 तीसरी योजना (1961 - 66)

इस योजना अवधि में भुगतान शेष 1961 करोड़ रुपये से प्रतिकूल था। योजना की अपेक्षा घाटा अधिक था।

तालिका 23.3

तीसरी योजना में भुगतान सन्तुलन

(करोड रुपये में)

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
61-62	-338	+31	-306
62-63	-416	+62	-354
63-64	-443	+64	-349

64-65	-620	-168	-452
65-66	-567	+77	-490
कुल	-567	+432	-1952

तालिका से स्पष्ट है कि तीसरी योजना में दूसरी की तुलना में अदृश्य मदों शुद्ध प्राप्ति में काफी कमी आई थी जिसका मुख्य कारण व्याज भुगतान की बढ़ती हुई राशि। जहाँ तक व्यापार सन्तुलन का प्रश्न है खाद्यान्न समस्या और भारी तथा आधारभूत उद्योगों की आवश्यकता पूर्ति के लिय आयातों में लगातार वृद्धि होती रही।

23.5.4 वार्षिक योजनाएं (1966-69)

तीन वार्षिक योजनाएं बनी थी, तीनों में भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल था। तीनों योजनाओं में व्यापार सन्तुलन का कुल घाटा 2,067 करोड़ रुपये था। अदृश्य मदों से 51.7 करोड़ रुपये का लाभ था। इस प्रकार भुगतान संतुलन का घाटा 2,067 - 58.0 = 2,015 करोड़ रुपये था।

तालिका 23.4

वार्षिक योजनाओं में भुगतान सन्तुलन

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1996-67	-905.8	+59.9	-845.9
1967-68	-782.2	-16.1	-804.3
1968-69	-373.1	+7.2	-365.2
कुल	-2061.1	+51.0	-2015.4

23.5.5 चौथी योजना (1969-74)

इस योजना में भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल था। 1969-70 में कृषि उत्पादन में वृद्धि से खाद्यान्नों का आयात कम हुआ था और निर्यातों में वृद्धि हुई थी, जिससे व्यापार सन्तुलन का घाटा कम हुआ था। यह घाटा 178 करोड़ रुपये का था।

तालिका 23.5

चौथी योजना में भुगतान सन्तुलन

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1969-70	-178	-39	-217
1970-71	-318	-14	-332
1971-72	-438	+37	-401
1972-73	251	-01	-252
1973-74	-379	-1680	+1301
कुल	-1564	+1663	+99

1971-72, 1972-73 में स्थिति काफी बिगड़ गयी थी। इन वर्षो में व्यापार सन्तुलन का घाटा 438 करोड़ रुपये और 251 करोड़ रुपये रहा था। इन वर्षों खाद्यान्न आयातों में वृद्धि हुई थी और खनिज तेल की कीमतें बढ़ गई थी जिससे आयात भी काफी बढ़ गया था।

1973-74 में अदृश्य मदों की प्राप्ति के कारण भुगतान सन्तुलन 1301 करोड़ रुपये से अनुकूल था। पर यह अनुकूलता असामान्य थी क्योंकि इस अनुकूलता का कारण अमरीकी सरकार के साथ पी.एल. 480 और दूसरी रुपया राशियों के भुगतान की छूट का निर्णय था। भारत को इस छूट के कारण 1,664 करोड़ रुपये अदृश्य मदों से प्राप्त हुए थे।

23.5.6 पांचवी योजना (1974-79)

यह योजना 1979 में समाप्त होने वाली थी, पर इसे एक वर्ष पहले ही 1978 में समाप्त कर दिया गया।

इस योजना के प्रथम दो वर्षो, 1974-75 और 1975-76 में निर्यात, तेजी से बड़े थे पर निर्यातों कड़ा? वृद्धि से अधिक आयातो में वृद्धि हुई थी। परिणाम स्वरूप कापार घाटा 977 करोड रुपयों और 566 करोड़ रुपये ही था। 1973-74 में जबकि यह आटा केवल 379 करोड ने ही था। 1976-77 में व्यापार संतुलन 316 करोड़ रुपये से रुक्ष मैं था। योजना के अंतिम वर्ष में व्यापार घाटा आयातित पेट्रोलियम पदार्थों के मूल्यों में नुड़ि के कारण बहुत अधिक बढ़ गया था।

1975-76, 1976-77 और 1977-78 में अदृश्य मदों में भारी द्ध से चालू खाते में भुगतान संतुलन में अतिरेक की स्थिति आ गई थी। यह अतिरेक +294 करोड, +1,525 करोड़ और+1734 करोड़ रुपये था।

तालिका 23.6

पांचवी योजना में भुगतान शेष

(करोड रुपये में)

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1974-75	-977	333	644
1975-76	-566	860	294
1976-77	+316	1209	1525
1977-78	-107	1842	1734
कुल	-1334	+4245	+2910

तालिका से स्पष्ट है कि व्यापार सन्तुलन में घाटा था पर अदृश्य मदों प्राप्ति बहुत थी। अदृश्य मदों की प्राप्ति में निरन्तर वृद्धि के कई कारण थे -

(i) विश्व की अधिकांश मुद्राओं के मूल्यों में काफी उतार-चढ़ाव हो रहे थे, पर भारतीय रुपये के मूल्य में अपेक्षाकृत स्थिरता थी।

(ii) तस्करी और अवैधानिक भुगतानों के विरूद्ध कठोर कदम उठाये! गये थे।

(iii) विदेशों को रोजगार के लिए बड़ी संख्या में भारतीय चले गये थे। इन प्रवासी भारतीयों ने भारत को बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा भेजी थी।

(iv) पर्यटन उद्योग को बढ़ावा मिला था जिसके कारण विदेशी पर्यटकों की संख्या में वृद्धि हुई थी।

पांचवीं और छठी योजना के बीच एक वर्ष के अन्तराल 1979-80 में व्यापार घाटा 3,374 करोड़ रुपये का था और अदृश्य मदों से 3,140 करोड़ रुपये की शुद्ध प्राप्ति हुई थी जिससे पुरातन सन्तुलन में 234 करोड़ रुपये का घाटा था।

23.5.7 छठी योजना (1980-85)

इस योजना के प्रत्येक वर्ष व्यापार सन्तुलन में भारी घाटा था जिसके कारण भुगतान सन्तुलन में भी घाटा था।

तालिका 23.7

छठी योजना मे भुगतान सन्तुलन

(करोड़ रुपये में)

वर्ष	व्यापार सन्तुलन	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1980-81	-5,967	+4,310	-1,657
1981-82	-6,121	+3,804	-2,317
1982-83	-5,776	+3,480	-2,296
1983-84	-5,871	+3,809	2,262
1984-85	-6,781	+3,869	-2,852

तालिका से स्पष्ट है कि व्यापार सन्तुलन में भारी प्रतिकूलता के कारण, अदृश्य मदों से काफी प्राप्ति के होते हुए भी, भुगतान सन्तुलन में घाटे की गम्भीर स्थिति बनी रही थी। इस स्थिति का सामना करने के लिए सरकार को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के विशेष आहरण योजना के अन्तर्गत राशि निकालनी पड़ी थी और अपने संचित विनिमय कोष का प्रयोग करना पड़ा था।

23.5.8 सातवीं योजना (1985-90)

इस योजना के प्रथम वर्ष 1985-86 में व्यापार सन्तुलन का घाटा 9,586 करोड़ रुपये था, इतना घाटा कभी भी किसी वर्ष नहीं रहा था। अदृश्य मदों से प्राप्ति 3,630 करोड़ रुपये थी जिसके कारण भुगतान सन्तुलन का घाटा 5,956 करोड़ रुपये था।

23.6 भुगतान सन्तुलन में घाटे के कारण

भारत के भुगतान सन्तुलन में हमेशा ही घाटा रहा है और यह घाटा बढ़ता ही रहा है। भुगतान सन्तुलन में घाटे के कारण विदेशी विनिमय की समस्या बनी रही है। भुगतान सन्तुलन में घाटे के कारण है

(1) **आयातों में वृद्धि -** आयातों में वृद्धि के कई कारण रहे है -

(i) देश में कृषि और उद्योगों के विकास के लिए यंत्रों और उपकरणों का भारी आयात किया गया है। वर्तमान में भी यंत्र और उपकरण भारत के आयातों की प्रमुख मद है।

(ii) जनसंख्या में वृद्धि के कारण खाद्यान्नों का भारी मात्रा में आयात करना पड़ा है।

(iii) आयात प्रतिस्थापन योजनाओं को भी कोई विशेष सफलता नहीं मिली है।

(2) निर्यातों में आयातों की अपेक्षा कम वृद्धि -

निर्यातों में वृद्धि आयातों की तुलना में कम रही है। निर्यातों में अपेक्षित वृद्धि न होने के कई कारण रहे है -

(i) निर्यातों की माँग बेलोचदार है। निर्यातों का आधा भाग आज भी परमार है। परम्परागत वस्तुओं में चाय, काफी बूट की वस्तुएं, सूती वस्त्र और कृषिगत वस्तुएं आती है। इन वस्तुओं की विदेशी बाजार में कठिन प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती है। इन वस्तुओं में निर्यात बढ़ाने में सफलता नहीं मिली है।

(ii) निर्यात संवर्धन के लिए तीसरी योजना से ही प्रयास किये गये है पर कोई विशेष सफलता नहीं मिला है।

(iii) घरेलू माँग में निरन्तर वृद्धि से निर्यात के लिए उत्पादन का कुछ ही अंश शेष रहता है।

(iv) मुद्रा स्फीति का दबाव बने रहने से उत्प लागत अधिक रहती है, जिससे विदेशी बाजारों में भारतीय वस्तुएं महंगी पड़ती है।

(v) विदेशी सरकारों के प्रतिबन्धों के कारण भी निर्यात बढ़ाने में कठिनाई होती रही है।

(3) **विदेशी ऋण -** भारत ने विकास कार्यो के लिए भारी मात्रा में ऋण लिए है। इन ऋणों पर ब्याज और मूलधन लौटाने के लिए विदेशी विनिमय व्यय किया गया है।

(4) **पेट्रोलियम के मूल्यों मे वृद्धि -** तेल उत्पादन देश पेट्रोलियम पदार्थो के मूल्य बढ़ाते रहे है और इन पदार्थो की खपत भी देश में बढ़ती रही है जिससे इनके आयात के लिए व्यय में भारी वृद्धि होती रही है।

(5) **अदृश्य मदों का भुगतान -** -अदृश्य मदों के अन्तर्गत भारत की देनदारी की अपेक्षा लेनदारी काफी समय तक अधिक रही है, पर फिर भी अदृश्य मदों से प्राप्त शुद्ध आय बहु त कम रही है। इस कारण से भुगतान सन्तुलन के घाटे को सीमित मात्रा में ही कम किया जा सका है। यही नहीं विदेशी ऋणों की अदायगी ब्याज भुगतान की बढ़ती मात्रा के कारण अनेक वर्षो अदृस्य मदों में भी घाटा रहा है।

(6) **विदेशी ऋण और व्यापार के मध्य सम्बन्ध का अभाव -** भारत को विदेशी से जो अधिकांश ऋण मिलते रहे है, उनका व्यापार से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहा है। ऐसी स्थिति में उन ऋणों को लौआने से भुगतान संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता रहा है। कुछ देशों से जैसे कि रूस से जो ऋण मिलते रहे है, उनका व्यापार से सीधा सम्बन्ध रहा है। दूसरे शब्दों में ये देश ऋण के बदले भारत में निर्मित वस्तुएं स्वीकार करते है। इस प्रकार के ऋणों का भुगतान निर्यातो से होता रहता है।

(7) **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से रूपये की खरीद** - भारत ने बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा ऋण के रूप में ली है। ये ऋण' रुपये देकर लिए जाते है। इन ऋणों के भुगतान के लिए फिर से

विदेशी मुद्रा देकर रुपये वापिस क्रय किये जाते है। भारत को भारी मात्रा में मुद्रा कोष से रुपये की खरीद करनी पड़ती रहती है जिससे भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल हो जाता रहा है।.

(8) **आय प्रभाव और कीमत प्रभाव -** आय प्रभाव से अर्थ आय में वृद्धि के कारण व्यापार पर पड़ने वाले प्रभाव से है। सरकार जब बड़ी मात्रा में विनियोग करती है तो जनता की आय में वृद्धि होती है जिसके कारण आयात की जाने वाली विलासिता की वस्तुओं र्की माँग बढ़ जाती है और साथ ही घरेलू वस्तुओं की माँग भी बढ़ जाती है, जिससे निर्यात के' लिए वस्तुओं की मात्रा कम हो जाती है। इस तरह आय प्रभाव भुगतान सन्तुलन में प्रतिकूलत उत्पन्न करता है।

भारी मात्रा में विनियोग केवल आय प्रभाव हीं नहीं उतन करते अपट्टि कीमत प्रभाव भी उत्पन्न करते है। अधिकतर विनियोग दीर्घकाल के बाद ही फलदायक होते है। पर जनता की आय में वृद्धि विनियोगों के साथ ही हो जाती है। परिणामस्वरूप मूल्य स्तर बढ़ जाता है। मूल्य स्तर में वृद्धि की जो व्यापार पर प्रभाव पड़ता है उसे कीमत प्रभाव कहते है। मूल्यों में वृद्धि से आयातो में वृद्धि होती है और निर्यात कम हो जाते है।

बोध प्रश्न 2

1 योजनाकाल में भारत की भुगतान सन्तुलन स्थिति की संक्षेप में बताइये?

2 भारत के भुगतान संतुलन के प्रतिकूल होने के क्या कारण थे?

23.7 भारत सरकार द्वारा प्रतिकूल भुगतन संतुलन अथवा विदेशी विनिमय संकट दूर करने के उपाय

भारत सरकार के लिए प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन हमेशा ही एक चिन्ता का विषय रहा है। समय-समय पर सरकार ने इस समस्या की सुलझाने के लिए कई उपाय किये है। ये उपाय है।

1. **नोट निर्माण प्रणाली में परिवर्तन -** भारत सरकार ने 1956 में नोट निर्गमन प्रणाली परिवर्तित कर दी। अनुपातिक कोष प्रणाली (Proportional Reserve System) के स्थान पर न्यूनतम् कोष प्रणाली (Minimum Reserve System) अपना ली गई। इस प्रणाली में 200 करोड़ रुपये का न्यूनतम कोष रखना जरूरी कर दिया गया। इस प्रणाली में 115 करोड़ रुपये का स्वर्ण रखा जाता है जो पूर्व प्रणाली के समान ही था, पर इसके साथ 85 करोड़ रुपये की विदेशी प्रतिभूतिया रखी जाती है, जबकि पूर्व प्रणाली में 400 करोड़ रुपये की विदेशी प्रतिभूतिया रखी जाती थी। इसका उद्देश्य यह था कि शेष विदेशी विनिमय का प्रयोग विकासात्मक आयातो के लिए किया जा सके।
2. **प्रतिबन्धात्मक आयात नीति -** सरकार ने समय-समय पर आयातो पर कड़े प्रतिबन्ध लगाये है जिससे विदेशी मुद्रा का प्रयोग केवल आवश्यक वस्तुओ के आयात पर किया जा सके।
3. **निर्यात प्रोत्साहन -** तीसरी योजना के आरम्भ से ही निर्यात संवर्द्धन के लिए सरकार ने प्रयास किये। इन प्रयासों को सफलता भी मिली पर सफलता जितनी मिलना चाहिये थी उतनी नहीं मिली।

4. **आयात प्रतिस्थापन -** सरकार ने आयात प्रतिस्थापन की नीति अपनायी जिससे कि आयातो पर निर्भरता कम हो सके। इस नीति के अर्न्तगत उन वस्तुओं का उत्पादन किया गया जिन्हें विदेशों से आयात किया जाता था।
5. **अधिक विदेशी सहायता -** सरकार ने समय-समय पर भुगतान सम्बन्धी कठिनाइयों को हल करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विदेशी सरकारों से विदेश मुद्रा में ऋण लिए। इन ऋणों से अल्पकालीन समस्या ही हल हुई पर यह समस्या का कोई हल नहीं है। ऋणों को लौटाना और उन-पर ब्याज तो देना ही पड़ता है। आज विदेशी ऋणों का अत्यधिक भोर हमारी अर्थ-व्यवस्था पर हो गया और इन ऋणों पर ब्याज देना ही एक बड़ी समस्या बन गया है।
6. **विदेशी विनिमय अधिनियम -** सरकार ने विदेशी विनिमय प्रबन्ध अधिनियम 1973 में पारित किया। यह अधिनियम 1974 में लागू किया गया। इस नियम के अन्तर्गत विदेशों में रह. रहे भारतीयों ने रिजर्व बैंक के माध्यम से धन भारत भेजा जिससे हमारे विदेशी मुद्रा कोष में वृद्धि हुई।
7. **स्थगित भुगतान पद्धति -** विदेशी विनिमय के अल्पकालीन मात्र को। दूर करने के लिए स्थगित 'भुगतान पद्धति को लागू किया गया। नई परियोजनाओं के लिए आयात लाइसेन्स इस शर्त पर दिए गए कि आयातो का प्रबन्ध स्थगित भुगतान के आधार पर किया जाना संभव होना चाहिये।
8. **सरकार की स्वर्ण नीति -** सरकार ने स्वर्ण आकर्षित करने के लिए तथा निजी प्रयोग में स्वर्ण के आकर्षण को समाप्त करने के लिए स्वर्ण नीति बनाई जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार है : -
   (i) स्वर्ण बांड जारी किये जिन पर 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज था और ये बांड 15 वर्षीय थे।
   (ii) स्वर्ण की सट्टेबाजी को रोकने के लिए स्वर्ण के अग्रिम व्यापार पर रोक लगा दी गई।
   (iii) स्वर्ण नियन्त्रण कानून लागू किया जिसके अन्तर्गत केवल 14 कैरट की शुद्धता वाले स्वर्ण आभूषण ही बनाये जा सकते थे और स्वर्ण किसी अत रूप में नहीं रखा जा सकता था।
   (iv) स्वर्ण आभूषण के निर्यात को प्रोत्साहन दिया गया। स्वर्ण नीति में समय-समय पर सुधार करने पर भी सरकार को अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी। स्वर्ण की तस्करी बड़े पैमाने पर होती रही और विदेशी विनिमय का दुरुपयोग होता रहा।

23.8 भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के सुझाव

(1) **निर्यात प्रोत्साहन -** विदेशी विनिमय संकट को दूर करने के लिए आवश्यक है कि निर्यातो को बढ़ाने का हर संभव प्रयास किया जाना चाहिये। सरकार ने प्रयास तो किये है पर प्रयास अब और आक्रामक ढंग से किये जाने चाहिये।

(2) **घरेलू मांग की सीमित करना -** उच्च आय वर्ग द्वारा प्रयोग की जाने वाली अनावश्यक और प्रदर्शन मात्र की उपभोग वस्तुओं की मांग पर नियन्त्रण लगाया जाना चाहिये और निर्यात

अतिरेक (Export Surplus) का निर्माण किया जाना चाहिये जिससे कि निर्यातो में वृद्धि की जा सके।

(3) **आयातो में कमी -** भारत कों अपने आयातो में कमी करनी चाहिये इसके लिए (1) आयात करों में वृद्धि करना चाहिये जिससे आयतित वस्तुएं महगी पडे और उनकी मांग कम हो तथा (2) लाइसेन्स कोटा प्रणाली का पूरा सहयोग लेना चाहिये।

(4) **आयात प्रतिस्थापन -** जिन वस्तुओं का आयात किया जाता है उनके प्रतिस्थापन की व्यवस्था की जानी चाहिये। इसके लिए घरेलू उत्पादन बढ़ाना चोहिये तथा नये उद्‌योग स्थापित करना चाहिये। इससे आयात कम होंगे और भुगतान संतुलन पर दबाव कम होगा।

(5) **मूल्यों में स्थिरता** - निर्यात बढाने के लिए मूल्यों में स्थिरता चाहिये। यह आवश्यक है कि विदेशी बाजारों में भारतीय वस्तुएं मंहगी न पड़े और प्रतिस्पर्धा में टिक सकें। दूसरे शब्दों में मुद्रा प्रसार की प्रवृलि को नियन्त्रण में रखना चाहिये।

(6) **भारत मूल के व्यक्तियों को सुविधा -** विदेशों में रह रहे भारतीयों को भारत धन भेजने के लिए पर्याप्त सुविधा और प्रलोभन देना चाहिये जिससे कि वे अधिक से अधिक विदेशी मुद्रा भारत भेजें।

(7) **विदेशी पर्यटकों को प्रोत्साहन** - देश में विदेशी पर्यटकों के लिए विशेष सुविधाओं की व्यवस्था करना चाहिये जिससे कि अधिक संख्या में भारत भ्रमण के लिए आयें और भारत को विदेशी मुद्रा प्राप्त हो सके।

आर्थिक नियोजन से भुगतान सन्तुलन में घाटा होता ही है। पर घाटा इतना अधिक नहीं होना चाहिये जितना कि हुआ है। घाटा एक सीमा तक ही उचित ठहराया जा सकता है। विदेशों से घाटे की पूर्ति के लिए ऋण लिये जा सकते है पर ऋण लेकर घाटा पूरा करना समस्या का कोई हल नही है। घाटे की समस्या का हल तो आयात प्रतिस्थापन आवश्यक आयात और निर्यात संबर्द्धन से ही हो सकता है। आज भूमण्डलीकरण के दौर में ये सुझाव महत्वहीन हो गए है। अब हमें निर्यातो की गुणवत्ता बढ़ाकर विदेशी बाजारों में प्रतिस्पर्द्धा करनी है।

बोध प्रश्न, 3

1 विदेशी विनिमय संकट दूंर करने के लिए सरकार द्‌वारा क्या प्रयास किये गये थे?

2 भुगतान सन्तुलन की कठिनाई को दूर करने के लिए आपके क्या सुझाव है?

23.9 सारांश

भुगतान सन्तुलन से अर्थ एक देश के निवासियों का अन्य देश के निवासियों से हुए उस मोद्रिक लेन-देन है, जो एक निश्चित अवधि में हुए हों।

व्यापार सन्तुलन में केवल दृश्य मदों को रखा जाता है जबकि भुगतान सन्तुलन में दृश्य व अदृश्य दोनों को व्यापार सन्तुलन भुगतान सन्तुलन का ही भाग है। भुगतान सन्तुलन के दो भाग है : - (1) चालू खाता (2) पूंजीगत सौदे।

योजनाकाल में भारत का भुगतान सन्तुलन हमेशा ही प्रतिकूल रहा है। भुगतान सन्तुलन का घाटा प्रत्येक योजना में बढ़ता गया है। दूसरी योजना से घाटे की प्रवृत्ति बढ़ने की रही है।

भुगतान असन्तुलन के अनेक कारण है - आयातो में निरंतर वृद्धि, निर्यातो में आयातो की तुलना में कम वृद्धि, विदेशी ऋणों पर व्याज का भुगतान और ऋणों का भुगतान, पेट्रोलियम के मूल्य और खपत में वृद्धि, अदृश्य मदों में शुद्ध आय की कम प्राप्ति, विदेशी ऋणों से व्यापार के सम्बन्ध का न होना, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से रुपये की खरीद, बड़ी मात्रा में विनियोगों के कारण पड़ने वाला आय औंर कीमत प्रभाव।

भारत सरकार ने समय-समय पर प्रतिकूलता को दूर करने के उपाय किये है। ये इस प्रकार है - न्यूनतम नोट निगर्मन प्रणाली को अनुपातिक कोष प्रणाली के स्थान पर अपनाना, आयातो पर प्रतिबंध लगाना, निर्यातो को प्रोत्साहन करना, आयात प्रतिस्थापन की नीति अपनाना, विदेशों से अधिक सहायता प्राप्त करा, विदेशी अधिनियम 1973 पारित करना, स्थगित भुगतानों के आधार पर लाइसेन्स देना और स्वर्ण नीति बनाना।

भुगतान सन्तुलन की प्रतिकूलता को दूर करने के लिए सुझाव इस प्रकार है :- निर्यातो को और अधिक प्रोत्साहन देना, घरेलू मांग को कम करना, आयात प्रतिस्थापन पर बल देना जिससे आयात की आवश्यकता और कम हो सके, मूल्य स्तर में स्थिरता लाना, प्रवासी भारतीयों को भारत धन भेजने के लिए प्रेरित करना और पर्यटन उद्योग को विकसित करना जिससे और अधिक पर्यटक भारत आने के लिए उद्दत हों।

23.10 शब्दावली

आयात प्रतिस्थापन (Import Substitution)	विदेश, से आयातित वस्तुओं का उतादन।
निर्यात संवर्द्धन (Export Promotion)	इसके अन्तर्गत उद्योगों को निर्यात करने के लिए अनेक उपायों द्वारा' प्रोत्साहित किया जाता है।
अवमूल्यन (Devaluarion)	देश की मुद्रा के बाह्य मूल्य को कम करना।
विशेष आहरण अधिकार (Special Drawing Rights)	भुगतान शेष के दावों का निपटारा करने का अदभुत साधन, इसके द्वारा स्वर्ण का सहाय लिये बिना, विदेश पुगतानों के लिए, परिवर्तनशील मुद्राएं प्राप्त की जानी है। यह योजना 1970 से लागू हुई थी।
विनिमय प्रतिबंध (Exchange Control)	भुगतान शेष की कठिनाइयो को हल करने के लिए एक वैकल्पिक व्यवस्था जिसका अर्थ सरकार द्वारा विदेशी विनिमय बाजार की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करना है।
माडल (Model)	किसी आर्थिक प्रोग्रामिंग के विश्लेषण का एक व्यवस्थित क्रम है।

23.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

लक्ष्मी नारायण नाथूरामका, भारतीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा

सी.एस. बरला और आर.सी. अग्रवाल, भारतीय अर्थशास्त्र. रतन प्रकाशन मंदिर, देहली

एल.एस. राय, भारतीय अर्थशास्त्र, नव विकास प्रकाशन, पटना।

हरिशचन्द्र शर्मा और आर.एन. सिंह, भारतीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा

डा. चतुर्भुज मामोरिया और डा. एस.सी. जैन, भारत की आर्थिक समस्याएं, साहित्य भवन आगरा।

ए.एन अग्रवाल, भारतीय अर्थ-व्यवस्था, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि, नई दिल्लो

A.N.Agarwal, Indian Economy, Wilsey Eastern ltd New Delhi

P.C.Dhimgra, Rhe Indian Economy, Sultan Chand & Sons New Delhi

Rudra Datt and K.P.M. Sundhram, Indian Economy, S. Chand & Co. (Pvr.) Ltd. New Delhi.

S.K.Mishra and V.K. Puri Indian Economy, Himalava Publish-ing House, Bombay.

23.12 अभ्यासों के क्तर

बोध प्रश्न 1

1. एक निश्चित अवधि में एक देश को विदेशों से जो भुगतान प्राप्त होता है और जो भुगतान करना होता है उसके क्रमबद्ध विवरण को भुगतान संतुलन कहा जाता है। यदि प्राप्ति अधिक होती है तो भुगतान सन्तुलन का आधिक्य और यदि भुगतान अधिक होता है तो भुगतान सन्तुलन का घाटा कहा जाता है।
2. व्यापार सन्तुलन में आयात निर्यात का विवरण रहता है जबकि भुगतान सन्तुलन में आयात निर्यात के साथ-साथ सेवाओं, पूंजी, और स्वर्ण आदि के आयात व निर्यात को शामिल किया जाता है।
3. भुगतान सन्तुलन के दो भाग है:
   (1) चालू खाता - इसमें व्यापार सतुलन, अदृश्य मदें, गैर मौद्रिक स्वर्ण की गतिशीलता से शामिल किया जाता है।
   (2) पूंजीगत वादे - इसमें निजी प्राप्तियां व निजी भुगतान सरकारी प्रप्तियां और सरकारी भुगतान, विदेशी ऋणों के व्याज व मूलधन का भुगतान, अन्तर्तष्ट्रीय मुद्रा कोष से रुपये की खरीद, बैकिंग पूंजी की शुद्ध राशिया शामिल है।

बोध प्रश्न 2

1. योजनाकाल में भारत का भुगतान सन्तुलन सदैव ही प्रतिकूल रहा। पहली योजना में घाटा43 करोड़ रुपये था। इस योजना में कोरिया युद्ध, अमरीका में मंदी, अनकूल वर्षा का भुगतान सन्तुलन पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। दूसरी योजना में घाटा बढ़कर 1725 करोड़ रुपये

हो गया क्योंकि भारी मात्रा में मशीनरी का आयात किया गया था और निर्यात बढ़ नहीं सके थे। तीसरी योजना में घाटा दूसरी से भी अधिक 1951 करोड़ रुपये हुआ क्योंकि पूंजीगत में भुगतन सन्तुलन 99 करोड़ रुपये से अनुकूल था यह अनुकूलता अमरीका से रुपया राशियों में छूट के कारण थी। पांचवी और छठी योजना भी भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल रहा।

2. भारत के भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल होने के कारण थे - आयात में वृद्धि, निर्यात में अपेक्षितवृद्धि नहीं, आय प्रभाव और मूल्य प्रभाव विदेशी ऋण और व्यापार में सम्बन्ध का अभाव, विदेशी ऋणों पर व्याज और उनकी अदायगी, पेट्रोलियम मूल्यों में वृद्धि।

बोध प्रश्न 3

1. विदेशी विनमय संकट को दूर करने के लिए सरकार के प्रयास इस प्रकार है -
   (i) मुद्रा प्रणाली में परिवर्तन,
   (ii) प्रतिबन्धात्मक आयात नीति,
   (iii) निर्यात् प्रोत्साहन,
   (iv) अधिक विदेशी सहायता,
   (v) आयात प्रतिस्थापन,
   (vi) विदेशी विनिमय अधिनियम,
   (vii) स्थगित भुगतान पद्धति और
   (viii) स्वर्ण नीति का निर्माण।
2. भुगतान संतुलन की कठिनाई दूर करने के लिए सुझाव इस प्रकार है-
   (i) निर्यात प्रोत्साहन,
   (ii) घरेलू मांग को कम करना,
   (iii) आयातो में कमी,
   (iv) आयात प्रतिस्थापन,
   (v) मूल्य स्तर में स्थिरता,
   (vi) प्रवासी भारतीयों को धन भेजने के लिए आकर्षण,
   (vii) पर्यटन उद्योग का विकास।

परिशिष्ट - (इकाई 23)

विभिन्न योजनाओं में भुगतान सन्तुलन की

सातवीं योजना मे भुगतान सन्तुलन

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1985-86	-9586	+3630	-5956
1986-87	-9354	+3524	-5830
1987-88	-9296	+3003	-6293
1988-89	-13555	+1975	-11580

1989-90	-12413	+1025	-11388
कुल	-54204	+13157	-471047

वार्षिक योजनाओं 1990-91, 1991-92 में भुगतान सन्तुलन

वर्ष	व्यापार शेष	शुद्ध अदृश्य मदें	भुगतान शेष
1990-91*	-16934	-435	-17369
1991-92*	-6945	+4258	-2237

*प्रस्तावित

आठवीं योजना के प्रथम दो वर्षों 1992-93 व 1993-94 में व्यापार शेष क्रमशः- 14101 करोड़ रुपये व -7484 करोड़ रु. रहा। 1992-93 में शुद्ध अदृश्य मदें 1337 करोड़ रु. व 1993-94 में 3848 रु. रहा।

भुगतान शेष घाटा 1992-93 में -12764 रु. व 1993-94 में - 3636 करोड़ रु. रहा।

इकाई 24

निर्यात सम्बर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य
24.1 प्रस्तावना
24.2 निर्यात-सम्बर्द्धन का अर्थ
24.3 निर्यात-सम्बर्द्धन की आवश्यकता
24.4 निर्या सम्बर्द्धन के मार्ग में बाधाएं
24.5 निर्यात-सम्बर्द्धन के लिए सरकारी प्रयत्न
24.6 निर्यात-सम्बर्द्धन के लिए सुझाव
24.7 आयात-प्रतिस्थापन का अर्थ
24.8 आयात-प्रतिस्थापन में प्रगति
24.9 आयात-प्रतिस्थापन से लाभ
24.10 आयात-प्रतिस्थापन से हानियां
24.11 आयात-प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में सुझाव
24.12 सारांश
24.13 शब्दावली
24.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें
24.15 अभ्यासों के उत्तर

24.0 उद्देश्य

आप पिछली इकाई में भुगतान सन्तुलन की स्थिति का अध्ययन कर चुके है। इस इकाई में आपको निर्यात-सम्बर्द्धन और आयात-प्रतिस्थापन से परिचित कराया जायेगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

- निर्यात-सम्बर्द्धन और आयात-प्रतिस्थापन को परिभाषित कर सकेंगे
- निर्यात-सम्बर्द्धन की आवश्यकता प्रतिपादित कर सकेंगे,
- निर्यात-सम्बर्द्धन के मार्ग में बाधाओं का वर्णन कर सकेंगे,
- निर्यात-सम्बर्द्धन के सम्बन्ध में सरकार द्वारा किए गये प्रयत्नों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- निर्यात-सम्बर्द्धन के लिए सुझाव दे सकेगे,
- आयात-प्रतिस्थापन का अर्थ समझा सकेगे,
- आयात-प्रतिस्थापन में प्रगति का उल्लेख कर सकेंगे,
- आयात-प्रतिस्थापन से लाभ और हानियों की व्याख्या कर सकेंगे,
- आयात-प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में सुझाव दे सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

पिछली इकई में आपने भारत की भुगतान सन्तुलन स्थिति के सम्बन्ध में पढ़ा है। अब इस इकाई में आप निर्यात सम्बर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन के विषय में पढ़ेंगे। भारत जैसी किसी भी विकासशील अर्थ-व्यवस्था के लिए निर्यात सम्बर्द्धन और आयाम-प्रतिस्थापन का विशेष महत्व है।

यहां आपको बताया जायेगा कि निर्यात-सम्बर्द्धन तथा आयात-प्रतिस्थापन का अर्थ क्या है? आपको यह स्पष्ट किया जायेगा कि भारत के लिए निर्यात सम्वर्धन की आवश्यकता क्यों है? आपको निर्यात सम्वर्द्धन के मार्ग में आने वाली बाधाओं से अवगत कराया जायेगा और यह भी बताया जायेगा कि निर्यात सम्वर्द्धन के लिए सरकार ने क्या प्रयल किये है? साथ ही निर्यात प्रोत्साहन के लिए सुझाव भी दिये जायेंगे। आयात-प्रतिस्थापन भी देश की अर्थ-व्यवस्था के विकास के लिए अत्याधिक महत्वपूर्ण है। इसकी प्रगति के बारे में आपको जानकरी दी जायेगी। आयात प्रतिस्थापन के लाभ और हानियों का विश्लेषण भी किया जायेगा। साथ ही आपको आयात प्रतिस्थापन के लिए सुझाव भी दिये जायेंगे।

24.2 निर्यात सम्वर्द्धन का अर्थ

निर्यात सम्वर्द्धन से तात्पर्य निर्यात प्रोत्साहन से है जिसमें निर्यात वृद्धि के लिए निर्यात उद्‌योगों को अधिक से अधिक निर्यात बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है। इसके लिए नकद सहायता (Cash Subsidy) दी जाती है, बैकों से रियायती दर पर ऋण दिये जाते है निर्यात के आधार पर आयात की अनुमति दी जाती है, निर्यात की वस्तु पर रेल-भाड़े और जहाज भाड़े में छूट दी जाती है और निर्यात करने वाले फर्म को आयकर में छूट दी जाती है।

24.3 भारत के लिए निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता

भारत जैसे विकासशील देश के लिए निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता कई कारणों से है-

1. प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन ठीक करने के लिए - स्वतंत्रता के बाद भारत का भुगतान सन्तुलन प्रतिकूल रहा है जिससे विदेशी विनिमय की समस्या ही नहीं केवल बनी रही है बल्कि पंचवर्षीय योजनाओं को जिस ढंग से बनाना चाहते थे बनाने में भी कीइनाई हुई है।
2. विदेशी ऋण-भार कम करने के लिए - भारत का विदेशी व्यापार असन्तुलित रहा है। व्यापार घाटा हमेशा ही बढ़ा है। आर्थिक योजनाओं के लिए धन की कमी बनी रही है। सरकार ने भुगतान सन्तुलन के घाटे को पूरा करने के लिए और योजनाओं को चलाने के लिए भारी मात्रा में विदेशों से और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से ऋण लिए है। विश्व बैक के अनुसार भारत पर विदेशी ऋणों का भार 1988 के अंत में 76,000 करोड़ रुपये होने का अनुमान है। इन ऋणों क्टे चुकाने और ब्याज के भुगतान के लिए निर्यात वृद्धि की जरूरत है।
3. विकास योजनाओं की सफलता के लिए - विकास योजनाओं को सफलतापूर्वक चलाने के लिए पूँजीगत वस्तुओं के आयात जरूरी है। इन आयातो के लिए निर्यात वृद्धि आवश्यक है।

4. अर्थ-व्यवस्था को आत्म-निर्भर बनाने के लिए - विदेशी सहायता यर दीर्घ काल के लिए. निर्भर रहना देश के लिए घातक है इसके बहु त से दुष्परिणाम है। इनसे देश को मुक्त रखने के लिए निर्यात वृद्धि जरूरी है।
5. विश्व के कुल निर्यात व्यापार में भागीदारी बढ़ाने के लिए - विश्व के कुल निर्यात तेजी से बढ़े है पर कुल निर्यात में भारत की भागीदारी कुछ कम हुई है। जहां 1950 में विश्व के कुल निर्यात में भारत का भाग 2.1 प्रतिशत था वह घटकर 1974 में केवल 0.5 प्रतिशत हो गया है। भारत की विश्व के कुल निर्यात में भागीदारी बढ़ाने के लिए निर्यात प्रोत्साहन जरूरी है।
6. बढ़ती हुई आयात आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए - भारत की आयात आवश्यकताओं में आगे चलकर वृद्धि ही होना है। हाँ, यह वृद्धि विकास की प्रक्रिया को मंद करके अवश्य ही रूक सकती है। कई बार तेल की कीमतो में वृद्धि ने समस्या को और भी उलझा दिया है। तेल आर्थिक क्रियाओं के लिए एक आवश्यक उत्प्रेरक (Catayst) है। इसकी खपत को एक सीमा तक ही नियंत्रित किया जा सकता है। भारत की तेल आवश्यकताओं में तो वृद्धि ही होना है जिसकी पूर्ति के लिए तेल को आयात बिल तो बढ़ना ही है। इसके अतिरिक्त भारत में ही तेल के उत्पादन को बढ़ाने के लिए भी विदेशी पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी। इसका अर्थ यह हुआ कि तेल का आयात करने और तेल क्षेत्र का विकास करने के लिए भारी मात्रा में विदेशी पूँजी की आवश्यकता पड़ेगी इसलिए निर्यात-सम्वर्द्धन जरूरी है।
7. ऋणों पर ब्याज भुगतान की समस्या - ऋणों पर ब्याज भुगतान की समस्या ने गंभीर मोड़ ले लिया है और यह कहा जा रहा है कि ब्याज भुगतान की समस्या और गंभीर बन सकती है। यह तो किसी दशा में ठीक नहीं होगा कि ऋणों पर ब्याज चुकाने के लिए ऋण लिये जायें। अच्छा तो यही होगा कि निर्यात-सम्वर्द्धन द्वारा भुगतान की व्यवस्था की जाये।
8. उत्पादों के विक्रय के लिए - अनेक क्षेत्रों में उत्पादन के लिए उन्नत तकनीक का प्रयोग करना पड़ता है जिसके कारण उत्पादन का पैमाना बड़ा रहता है। बड़े पैमाने पर उत्पादन होनें से घरेलू बाजार पर्याप्त नहीं रहता है, इसलिए विदेशी बाजार खोज लेने की आवश्यकता है।
9. उपभोक्ता वस्तुओं के व्यापार के लिए - देश में उपभोक्ता वस्तुओं जैसे कि खाद्य तेल, शक्कर, खाद्यान्न की कई बार कमी पड़ जाती है। इनकी कमी से अर्थ-व्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है। भविष्य में इन वस्तुओं की कमी पड़ सकती है। निर्यात वृद्धि से आय में वृद्धि हो सकेगी और इन उपभोक्ता वस्तुओं का भी आयात किया जा सकेगा है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि देश की सुरक्षा के बाद निर्यात का ही स्थान है (Second only to defence) निर्यात-सम्वर्द्धन की अत्याधिक आवश्यकता व्यक्त होती है।

24.4 निर्यात-सम्वर्द्धन के मार्ग में बाधाएं

निर्यात-सम्वर्द्धन के लिए अनेक प्रयत्न करने पर भी जितनी सफलता मिलनी चाहिए थी नहीं मिली और व्यापार सन्तुलन हमेशा ही प्रतिकूल रहा है। निर्यात वृद्धि के मार्ग में अनेक बाधाएं है।

1. ऊँचे मूल्य - भारत की अधिकांश वस्तुओं के मूल्य अधिक होते है, जिसें कारण विदेशी बाजारों में इनकी मांग कम होती है। हम जूट की वस्तुओं, सूती वस्त्र चीनी इत्यादि के सम्बन्ध में विदेशी उत्पादको के सामने नही टिक पाते है। कई वस्तुओं का निर्यात करने पर उत्पादका को हानि होती है, जिसका पूर्ति सरकार करती है। ऊँची कीमत होने के तीन कारण है -

   (i) मुद्रा प्रसार के कारण भारत में कमितो का स्तर दूसरे देशों की तुलना मे काफी ऊँचा है,

   (ii) भारतीय उद्योगों की कुशलता कम हैं

   (iii) भारतीय उत्पादक लागत के प्रति सचेत नहीं है।
2. विदेशी प्रतियोगिता - निर्यात की अनेक वस्तुएं विदेशी प्रतियोगिता के कारण बिक नहीं पाती है। सूती वस्त्र में जापान और चीन, चाय में श्रीलंका और जूट की वस्तुओं में बांग्ला देश ने हमारे विदेशी बाजारों को सीमित कर दिया है।
3. आयातो पर सीमाएं और ऊँचे कर - हमारी अनेक निर्यात वस्तुओं पर विदेशी सरकारों ने ऊँचे आयात कर लगा रखे है और आयात सीमाएं निश्चित कर रखी है जिससे कम मात्रा में वस्तुओं का निर्यात हो पाता है। सूती वस्त्र, तम्बाकू, चाय, जूट के सामान, चमड़े के सामान, साईकिलों आदि के निर्यात में ऊँचेकर और मात्रा की सीमाएं बाधक है।
4. निम्न स्तर की वस्तुएं - निर्यात वस्तुओं का स्तर घटिया है, जिससे प्रतिस्पर्धा में ये ठहर नहीं पाती है। इसके दो मुख्य कारण है: आधुनिकीकरण और तकनीकी ज्ञान की कमी।
5. भारतीय व्यापारियों की नीतियां - भारतीय व्यापारियों की नीतियां दोषपूर्ण है। वे नमूने के अनुसार वस्तुएं निर्यात नहीं करते है। रुस को एक बार जूतो का निर्यात किया गया था, पर जूते नमूने के अनुसार नहीं थे, इसलिए लौटा दिये गये। इसी तरह अमरीका को काली मिर्च का निर्यात किया गया था। उसमें गिलावट पाई गई, इसलिए अमरीका ने लौटा दी। व्यापारियों की इन दोषपूर्ण नीतियों के कारण विदेशों में भारतीय वस्तुओं की साख कम हो गई है।
6. सीमित बाजार - भारतीय वस्तुओं का बाजार संकुचित है। यदि विदेशी बाजार में मांग कम हो जाती है तो हमारे निर्यात भी कम हो जाते है। यदि ब्रिटेन में चाय की मांग कम हो जाती है तो चाय का निर्यात भी मांग के अनुसार कम हो जाता है।,

भारत के निर्यातो में परम्परावादी वस्तुओं का महत्वपूर्ण स्थान है। चाय, जूट की वस्तुएं, सूती वस्त्र का कुल निर्यात में हिस्सा 50 प्रतिशत है। यदि इन वस्तुओं की मांग कम होती है तो निर्यात भी कम हो जाते है।

7. स्थानापन्न वस्तुओं का प्रभाव - स्थानापन्न वस्तुओं के कारण निर्यात कम हो रहे है। जूट और सूती वस्त्र का स्थान स्थानापन्न वस्तुओं ने ले लिया है जिससे इनकी मांग कम हुई है।
8. प्रचार की कमी - भारतीय वस्तुओं का प्रचार विदेशों में धन की कमी के कारण कम होता है, जिससे निर्यात वृद्धि आशाजनक नही है।

9. आयात-प्रतिस्थापन उन्मुख विनियोग नीति - निर्यात-सम्वर्द्धन के मार्ग में आयात प्रतिस्थापन उन्मुख विनियोग नीति बाधक है। इस नीति के कारण उत्पादक को देश में ही, आयातो पर प्रतिबन्धों के कारण, एक संरक्षित बाजार मिल जाता है और उन्हें आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं के उत्पादन से शीघ्र और लाभ मिल जाता है। ऐसे में ये उत्पादक मिर्यात का जोखिम नहीं उठाना चाहते है, क्योंकि विदेशी बाजारों में इन्हें कठिन प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ता है।

बोध प्रश्न 1

1. निर्यात-प्रोत्साहन से आप क्या समझते है?
2. भारत में निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता किन कारणों से है?
3. निर्यात सम्वर्द्धन के मार्ग में कौन-कौन सी बाधाएं है?

24.5 निर्यात-प्रोत्साहन के लिए सरकारी प्रयास

भारतीय सरकार निर्यात वृद्धि के लिए हमेशा ही प्रयत्नशील रही है। सरकार के द्‌वारा अनेक प्रयास भी किये गये हैं, जो इस प्रकार है -

1. **संस्थागत व्यवस्थाएं -** निर्यात सम्वर्द्धन के लिए विभिन्न संगठनों का निर्माण किया गया है-

(i) व्यापार मंडल (Board of Trade) - इस बोर्ड का लाभ व्यापार के सभी पक्षों पर विचार करने के बाद सरकार को सलाह देना है। यह बोर्ड अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि विशेषकर निर्यात में वृद्धि के लिए प्रयत्न करता है। इसने निर्यात सम्बन्धी अवसरों से परिचित कराया है। उत्पादन व्यय में कमी, साख की सुविधा और जहाज-भाड़े की समस्या पर सुझाव भी दिये है।

(ii) निर्यात सम्बर्द्धन निदेशालय (Export Promotion Directorate) - इसका काम निर्यातकों को आवश्यक सूचनाएं और सहायता देना है। यह व्यापार मंडल के निर्देशों और सुझावों को लागू करता है। इसके चार क्षेत्रीय कार्यालय दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता औंर चेनई में है।

(iii) निर्यात सम्वर्द्धन सलाहकार परिषद (Export Promotion Advisory Council) यह परिषट सरकार को आयात और निर्यात नीति की समीक्षा करती है और सरकार को परामर्श देती है।

(iv) क्षेत्रीय निर्यात-सम्वर्द्धन सलाहकार समितियां (Regional Export Promotion Advisory) देश के विभिन्न क्षेत्रों में निर्यात सम्मावनाओं और समस्याओं पर ये समितियां विचार करती है और अपने अपने क्षेत्रों की समस्याओं की ओर सरकार का ध्यान - आकर्षित करती है।

(v) निर्यात सम्वर्द्धन परिषद (Export Promotion Council) - इनमें उद्‌योग, व्यापार और सरकार तीनों के प्रतिनिधि होते है। ये निर्यात वृद्धि के लिए परामर्श देती है। आज इस तरह की अलग अलग वस्तुओं जैसे काबू, सूती वस्त्र, हाथ-करघा, जवाहरात, मसाले की अनेक परिषदें है।

(vi) वस्तु मंडल (Commodity Board) - ये मंडल अपने से सम्बन्धित वस्तु के उत्पादन, विकास और निर्यात का काम करते है। कई वस्तुएं जैसे कि चाय, तम्बाकू, रबर, काफी, मसाले के मंडल स्थापित किये गये है।

(vii) निर्यात साख और प्रत्याभूति निगम (Rhe Export Credit and Guarantee Corporation) - यह निगम निर्यातकों को उन अनिश्चिताओं के लिए बीमा सुविधा देता है, जोकि सामान्य बीमा कम्पनियों द्वारा नहीं दी जाती है। इसके द्वारा जारी नियति साख प्रत्याभूति पालिसी (Export Credit Guarantee Policies) आधार पर बैक निर्यातकों को ऋण देते है।

(viii) राजकीय व्यापार निगम (Stare Trading Corporation) - तथा अन्य निगम - निर्यातो की वृद्धि करना और आवश्यक आयातो की व्यवस्था करना निगम का मुख्य उद्देश्य है।

इस निगम की सहायता के लिए कुछ और निगम गठित किये गये है - परियोजना और उपकरण निगम (Project and Equipments Corporation), खनिज और धातु व्यापार निगम (Minesals and Metals Trading Corporation) हस्तशिल्प और हथकरघा निगम Handicrafts and handloom Export Corporation), भारतीय काजू निगम (Cashew Corporation of India), रसायन और मेषण निगम (Chemistry & Pharmaceuticals Coroporation)

(ix) निर्यात निरीक्षण परिषद - (Export Inspectiuon Council) - इसका कार्य किस्म नियंत्रण और जहाज में मल लदान के पूर्व निरीक्षण व्यवस्था द्वारा निर्यात प्रोत्साहित करना है।

(x) भारतीय पैकेजिंग संस्थान (Indian Institute of Packaging) - इसका मुख्य उद्देश्य विदेशी बाजारों में भारतीय वस्तुओं की प्रतियोगी क्षमता को बढ़ाने के लिए पैकेजिंग में सुधार करना और अनुपयुक्त पैकेजिंग के कारण होने वाली हानियों ले कम करना है। यह पैकेविग तकनीक में प्रशिक्षण भी देता है और सलाहकार का काम भी करता है।

(xi) भारतीय विदेशी व्यापार संस्थान (Indian Institute of Foreign Trade) - इसका काम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार मेलों और विदेशों में भारतीय प्रदर्शनियों का आयोजन करना है जिससे कि भारतीय वस्तुओं का प्रचार किया जा सके।

2. संरचनात्मक सुविधायें (Infra- structure Facilitires):

(i) निर्यात सदन (Export-House) - सरकार ने कुछ व्यवसायिक फर्मो को निर्यात सदन की मान्यता दी है। सरकार ने यह निर्यात व्यापार में विशिष्टीकरण के लिए किया है। इन सदनों को निर्यात व्यापार के सम्बन्ध में विशेष सुविधाएं दी जाती है।

(ii) व्यापारिक सदन (Trading House) - फर्मे जो कि निर्यात व्यापार कुशलता से कर रही है उन्हें सरकार ने व्यापारिक सदन की मान्यता दी है। इन्हें निर्यात सदनों की तुलना में अधिक सुविधाएं दी जाती है।

(iii) निर्यात प्रक्रियन क्षेत्र (Export Processing Zone)- इलैक्ट्रानिक उपकरणों के निर्यात-सम्वर्द्धन के लिए सान्ताक्रुज में यह क्षेत्र बनाया है। इस क्षेत्र में निर्मित वस्तुओं को निर्यात करना जरूरी है। इसी तरह के क्षेत्र चेन्नई, फाल्टा, कोचीन और नोएडा में भी स्थापितहै।

(iv) कान्दला मुक्त व्यापर क्षेत्र (Kandla Free Trade Zone) - इस क्षेत्र में निर्यात प्रधान इकाइयों को स्थापित किया है। इस क्षेत्र में स्थापित इकाइयों को विशेष सुविधाएं दी जाती

3. रजकोषीय सुविधाएं (Fiscal Measures) -

(i) रोकड़ क्षतिपूर्ति सुविधाएं (Cash Compensating Support) - कुछ वस्तुओं के लिए रोकड़ क्षतिपूर्ति सहायता विदेशी बाजारों में उनकी प्रतिस्पर्धा शक्ति बढ़ाने के लिए दी जाती है।

(ii) कर वापसी योजना (Drawback of Duties) - निर्यात वस्तुओं के लिए उत्पादन में प्रयोग किए गये कच्चे माल और उपकरणों पर वसूला गया उत्पाद और आयात शुल्क वापिस किया जाता है।

(iii) विपणन विकास सहायता (Marketing Development Assistance) - इस योजना में निर्यातकों कों विदेशी, बाजारों का विकास करने के लिए वित्तीय सहायता दी जाती है।

4. अन्य सुविधाएं -

(i) शत-प्रतिशत निर्यात उन्मुख इकाइयों को सुविधा (Hundred Percent Export Orienred Units) - शत प्रतिशत उत्पादन का निर्यात करने वाली इकाइयों को बढ़ावा देने की व्यवस्था की गई है। सुन इकाइयों को एक बिन्दु से ही औद्योगिक लाइसेन्स, विदेशी सहयोग, पूँजीगत और कच्चे माल के आयात की स्वीकृति दी जाती है।

(ii) व्यापारिक प्रतिनिधि (Trade Representative) - सरकार ने विदेशों में व्यापारिक प्रतिनिधि नियुक्त किये है जो निर्यात वृद्धि की संभावनाओं का अध्ययन करते है और पता लगाते है कि भारत से केन वस्तुओं का निर्यात किया जा सकता है।

(iii) व्यापारिक समझौते (Trade Agreements) - सरकार ने द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापारिक समझौते निर्यात वृद्धि के लिए किए है। अनेक समझौते रूपया भुगतान पर आधारित है।

(iv) निर्यात आयात बैंक (Exim Bank) - यह बैंक विदेशी व्यापार की वित्तीय व्यवस्था करता है

24.6 निर्यात-सम्वर्द्धन के लिए सुझाव

सरकारी उपायों के कारण से निर्यात व्यापार के क्षेत्र में अच्छे परिणाम निकले है। निर्यात में वृद्धि हुई है। यह वृद्धि बहुत बड़ी सीमा तक गैर-परम्परावादी वस्तुओं- खनिज लोहा, लोहा और इस्पात, इन्जीनियरी का सामान, चमड़ा, चीनी, मोती, हीरा, जवाहरात कपड़े, रसायन इत्यादि में हुई है। कुल निर्यात में गैर-परम्परावादी वस्तुओं का अनुपात बढ़ गया है।

यद्यपि अभी तक के प्रयत्नों के परिणाम सन्तोषजनक है, पर पर्याप्त नही है। योजनाओं के लिए मुद्रा की मांग तेजी से बढ़ रही है। इस दशा में निर्यात वृद्धि आवश्यक है। निर्यात वृद्धि के लिए सुझाव इस प्रकार है

1. उत्पादन में वृद्धि - यह जरूरी है कि उत्पादन के लक्ष्य पूरे किये जायें क्योंकि ऐसा करके ही निर्यात के योग्य बचत में वृद्धि की जा सकती है।
2. प्रतिस्पर्द्धा शक्ति में वृद्धि - भारतीय वस्तुएं विश्व बाजारों की प्रतिस्पर्द्धा में टिक सकने योग्य होनी चाहिये। इसके लिए कुछ कदम उठाना जरूरी है -
   (i) घिसे-पिटे पुराने संयत्र हटाये जाना चाहिए। नये आधुनिक संयंत्र लगाये जाना चाहिएं।
   (ii) वे वस्तुएं जिनके निर्माण मे श्रम अधिक लगता है ऐसे देशों को निर्यात की जाना चाहिए जहां कि श्रम मंहगा है।
   (iii) ऊपरी परिव्यय और लाभ की मार्जिन कम की जाना चाहिए। मूल्यों में स्थिरता का प्रयास किया जाना चाहिये। जापान और पश्चिमी जर्मनी ने मूल्य' स्थिरता के द्वारा ही निर्यात क्षेत्र में अद्युद् सफलता प्राप्त की है।
3. विपणन अनुसंधान - यह हमेशा पता लगाते रहना चाहिये कि विदेशों में किन-किन वस्तुओं की मांग है जिससे कि उसी तरह की वस्तुओं का उत्पादन और निर्यात किया जा सके।
4. अधिक प्रचार - विदेशों में भारतीय वस्तुओं का विज्ञापन और प्रचार करना चाहिये जिससे कि वस्तुओं की मांग उत्पन्न हो सके।
5. निर्यात के लिए उत्पादन - कुछ इकाईयों की स्थापना केवल निर्यात के लिए ही की जानी चाहिये। ऐसी इकाइयों को करो में छूट और मशीने आयात करने की छूट मिलनी चाहिए। इन्हें पूँजी भी उपलब्ध कराई जानी चाहिए और स्थानीय अधिकारियों सहयोग भी भी मिलना चाहिए।

   इन इकाइयों में उत्पादन के लिए कुछ ऐसी वस्तुओं का चुनाव कर लेना चाहिए जो कि तुलनात्मक लागत की दृष्टि से लाभप्रद है - यह चुनाव साधनों की के आधार पर किया जा सकता है। फिक्की (FICCI) ने कुछ इस तरह की वस्तुएं बताई है जैसें कि हैन्ड टूल, निर्मित खाद्यान मशीन टूल्स, व्यापारिक गाड़ियां, चमड़े वस्तुएं तैयार कपड़े इत्यादि।
6. सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका - सार्वजनिक क्षेत्र को भी निर्यात व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। यह क्षेत्र बड़े आकार की विदेशी फर्मों और समाजवादी देशों से प्रभावी ढंग से व्यापार कर सकता है।
7. निर्यात वस्तुओं में सुधार - निर्यात वस्तुओं में गुणात्मक सुधार करना। इससे वस्तुओं की प्रतिस्पर्द्धा करने की शक्ति बढ़ेगी। कुछ समय पूर्व सरकार ने गुण नियंत्रण (Quality Control) और जहाजों में लदान के पूर्व निरीक्षण (Pre-shipment Inspection) जैसी व्यवस्थाएं की है। पर अच्छा तो यह होगा कि उत्पादन की वस्तु की गुणवत्ता में वृद्धि करते रहें और घटिया प्रकार की वस्तुओं का निर्यात करने का प्रयत्न न करें।
8. व्यापारिक समझौते - निर्यात वृद्धि द्विपक्षीय समझौते, जैसा कि अमरीका कर रहा है, तीसरी दुनिया के देशो और समाजवादी देशों के साथ करना चाहिए। अफीका और एशिया के

विकासशील देशों के साथ व्यापार के अवसर अधिक है और इन देशों के साथ व्यापार शर्ते अधिक अनुकूल भी रहती है।

9. धनात्मक प्रेरणाएं - विदेशी बाजारों में प्रतियोगिता बहुत है। ऐसी दशा में धनात्मक प्रेरणाएं विशेष महत्व रखती है। निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा का एक निश्चित अंश निर्यातकों को मुक्त रूप से व्यय करने की छूट दी जानी चाहिए। यह छूट और अधिक निर्यात करने के लिए प्रोत्साहन दे सकती है।
10. साख सुविधाएं - निर्यात वस्तुओं के निर्यातकों और उत्पादकों को साख की सुविधाएं दी जानी चाहिये। साख सस्ती और यथा शीघ्र दी जानी चाहिये। सरकार ने इस, दिशा में काफी कुछ किया भी है।

बोध प्रश्न 2

1. भारत में निर्यात को प्रोत्साहन करनें के लिए कौन-कौन से उपाय किये है?
2. भारत का निर्यात व्यापार बढ़ाने के लिए आप क्या सुझाव देंगे?

24.7 आयात-प्रतिस्थापन का अर्थ

व्यापार सन्तुलन की प्रतिकूलता को कम करने के लिए आयात में कमी करना आवश्यक है। आयात में कमी करने के लिए आयात-प्रतिस्थापन जरूरी है। आयात-प्रतिस्थापन का अर्थ है कि जिन वस्तुओं को हम विदेशों से आयात करते है उनका उत्पादन देश में ही जहां सम्भव हो किया जाये जिससे उस वस्तु के आयात की जरूरत ही न रह जाये या फिर बहुत कम आयात से ही उसकी जरूरत पूरी हो जाये। आयात-प्रतिस्थापन नीति के दो मुख्य उद्देश्य है। पहला तो यह है कि विदेशी मुद्रा को अधिक महत्वपूर्ण वस्तुओं के आयात पर खर्च किया जाये और दूसरा यह है कि अधिक से अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध में देश आत्म-निर्भर बन जाये।

नियोजन के आरम्भ से ही यह नीति प्रारम्भ की गई थी और आज भी चल रही है। इस नीति का रूप परिवर्तित होता रहता है। प्रारंभ से तो इसका अर्थ यही था कि विदेशी उपभोग वस्तुओं के स्थान पर स्वदेशी उपभोग वस्तुओं का प्रयोग किया जाये। पर फिर इसका अर्थ बदला और यह हुआ कि पूँजीगत वस्तुओं की प्रतिस्थापक वस्तुएं तैयार की जायें। आज इसका अर्थ यह है कि देशी तकनीक का विकास किया जाये और विदेशी तकनीकों पर आत्मनिर्भरता कम की जाये।

24.8 आयात- प्रतिस्थापन में प्रगति

आयात-प्रतिस्थापन के कारण आयात का ढांचा बदल गया है। अनेक ऐसी वस्तुएं जिनका कि पहले आयात होता था आज उनका आयात होता ही नहीं है। सरकार को आयात-प्रतिस्थापन नीति में पर्याप्त सफलता मिली है। इस नीति के फलस्वरूप ही निर्माण उद्योग, इंजीनियरिग उद्योग, रसायन उद्योग, इलैक्ट्रानिक उद्योग विकसित हुए हे। इन उद्योगों ने करोड़ों रुपये की विदेशी मुद्रा की बचत की है। आयात प्रतिस्थापन की वृद्धि को एक तालिका से दिखाया जा सकता है। यह तालिका कुल आन्तिरक पूर्ति में आयातो का अंश दिखाती है।

तालिका 24.1

कुल आपूर्ति में आयात का प्रतिशत

क्रमांक मदें	प्रथम योजना का प्रारम्भ 1950-51	प्रथम योजना का अंत 1955-56	द्वितीय योजना का अंत 1960-60	तृतीय योजना का अंत 1965-66	वार्षिक योजना का अंत 1968-69	चतुर्थ योजना का अंत 1973-74	पंचम योजना का अंत 1977-78	1983-84
1. खाद्यान्न	5.9	1.7	4.7	9.5	56	4.3	0.2	4.0
2. लोहा और इस्पात	25.5	39.9	35.7	16.7	9.3	18.5	1.1	6.0
3. मशीनरी	68.9	41.0	40.1	27.8	24.6	17.0	15.3	18.0
4. पेट्रोलियम	92.5	93.8	94.6	76.6	66.2	70.8	63.1	33.6
5. नत्रजन खाद	72.5	39.8	80.3	58.3	60.9	38.3	27.5	1.0

इससे यह तो स्पष्ट है कि पंचवर्षीय योजनाओं में आयात-प्रतिस्थापन सफल रही है। पहली योजना के प्रारम्भ में कुल स्वदेशी पूर्ति में आयातो का योग खाद्यानों के 59 प्रतिशत, लोहा और इस्पात के लिए 25.2 प्रतिशत, मशीनरी के लिए 68.9 प्रतिशत, पेट्रोलियम के लिए 92.5 और नत्रजन खाद के लिए 72.5 प्रतिशत था। 1983-84 मे इन सभी वस्तुओं कुल आपूर्ति में इनके आयातो का अंश घटकर 4.0 प्रतिशत ही रह गया। इस तरह पेट्रोलियम को छोड़कर अन्य वस्तुओं के आयात-प्रतिस्थापन में विशेष सफलता मिली है। आवश्यकता इस बात की है कि पेट्रोलियम के उत्पादन को देश में बढ़ाने के भरसक प्रयत्न किये जायें।

24.9 आयात-प्रतिस्थापन से लाभ

आयात-प्रतिस्थापन अत्यधिक महत्वपूर्ण और लाभप्रद है; इसके लाभ इस प्रकार है -

1. भारत की औद्योगिक संरचना का विविधीकरण हुआ है। आज हमारे देश की संरचना एक विकसित देश के समान है।
2. भरत जैसे विशाल देश में मूलभूत और पूँजीगत उद्योगों का होना है। ये उद्योग देश की सुरक्षा की दृष्टि से भी आवश्यक है। आज भारतीय औद्योगिक ढ़ांचे में इन पूँजीगत उद्योगों का विशेष स्थान है। जलील अहमद ने कहा है कि 1950-5 से 1965-66 के मध्य समस्त औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का लगभग एक-चौथाई पूँजीगत माल के उत्पादन मे वृद्धि का लगभग आधा आयात-प्रतिस्थापन का है।
3. मध्य-वस्तुओं के उद्योगो का पर्याप्त विकास हुआ है।
4. स्वनंत्रता के पूर्व औद्योगिक उत्पादन की दर 2 प्रतिशत थी, आज यह दर बहुत सन्तोषजनक नहीं है पर फिर भी लगभग 6 प्रतिशत है।

5. आयात संरचना आज बदल गई। निर्मित वस्तुओं के आयात का महत्व कम हो गया है। हमारी आयात सूची से अनेक निर्मित वस्तुएं गायब हो गई है। आज 75 प्रतिशत आयात कच्ची सामग्री और मध्य वस्तुओं के होते है। पूँजीगत वस्तुओं के आयाम तो कम होकर कुल आयातो का 16 प्रतिशत ही रह गये है। यह निम्न तालिका से स्पष्ट है -

तालिका 24.2

प्रयोग के अनुसार वर्गीकृत भारत के मुख्य आयात

(प्रतिशत अंश)

प्रयोग के अनुसार वर्गीकरण	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66	1970-71	1975-76	1986-87
उपभोक्ता वस्तुएं	26.2	91.6	23.9	22.8	13.0	25.3	3.5
कच्चा माल और मध्यं वस्तुएं	53.6	51.4	46.6	19.8	54.6	54.4	77.8
पूँजीगत वस्तुएं	20.2	28.7	29.5	45.5	24.7	18.3	15.0

निर्यात वस्तुओं में अब अनेक ऐसी वस्तुएं शामिल हो गई है जिनका पहले कभी निर्यात होता ही नहीं था। कुछ निर्यात की वस्तुएं जैसे कि इन्जीनियरी का सामान और रसायन तो अति आधुनिक वस्तुएं है।

6. भारत के विदेशी व्यापार में घाटे को कम करने में सहायता मिली है। आयातो की मात्रा और मूल्यों में कमी हुई है।
7. व्यापार संतुलन के घाटे को कम करने के लिए यह उपाय निर्यात प्रोत्साहन से अधिक सरल और अच्छा है। निर्यात-सम्वर्द्धन की सफलता तो निर्यात वस्तुओं की विदेशी बाजारों मांग और प्रतियोगिता में ठहरने की क्षमता पर निर्भर करते है जबकि आयात प्रतिस्थापन की सफलता घरेलू मांग और उत्पादन के प्रयत्नों पर निर्भर करती है।

24.10 आयात-प्रतिस्थापन से हानियां

आयात प्रतिस्थापन नीति की सफलताओं के साथ कुछ हानियां भी है :-

1. आयातो में प्रतिबंध के कारण जो मांग उत्पन्न हुई थी लगता है कि अब समाप्त हो गई है। पर्याप्त घरेलू मांग न होने के कारण औद्योगिक विकास गति मंद पड़ गई है। बीमार इकाईयों की बढ़ती हुई संख्या भी इस बात की सूचक है।
2. अनेक उद्योग संरक्षण के कारण अकुशल है। उनकी अकुशलता ऊँची लागत, निम्न उत्पादकता, औद्योगिक बीमारी और पुरानी तकनीक के सूचकों से स्पष्ट हो जाती है। पूँजीगत उद्योग भी समय के साथ उत्पादन तकनीक में परिवर्तन नहीं कर पाये है। आयातो से प्रतियोगिता न होने कारण इन उद्योगों ने अपनी कुशलता बढ़ाने का प्रयास नहीं किया है।
3. उपभोक्ताओं का शोषण हुआ है। उन्हें ऊँचे मूल्यों पर घटिया किस्म की वस्तुएं खरीदनी पड़ी है। टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के आयात पूर्णत : बन्द रहने से इन वस्तुओं का बाजार विक्रेता बाजार में बदल गया है।

4. आयात प्रतिस्थापन के कारण कुछ लागतें तो ऋणात्मक ही है। दूसरे शब्दों में इस नीति के कुछ परिणाम अच्छे नही है। ऋणात्मक लागतें इस प्रकार है -
   (i) संरक्षरण के कारण श्रम प्रधान और कुशल फर्मों के स्थान पर पूँजी प्रधान और अकुशल फर्मो की स्थापना होती है
   (ii) सामान्य मूल्य स्तर में वृद्धि होती है जिसके कारण निर्यातो में पर्याप्त वृद्धि नहीं हो पाती है,
   (iii) निर्यात उद्योगों की अपेक्षा अधिक साधन, आकर्षक घरेलू बाजार के कारण, आयात प्रतिस्थापन वस्तुओं के निर्माण में लगा दिये जाते है, इससे विदेशी मुद्रा की हानि और साधनों का अपव्यय होता है।
5. आयात प्रतिस्थापन और आयात नियंत्रण से उत्पादन व्यवस्था विकृत हुई है। संरक्षण की छाया में नए उद्योग स्थापित हुए है, जिससे देश उत्पादन साधनों पुनआवंटन हुआ है। यह पुन : आवंटन ठीक से नहीं हुआ है। भारत में आय के वितरण में भारी असमानता आई है और सत्ता पर सम्पन्न वर्ग का नियंत्रण है। विलासिता वस्तुओं के आयात पर रोक लगते ही इन वस्तुओं का उत्पादन बहुत बढ़ा है। अनावश्यक प्रदर्शन उपभोग और विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों का तेजी से विकास हुआ है। भारत जैसे देश के लिए ऐसे उद्योगों की स्थापना की अवसर लागत बहुत ऊँची है।

24.11 आयात प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में सुझाव

आयात प्रतिस्थापन कों प्रभावी बनानेकेलिए सुझाव इस प्रकार है

(1) आयात प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में विवेक से काम लेनाचाहिये और अविवेकपूर्ण दौड़ से बचना चाहिये। संरक्षण सभी उद्योगों को अंधा-धुंध नही देना चाहिये और जिन उद्योगों को दिया जाये वह उतने समय तक ही देना चाहिए, जब तक कि आश्यक है। संरक्षण भी इस तरह का होना चाहिये जिससे प्रतियोगिता भी समाप्त न हो और उत्पादन लागते घटाने का प्रयास किया जाता रहे। कृषि और उद्योग दोनों में ही कुछ वस्तुओं का आयात प्रतिस्थापन संभव है। खाद्य तेलों का आयात उचित नियोजन के द्वारा 1200 करोड़ रुपये प्रति वर्ष से कम किया जा सकता है और घरेलू खाद्यान तेल की मांग को पाम की खेती से पूरा किया जा सकता है।

(2) जिन क्षेत्रों में विदेशी विनिमय की आवश्यकता नहीं है उन क्षेत्रों में लाइसेन्सिग और नियंत्रण को हटा देना चाहिये।

(3) उद्योगपतियों और सरकार को आयात प्रतिस्थापन से सम्बन्धित अनुसंधान और विकास पर ध्यान देना चाहिये। इसके लिए यदि कर भी लगाना पड़े तो भी को संकोच नहीं करना चाहिये।

(4) आयात प्रतिस्थापन की लागत पर ध्यान देना चाहिए।

(5) आयात प्रतिस्थापन के सम्बन में जो भी व्यक्ति आविष्कार करते है,उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिये।

(6) संरक्षण केवल उन्हीं उद्योगों को देना चाहिये जो बाद में अपने पैरों पर खड़े हो सकते है।

(7) संरक्षण देने के लिए तटकर या राजकोषीय नीति का उपयोग किया जाना। आवश्यक होने पर ही कोटा प्रणाली के रूप में संरक्षण देना चाहिये।

(8) संरक्षण एक सीमित अवधि के लिए ही दिया जाना चाहिये और बहुत होने पर ही बढ़ाया जाना चाहिये।

बोध प्रश्न 3

1. आयात प्रतिस्थापन से क्या आशय है?
2. आयात-प्रतिस्थापन में कहां तक वृद्धि हुई है?
3. आयात प्रतिस्थापन के सम्बन्ध में आपके क्या सुझाव है?

24.12 सारांश

भारत के आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने के और व्यापार संतुलन की प्रतिकूलता को सुधारने के लिए निर्यात सम्वर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन महत्वपूर्ण आवश्यकताएं है निर्यात सम्वर्द्धन के अन्तर्गत सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का निर्यात बढ़ाने के लिए तरहतरह के प्रोत्साहन दिये जाते है।

प्रतिकूल व्यापार सन्तुलन के समाधान, नये उत्पादों के लिए बाजार, विकस योजनाओं की सफलता और स्वावलम्बी अर्थ-व्यवस्था के लिए निर्यात सम्वर्द्धन की आवशयकता है।

उच्च मूल्य स्तर, विदेशी प्रतियोगिता, आयातो पर सीमायें और ऊँचे कर, निम्न स्तर का माल, व्यापारीयों की दोषपूर्ण नीति, सीमित बाजार, स्थानापन्न वस्तुएं प्रचार और प्रसार की कमी आदि ऐसी बाधाये जो निर्यात सम्वर्द्धन पर विपरीत प्रभाव डालती है।"

निर्यात की मात्रा में वृद्धि के लिए सरकार ने अनेक प्रयास किये है। सरकार ने संस्थागत कई व्यवस्थाएं की है, संरचनात्मक सुविधाओं का निर्माण किया है, राजकोषीय और अन्य सुविधाएं प्रदान की है।

निर्यात वृद्धि के लिए लागतो में कमी, वस्तुओं की किस्म में सुधार, व्यापारिक समझौते विपणन अनुसंधान की जरूरत है और साथ ही निर्यातको को निर्यात के लिए प्रेरणाएं तथा वित्तीय सुविधाएं देने की भी आवशयकता है।

आयात प्रतिस्थापन का तात्पर्य विदेशों से मंगाई जाने वाली वस्तुओं के स्थान पर देशी वस्तुओं का उत्पादन करने और प्रयोग करने से होता है।

आयात-प्रतिस्थापन में पर्याप्त प्रगति हुई है। अनेक वस्तुओं का आयात समाप्त हो गया है और अनेक का कम हो गया है। कई उद्योगों का विकास हुआ है और आयात की संरचना भी बदल गई है।

आयात प्रतिस्थापन के फलस्वरूप औद्योगिक ढांचा विकसित देश के समान हो गया है मूलभूत और पूँजीगत उद्योगों का विकास हुआ है, औद्योगिक उत्पादन की दर में वृद्धि हुई है विदेशी व्यापार के घाटे को कम करने में सहायता मिली है और आयातो का स्वरूप बदल गया है।

आयात-प्रतिस्थापन के कुछ दुष्परिणाम भी सामने आये है। संरक्षण और आयातो पर प्रतिबंध के कारण उत्पादकों ने लागतें कम करने और वस्तुओं की किस्म सुधारने का प्रयत्न

नहीं किया है। उनके द्वारा तकनीकी विकास पर ध्यान नहीं दिया गया है और विलासिता की वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाया है। उपभोक्ताओं का शोषण किया गया है। विदेशी बाजारों की प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए उनके द्वारा साधनों को निर्यात वस्तुओं के उत्पादन में नहीं लगाया है अपितु आयात-प्रतिस्थापक वस्तुओं के उत्पादन में लगाया है।

आयात-प्रतिस्थापन को प्रभावी बनाने के लिए विवेक से काम लेना चाहिये। संरक्षण भी सभी उद्योगों को नहीं देना चाहियें। संरक्षण भी सीमित समय के लिए ही देना चाहिये और उन उद्योगों को देना चाहिये जो अपने पैरों पर खड़े हो सकते है।

24.13 शब्दावली

संरक्षण (protection) : सरकार की नीति जिसके अन्तर्गत विदेशी प्रतिस्पर्धा से गृह-उद्योगों की रक्षा के लिए आयात व्यापार पर प्रतिबंध लगाये जाते है।

आर्थिक विकास (Economic Developement) : ऐसी प्रक्रिया जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थ-व्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।

उपरिपरिव्यय (Overheads cost) : परिवहन, संचार, शक्ति बीमा बैंकिग आदि परव्यय।

श्रम प्रधान तकनीक (Labour Intensive Tenchnique) : श्रम की अधिक मात्रा और पूँजी की कम मात्रा का प्रयोग होता है।

पूँजी प्रधान तकनीक (Capital Intensive Tenchnique) : पूँजी का अधिक और श्रम का कम उपयोग होता है।

स्वतंत्र व्यापार (Free tread) : विभिन्न देशों के मध्य वस्तुओ और सेवाओं का स्वतंत्र आदान प्रदान।

आयात कोटा (Import Qoutas) : सरकार द्वारा विभिन्न वस्तुओ के अधिकतम कोटे निश्चित करना और कोटों से अधिक मात्रा में आयात न करने देना।

24.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ए.एन.अग्रवाल, भारतीय अर्थ व्यवस्था: प्रकृति और समस्याएं, वाइली ईस्टर्न लिमिटेड नई दिल्ली।

रूद्र दत्त और सुन्दरम, भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चंद, एण्ड नई दिल्ली।

एल. एम. राय, भारतीय अर्थ व्यवस्था, नव- विकास प्रकाशन,पटना।

श्रीधर पाण्डेय, भारतीय अर्थ व्यवस्था प्रकृति और समस्याएं, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

एल एम. राय, भारत का आर्थिक समस्याएं, नव-विकास प्रकाशन,पटना

कृष्ण सहाय सक्सेना और के एल. गुप्ता, भारत का आर्थिक विकास, साहित्य सदन, आगरा।

A.N. Agarwal, Indian Economy, Wiley Eastern Ltd. New Delhi
I.C. Dhingra, The Indian Economy, Sultan Chand & Sons, New Delhi.
S.K. Mishra and V.K. Puri, Indian Economy, Himalay Publish-ing House, Bombay.
Rudra Dutt and Sundhram, Indian Economy, S. Chand & Sons, New Delhi.

24.15 अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. निर्यात प्रोत्साहन के अन्तर्गत सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुओ के निर्यात बढ़ानेके अनेक प्रकार के प्रोत्साहन दिये जाते है। जैसे- निर्यात प्रधान उद्योगो को निर्यात कर से छूट दी जाती है, निर्यात की वस्तुओं का उत्पादन कर मुक्त कर दिया जाना आदि।
2. निर्यात सम्वर्द्धन की आवश्यकता व्यापार सन्तुलन की प्रतिकूलता थे कम करने, विकास योजनाओं की सफलता, नये उत्पादकों के लिए बाजार और अर्थ-व्यवस्था को स्वावलम्बी बनाने के लिए है।
3. निर्यात सम्वर्द्धन के मार्ग मे भारतीय वस्तुओं की ज्यादा कीमतें, उनका घटिया स्तर, विदेशी वस्तुओं से प्रतियोगिता, निर्यातकों को नमूने के अनुसार माल न भेजने की नीति और विदेशी सरकारों द्वारा भारतीय वस्तुओं पर ऊँचे कर जैसी अनेक बाधाएं हैं।

बोध प्रश्न 2

1. भारतीय सरकार ने समय-समय पर निर्यात सम्वर्द्धन के लिए अनेक प्रयास दिये है जो कि विस्तृत रूप से चार भागों में विभाजित किये जा सकते है :-
   (1) संस्थागत (2) संरचनात्मक (3) राजकोषीय (4) अन्य।
2. भारतीय निर्यात व्यापार को बढ़ाने के लिए सुझाव उत्पादन लागत में कमी, निर्यात वस्तुओं की किस्म में सुधार, निर्यातकों को रचनात्मक प्रेरणाएं, वित्तीय सुविधायें और विपणन अनुसंधान।

बोध प्रश्न 3

1. आयात-प्रतिस्थापन का अर्थ है' कि आयात की जाने वाली वस्तु का उत्पादन देश में ही किया जाये जिससे कि उसका आयात न करना पड़े।
2. आयात प्रतिस्थापन की प्रगति सन्तोष जनक है। अनेक वस्तुओं का आयात भारत अब नहीं करता है और अनेक का आयात कम कर दिया है।
3. उद्योगों को संरक्षण सोच-समझकर देना चाहिये, संरक्षण की अवधि सीमित रखना चाहिये, उन्हीं उद्योगों को संरक्षण देना चाहिये जो कि आगे चलकर अपने आप खड़े रह सकते है और संरक्षण के कारण प्रतियोगिता भावना समाप्त नही होना चाहिये।

परिशिष्ट 1 (इकाई 24)

जुलाई 1991 से निर्यात बढ़ाने के लिए किए गए उपाय

1. रुपए का अवमूल्यन - जुलाई 1991 में सरकार ने दो बार रुपए का लगभग 18% अवमूल्यन किया जिससे निर्यात बढ़ाए जा सकें।

2. एक्जिम स्क्रिप (Exim Scrip) नीति का उपयोग - सरकार ने 1991 में निर्यात वस्तुओं पर 30% एक्जिम स्क्रिप नीति लागू करके निर्यात बढ़ाने का प्रयास किया। इसके अनुसार निर्यातक अपनी कुल निर्यात आमदनी का 30% खुले बाजार में प्रीमियम पर बेच सकते थे अथवा सीमित इजाजत की आयात सूची के अनुसार स्वंय आयात कर सकते थे।

3. रुपए की आशिक परिवर्तनीय - 1992-93 में रुपए को निर्यात बढ़ाने के उद्देश्य से आंशिक रूप से परिवर्तनीय कर दिया। इसके अन्तर्गत दोहरी विनिमय दर प्रणाली को अपनाया गया।

इन उपायों के फलस्वरूप 1993-94 में निर्यातों में 20% की वृद्धि हुई (डालर में)1994-95 में यह लगभग 18.4% रही।

नई निर्यात नीति (1992-97)

31 मार्च, 1992 को आठवीं पंचवर्षीय योजना के अनुरूप यह नीति घोषित की गई। इसकी अवधि पाँच वर्ष रखी गई जबकि इससे पूर्व त्रिवर्षीय आयात-निर्यात नीति घोषित की जाती थी। इस नीति की प्रमुख बातें निम्न है -

1. इस नीति में विदेशी व्यापार को काफी मात्रा में मुक्त कर दिया गया है। लेकिन आयातों व निर्यातों के लिए एक नकारात्मक सूची रखी गई।

2. आयातों की नकारात्मक सूची को दो भागों में बाँटा गया -

(i) निषेधात्मक मदें: टाइलो, पशु रैनिट व अवनिर्मित, हाथी दांत इन तीन मदों के आयात की पूर्ण मनाही थी।

(ii) प्रतिबंधात्मक मदें: ये मदें लाइसेन्स सें ही आयात की जा सकती थी। इसमें ग्यारह उपभोक्ता वस्तुए रखी गई। तथा 70 अन्य प्रकार की वस्तुएं रखी गई है।

3. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित मदों (Canalised list) की श्रेणी 8 मदें रखी गई!

4. निर्यातों की नकारात्मक सूची को भी दो भागों में बाँटा गया।

(i) निषेधात्मक सूची - इसमें 7 मदें है जिनके निर्यात की सख्त मनाही।

(ii) (a) 51 मदे ऐसी थी जिनका निर्यात लाइसेन्स से ही संभव हैं।

(iii) (b) 11 मदें ऐसी थी जिनके निर्यात पर मात्रात्मक सीमा लगा दी।

5. 10 मदें जैसे अभ्रक वेस्ट, प्याज, घी, खनिज अयस्क आदि का सार्वजनिक एजेन्सियों की मार्फत किया जाएगा।

6. 46 मदें ऐसी थी जिनका निर्यात कुछ शर्तें पूरी करने के बाद बिना लाइसेन्स के ही निर्यात किया जा सकेगा।

7. अग्रिम लाइसेन्सों के अर्न्तगत शुल्क मुक्त आयातों का क्षेत्र बढ़ा दिया।

8. निर्यात घरानों, ट्रेडिंग व स्टार घरानों को अग्रिम लाइसेन्स स्कीम के तहत स्व सर्टिफिकेशन की इजाजत दी गई।

9. पूँजीगत वस्तुओं के आयात को उदार बनाया गया।

10. 100% निर्यातोन्मुख इकाइयों व मुक्त व्यापार तथा प्रोसेसिंग क्षेत्र में इकाइयों को अधिक सुविधाएं प्रदान की गई।

एक वर्ष के अनुभव के पश्चात् 31 मार्च 1993 को इस (1992-97)आयात निर्यात नीति में व्यापक संशोधन किए गए। जिनका उद्देश्य विदेशी व्यापार नीति को उदार बनाना व निर्यातों में तेजी से वृद्धि करना था।

30 मार्च 1994 को वाणिज्य मंत्री श्री.प्रणव मुखर्जी ने एक्जिम नीति में उदारीकरण की घोषणा की।

परिशिष्ट 2 (इकाई 24)

निर्यात सम्वर्द्धन और आयात प्रतिस्थापन

नई निर्यात-आयात नीति (1997-2002)

1997-2002 की अवधि के लिए वाणिज्य राज्य मंत्री श्री बी. बी. रमैया ने 31 मार्च 1997 को नई आयात-निर्यात नीति की घोषणा की। इसकी अवधि नवी पंचवर्षीय योजना के अनुरूप रखी गई है। इसके निम्न उदेश्य है।

1. देश की अर्थव्यवस्था को विश्वोन्मुख व गतिमान बनाना।

2. विकास की दर में स्थिरता रखने के लिए कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुएं कल-पुर्जे व पूंजीगत मात्र उपलब्ध कराना ताकि उत्पादन वृद्धि सुचारू रहे।

3. भारतीय कृषि, उद्योग तथा सेवा क्षेत्र की तकनीकी क्षमता को बढ़ाना।

4. उपभोक्ता वर्ग को उचित कीमत पर उत्तम किस्म की वस्तुएं सुलभ कराना।

इस नीति की मुख्य बातें इस प्रकार है -

1. मात्रा आधारित लाइसेन्स स्कीम जारी रखी गई है। यह निर्यातकों को प्रोत्साहन देने के लिए है। लेकिन मूल्य आधारित अग्रिम लाइसेन्स स्कीम व पास बुक स्कीम समाप्त कर उसके स्थान पर शुल्क अधिकार पास बुक स्कीम लागू की गई है। इससे निर्यातकों को शुल्क मुक्त इनपुट आयात करने का अवसर मिलेगा।

2. निर्यात प्रोत्साहन-पूँजीगत माल स्कीम के अन्तर्गत पूंजीगत मात्रा के आयात पर शुल्क की दर 15% से घटाकर 10% की गई। शून्य शुल्क स्कीम के अन्तंगत कृषिगत व सहायक पदार्थो के लिए आयात राशि की सीमा 20 करोड़ रुपए से घटाकर 5 करोड़ रु. कर दी गई।

3. प्रतिबन्धित सूची में 542 मदों को स्पेशल आयात लाइसेन्स (SIL) व खुले सामान्य लाइसेन्स (OGL) की सूची में हस्तान्तरित कर दिया।

4. कृषिगत क्षेत्र को बढ़ावा देनों के लिए निर्यात घराने व व्यापार घराने की स्टेटस पाने के लिए कृषिगत निर्यातों के लिए दोहरे वजन (Double Weighting) की व्यवस्था की गई। कृषिगत व सहायक क्षेत्र अपने उत्पादन का 50 प्रतिशत मात्रा घरेलू प्रशुल्क क्षेत्र में बेच सकेंगे।

5. पावर क्षेत्र के अलावा तेल व गैस क्षेत्र को भी निर्यात लाभ (Deemed export profit) दिया जाएगा।

6. स्वर्ण-आभूषणों से निर्यात को बढ़ावा देने के लिए MMTC, STC, SBI व HHEC आदि एजेन्सियों के अतिरिक्त अन्य एजेन्सियों कों भी इनका स्टॉक रखने की अनुमति दी जाएगी।

7. लघु पैमाने के उद्योग के माल के निर्यात पर स्पेशल आयात लाइसेन्स की मात्रा एक प्रतिशत से बढ़ाकर दो प्रतिशत कर दी गई है।

8. जिन निर्यात का के पास ISO 9000 अथवा IS/ISO 9000 का सर्टिफिकेट होगा उनके लिए स्पेशल आयात लाइसेन्स की सुविधा 204 से बढ़ाकर 5% कर दी गई है। सॉफ्टवेयर कम्पनियों कों भी निर्यात के लिए विशेष सुविधाएं दी जाएंगी।

9. निर्यात घराने, व्यापारिक घराने, स्टार व्यापारिक घराने व सुपर स्टार व्यापारिक घराने की श्रेणी प्राप्त करने के लिए पिछले तीन वर्षों के औसत निर्यात की राशि क्रमशः 20 करोड़ 100 करोड़, 500 करोड़ तथा 1500 करोड़ रुपए की गई पर 1997 में इन्हें घटाकर क्रमशः 12.5 करोड़, 62.5 करोड़, 312.5 करोड़ व 937.5 करोड़ रुपए कर दिया गया।

10. राशिपतन (Dumping) के खिलाफ संस्थागत व्यवस्था व सुरक्षा के उपाय सुदृढ़ किए गए ताकि देशकेउद्योगों को क्षति ना पहुँचे।

इकाई 25

भारतीय कर व्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 कर की अवधारणा

25.3 हमारी अर्थव्यवस्था में कराधान की भूमिका

25.4 भारतवर्ष में कराधान के उद्देश्य

25.5 केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों के बीच करों का बंटवारा

25.6 महत्वपूर्ण केन्द्रीय कर

25.7 राज्य सरकारों के महत्वपूर्ण कर

25.8 प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष कर

25.9 भारतीय कर व्यवस्था के महत्वपूर्ण लक्षण

25.10 कर सुधार की आवश्यकता

25.11 सारांश

25.12 शब्दावली

25.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

25.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य यह है कि आप:

(1) कर की मूल अवधारणाओं एवम् उससे सम्बन्धित शब्दों से हो जाएं।

(2) कर प्रणाली के उद्देश्यों की जानकारी हो सकें,

(3) हमारी अर्थव्यवस्था में कराधान की बढ़ती भूमिका का मूल्यांकन कर सकें।

(4) केन्द्र सरकार एवम् राज्य सरकारोंकेबीच कर संसाधनों के बंटवारे एवम् इससे सम्बन्धित लक्षणों कों पूर्णत: समझ सकें।

(5) केन्द्र एवम् राज्य सरकारों के महत्वपूर्ण करों के आधारभूत वर्णन से परिचित हो जाएं।

(6) हमारी कर प्रणाली का प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष घटकों में विभाजन उसके आशयों का समझ सकें।

(7) हमारी सम्पूर्ण कर प्रणाली के प्रमुख लक्षणों की जानकारी कर सकें किन दिशाओं में सुधार करना है, बताया जा सके।

25.1 प्रस्तावना

इस इकाई में, हमारी कर प्रणाली से सम्बन्धित कुछ पहलुओं का अध्ययन करेंगे। कुछ आधार भूत तथ्यों के परिचय से हमारी अर्थव्यवस्था में करों की भूमिका तथा कराधान के उद्देश्य को आप समझ सकेंगे। केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच कर साधनों का बंटवारा तथा इस बंटवारे के आधारभूत लक्षण का है? इस इकाई का महत्वपूर्ण करों के वर्णन के बाद प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष करों की भूमिका का अध्ययन किया जायेगा। सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की कर प्रणाली के प्रमुख लक्षणों की भी जानकारी दी जायेंगी। इनमें सुधार की आवश्यकता भी बताई जायेगी तथा उन तरीकों का भी वर्णन किया जायेंगा, जो कि सुधार के लिए काम में लिए जा सकते है।

25.2 कर की अवधारणा

प्रत्येक सरकार को अपनी क्रियाओं के वित्तीयन के लिए साधनों की आवश्यकता होती है एवम् कर इस प्रकार के साधनों का एक महत्वपूर्ण अंग है। सरकार के अन्य वित्तीय साधनों में जिनको सम्मिलित किया जाता है उनमें महत्वपूर्ण है आधार, मुद्रा को जारी करना, सार्वजनिक उपक्रमों के लाभ एवम् लाभांश तथा अन्य विनियोग, ब्याज से प्राप्तियां, शुल्क एवम् जुर्माना आदि। कुल आय में करो का हिस्सा पूर्व निर्धारित नहीं होता है। सार्वजनिक आय में कर तथा गैर कर घटकों का अनुकूलतम सन्तुलन प्रत्येक देश में अलग-अलग होता है और एक देश में अलग-अलग समय पर अलग-अलग होता है। यह उस देश की परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

कर एक आवश्यक भुगतान है जो करदाता को सरकार को चुकाना पड़ता है एवम् जिसमें लाभ की भावना का अभाव रहता है। अत : कहा. जा सकता है कि करदाता सरकार से किसी लाभ या सेवा का फायदा इसलिए नही ले सकता है, क्योंकि उसने कर चुकाया है। राज्य सेवाओं का लाभ सिर्फ करदाताओं को ही सुरक्षित नहीं है। इसके अलावा एक व्यक्ति द्वारा चुकाए जाने वाले कर की मात्रा से उसके लाभ की मात्रा का भी कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। कर कोई कीमत नहीं है जो कि सरकारी वस्तु या सेवा के बदले में मिलें। सरकारी खर्च का लाभ किसी को भी वैधानिक अस्तित्व पर लगाया जा सकता है जैसे - व्यक्ति विशेष, एक परिवार, व्यक्तियों के समूह, एक फर्म, समाज तथा संस्थाएं आदि। दंड भी एक अनिवार्य भुगतान है लेकिन इसका उद्देश्य इस प्रकार से आय प्राप्त करना नहीं होता है। इसी प्रकार कर तथा कीमत में भी भेद किया जाता हैं। कीमत सार्वजनिक अधिकारी किसी भी वस्तु या सेवा के बदले में वसूल करते है। लेकिन अधिकारी यदि अधिक कीमत वसूल करते है तो इस अधिक कीमत में कर तत्व भले ही हो लेकिन अधिकारिक लेखों में यह इस प्रकार दर्ज नहीं की जाएगी।

जिन उद्देश्यों के अन्तर्गत कर लगाया गया है, उनका वैधानिक विवरण ही कर का आधार है। उदाहरण के तौर पर करदाता को आयकर, अपनी आय पर (वास्तविक या नाम मात्र) जो कुछ नियमों के अन्तर्गत परिभाषित की जाती है, देना होता है। उत्पादन शुल्क वस्तुओं के उत्पादन, पैकिंग या निर्माण पर लगाया जाता है। एक व्यक्ति पर एक से अधिक कर लगाए जा सकते है। सरकार द्वारा लगाए गए सम्पूर्ण करो को कर प्रणाली कहते है। प्रत्येक कर का स्वयं

का आधार एवम् वैधानिक अस्तित्व होता है जिसके आधार पर यह कर लगाया जाता है। प्रत्येक कर से सम्बन्धित दरें जो कर के आधार के बदलने पर बदलती है और जिसके आधार पर करदाता पर कर का दायित्व निर्धारित किया जाता है, दर सूची कहलाती है। लगाए जाने वाले करों के प्रकार, एवम् कुल कर आय में उनके सापेक्षिक योगदान के वर्णन को कर ढांचा कहते है। इसी इकाई में बाद में आपको कुछ अतिरिक्त प्रत्ययों एवम् शब्दों सें परिचित कराया जायेगा।

25.3 हमारी अर्थव्यवस्था में करों की भूमिका

यह सर्वमान्य तथ्य है कि प्रत्येक देश में समय के साथ सरकारी कार्यों में वृद्धि की अन्तर्निहित प्रवृति पाई जाती है। नई क्रियाएं प्रारम्भ की जाती है एवम् मौजूदा क्रियाओं का विस्तार किया जाता है। तदनुसार सरकारी खर्च में भी वृद्धि होती है जिसके कारण अतिरिक्त साधनों कीआवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार समय के साथ साथ कर आय में भी वृद्धि की अन्तर्निहित प्रवृति पायी जाती है। देखा गया है कि यह वृद्धि निरपेक्ष रूप में भी होती है और कुल, घरेलू उत्पादन अनुपात के रूप में भी। सरकारी क्रियाओं तथा कर आय में वृद्धि के लिए कई कारण जिम्मेदार है। आधुनिक सरकार कल्याण प्रेरित सरकार है। यह नागरिकों के जीवन में सुधार लाना चाहती है। इस कारण स्वास्थ्य, शिक्षा, खाद्य, जीवन एवम् धनकी सुरक्षा, सहन आदि की व्यवस्था करने की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया जाता है। वह समाज उसकी आर्थिक एवम् सामाजिक संस्थाओं के पुन : निर्माण में रचनात्मक भूमिका निभाना चाहती है। इसे शहरी करण एवम् सुरक्षा की बढ़ती समस्याओं का भी समाधान करना पड़ता है। समाज एवम् अर्थव्यवस्था की बढ़ती हुई जटिलताएं यह आवश्यक कर देती है कि सरकार द्वारा प्रदान की गई सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार हो। इस कार्य के लिए विशेषज्ञों की सेवाएं ली जानी चाहिए और यातायात एवम् सन्देश वाहन के आधुनिकतम साधन तथा सुधरे हुए उपकरण एवम् मशीनरी का प्रयोग किया जाना चाहिए। बढ़ती कीमतें भी सरकारी खर्च तथा कर राजस्व में वृद्धि करती है। आपको यह मालूम होना चाहिए कि आधुनिक सरकार साधनोंकेबंटवारे और बाजार व्यवस्था के दोषों को दूर करने में भूमिका निभा रही है। करों का न्यायोचित प्रयोग इन उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकता है। वैयक्तिक करों का सही चुनाव, उनकी वैधानिक जानकारियां, दर सूची एवम् अन्य सम्बन्धित पहलू बाजार में मांग और पूर्ति की शक्तियों को चाही गई दिशा में प्रभावित कर सकते है। इसके कारण कई वस्तुओं एवम् सेवाओं का लागत-कीमत ढांचा प्रभावित होगा। आधुनिक सरकार किसी भी प्रकार अहस्तक्षेप की नीति को अपनाने वाली नहीं है। यह तो बताती है कि बजट के क्रियाशील होने से अर्थव्यवस्था की कार्यपद्धति प्रभावित होगी। सरकार द्वारा किया गया वित्तीय प्रवाह का आकार ही बताता है कि यह अर्थव्यवस्था का बड़ा एवम् महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस प्रकार सरकार इस निर्णय पर आती है कि सम्पूर्ण कर व्यवस्था, दर सूची, छूटें आदि का जान बूझकर प्रयोग चुने हुए आर्थिक एवम् सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए किया जाना चाहिए।

तालिका 25.1

कुल घरेलू उत्पादन में केन्द्र एवम् राज्य सरकारों का कर राजस्व

अवधि वार्षिक औसत	कर राजस्व (करोड़ रुपयों) में	कुल घरेलू उत्पादन साधन लागत पर चालू कीमतों पर (करोड़ रुपयों में)	कालम 3 कालम 2 के प्रतिशत के रूप में
1	2	3	4
प्रथम योजना	585	9,413	6.21
द्वितीय योजना	916.	11,563	7.92
तृतीय योजना	2,239	16,723	13.39
पंचम योजना	11,441	70,389	16.25
छठी योजना	27,586	1,62,986	16.93
1982-83	27,242	1,58,217	17.22
1983-84	31,525	1,84,871	17.05
1984-85	35,813	2,06,357	17.36
1985-86	43,267	2,32,634	18.60
1986-87	49,540	2,58,875	19,14
1987-88	56,949	2,91,501	19.54
1990-91	87564	5,32,030	16.50

भारतवर्ष में भी, समय के साथ-साथ कर राजस्व में निरपेक्ष रूप में तथा कुल घरेलू उत्पादन के अनुपात के रूप में वृद्धि हुई है आर्थिक वृद्धि को बढ़ाने तथा कल्याणकारी समाज की रचना करने के प्रयास के कारण यह प्रवृति दिखाई दे रही है। तालिका 25.1 में चुने हुए समय में कुल घरेलू उत्पादन में केन्द्र एवम् राज्य सरकारों (स्थानीय निकायों का नहीं) का कर राजस्व दिखाया गया है। आपने देखा कि पहली योजना काल में कर राजस्व औसत रूप से 585 करोड़ रूपये प्रति वर्ष है। बाद की योजनाओं में यह लगातार बढ़ाया गया है एवम् छठी योजना में औसत रूप से 27, 586 करोड़ रुपये प्रति वर्ष रहा है। 80 के काल में वृद्धि और भी अधिक तीव्र रही है और 198 7-88 में यह लगभग 57,000 करोड़ रुपये तक पहुँच गयी है। इसी प्रकार कुल घरेलू उत्पादन के अनुपात के रूप में यह पहली योजना में सिर्फ 6.21 प्रतिशत था, दूसरी योजना में 7.92 प्रतिशत था। तीसरी योजना में इसमें तीव्र वृद्धि हुई है और यह 13.39 प्रतिशत हो गया तथा छठी योजना में यह और बढ़कर 16.93 प्रतिशत हो गया। 80 के काल में यह अनुपात बढ़ता जा रहा है और 1987-88 में 19.54 प्रतिशत तक पहुँच गया है। दूसरे शब्दों में कुल घरेलू उत्पादन का 1/5 वाँ हिस्सा केन्द्र एवम् राज्य सरकारों को कर राजस्व से मिलता है।

25.4 भारतवर्ष में कराधान के उद्देश्य

स्वतंत्रता प्राप्ति सें ही भारतीय कर व्यवस्था आर्थिक एवम् सामाजिक प्रगति जैसे विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक प्रभावी नीति उपकरण के रूप में प्रयोग में आ रही है।

आपको याद होगा कि एक समय वह था जबकि सरकार कराधान को सिर्फ आय का साधन ही मानती थी लेकिन आजकल यह सरकार के हाथ में महत्वपूर्ण एवम् प्रभावी उपकरण है। इसे स्वेच्छा से काम करने के लिए यदि छोड़ दे तो यह निम्न के सन्दर्भ में अनुकूलतम परिणाम नहीं देगा

1. उत्पादन, आय एवम् रोजगार का निर्माण,
2. आय एवं धन के वितरण की असमानताओं को कम करना,
3. प्रादेशिक आर्थिक असमानताओं को कम करना,
4. सन्तुलित एवम् तीव्र आर्थिक वृद्धि।

हमारें देश के सामने ये सब तथा अन्य समस्याएं है। अन्य समस्याओं में लगातार व्यापार का घाटा एवम् बगैर विदेशी उधार के भुगतान सन्तुलन की समस्या के समाधान की अयोग्यता आदि है। हमें हमारी अर्थव्यवस्था को अन्य देशों में होने वाले बड़े एवम् आकस्मिक परिवर्तनों से बचाना भी है। अत : कह सकते है कि यदि अर्थव्यवस्था को स्वेच्छा से काम करने के लिए छोड़ दे तो हमारी सहयोगी व्यापारिक अर्थव्यवस्थाओं में कीमत, और मांग तथा पूर्ति में परिवर्तन के कारण हमारी अर्थव्यवस्था भी प्रभावित हो सकती है। इन परिवर्तनों के कारण हमारे आयातों की लागतें तथा उपलब्धता पर भी प्रभाव पड़ सकता है। ये हमारे निर्यात एवम् विदेशी मुद्रा. उपार्जन को भी प्रभावित कर सकते है। अत : हमारी अर्थव्यवस्था के कार्य के तरीकों में सुधार के लिए कराधान की एक न्यायोचित नीति के प्रयोग की आवश्यकता है। आपको याद होगा कि हमने पिछले कई वर्षों से हमारी कर व्यवस्था में सुधार के लिए लगातार प्रयत्न किए है। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि अधिकारी अभी भी इसको आदर्श पद्धति बनाने में सफल नहीं हो पाए है। इसमें अभी भी कई दोष है।

बोध प्रश्न

1. कर की परिभाषा दीजिए। कर तथा जुर्माना में भेद कीजिए।
2. कर आधार किसे कहते है?
3. उन कारणों का वर्णन कीजिए जिनके कारण सरकारी खर्च तथा कर राजस्व में वृद्धि हुई है।
4. भारत वर्ष में कराधान के मुख्य उद्देश्यों का संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

25.5 केन्द्र एवम् राज्यों के बीच करों का बँटवारा

हमारा संविधान इस बात को स्वीकार करता है कि केन्द्र से सभी राजकीय कर्तव्य कुशलता पूर्वक सम्पन्न करने की आशा नहीं की जा सकती है। जिन कार्यों का प्रकृति सम्पूर्ण भारत है, उन कार्यो को यह ज्यादा सफलतापूर्वक सम्मन कर सकता है। इसी प्रकार जिन कार्यों की विषय सूची एक क्षेत्र सें दूसरे क्षेत्र में बदलती है, उन कार्यो को राज्य सरकारों के लिए छोड दिया जाना चाहिए। उदाहरण के रूप में विदेशी आक्रमणों से देश की रक्षा राज्य की तुलना मे केन्द्र ज्यादा सफलतापूर्वक कर सकता है। अत भारत जैसे बड़े देश में बहुस्तरीय सरकार होनी चाहिए। वर्तमान में, हमारा संविधान केन्द्र एवम् राज्य सरकारों को मान्यता प्रदान है। तीसरे स्तर पर स्थानीय सरकारें राज्यों द्वारा अपने प्रादेशिक क्षेत्राधिकार में बनाई जाती है। एक स्थानीय निकाय बनाया जाता है तो इसका क्षेत्राधिकार परिभाषित किया जाता है। जो सरकार

इस स्थानीय निकाय का निर्माण करती है, वह इसको अपने कुछ साधन एवम् कर्तव्य हस्तान्तरित करती है। इसी कारण से एक ही राज्य में स्थानीय निकायों के कर्तव्य एवम् साधन एक दूसरे से अधिकांश मात्र में भिन्न होते है। संघीय क्षेत्रों में स्थानीय निकायों का सृजन केन्द्र द्वारा किया जाता है और केन्द्र ही इनको कर्तव्य तथा वित्तीय साधन सौंपता है। यह इसीलिए किया जाता क्योंकि संघीय क्षेत्रों के कर्तव्य एवम् वित्तीय साधन केन्द्र में ही निहत होते है।

सरकारों के स्तर के अनुसार संविधान वित्तीय साधनों का बंटवारा करता है। इस आधार पर हमारी कर व्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण तत्व है जिन्हें आपको ध्यान में रखना होगा।

आवंटन की कसौटी

केन्द्र एवम् राज्यों के बीच कर साधनों के आवंटन को दिशा निर्देश के विचारों में मुख्य रूप से मितव्ययी, कुशलता एवम् एकरूपता को ध्यान में रखा जाता है। मितव्ययता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध कर इक्कठे करने की लागतों से है। यह बताती है कि कर की रकम के अनुपात के रूप में कर उगाने की लागत कम से कम होनी चाहिए। कुशलता की कसौटी बताती है कि लगाया गया कर सरकार की प्रशासकीय मशीनरी की क्षमता के अन्दर होना चाहिए एवम् सम्बन्धित कर कानूनों को प्रभावपूर्ण तरीके से लागू कर सके। इसी प्रकार एकरूपता की कसौटी के अर्न्तगत यह आशा की जाती है कि जहाँ तक सम्भव हो पूरे देश या राज्य में कर की दरें एक समान हो। अत : जिन करों का फैलाव एवम् दर सूची पूरे भारतवर्ष के आधार पर है।(जैसे निगम कर एवम् कृषि आय पर कर) वे हमारे संविधान के अर्न्तगत केन्द्र को सौंपे गए है। इसी प्रकार कुछ अन्य क्रियाएं भी केन्द्र के अधीन है जैसे अन्तर्राज्यीय व्यापार जिसमें एक से अधिक राज्य सम्मिलित है। इसके विपरीत कुछ कर ऐसे है जिनमें स्थानीय दशाओं के आधार पर दर एवम् विस्तार में अन्तर है, उनको हमारे संविधान के अन्तर्गत राज्यों को सौंपा गया है।

वास्तविक आवंटन

कर साधनों का राज्यों एवम् केन्द्र के बीच वास्तविक आवंटन भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची आता है। इस अनुसूची में केन्द्र एवम् राज्यों से सम्बन्धित कार्यों एवम् वित्तीय साधन। को बताया गया है और इसकी तीन अनुसूचियाँ है। सूची प्रथम (संघीय सूची) में केन्द्र के कर साधनों सहित 97 मदें है। सूची द्वितीय (सत्य सूची) में राज्य सरकारों के कर साधनों सहित 65 मदें है। सूची तृतीय (समवर्ती सूची) में उन कार्यों का वर्णन है जो राज्यों एवम् केन्द्र सरकार दोनों द्वारा किए जा सकते है। लेकिन आपको याद रखना होगा कि केन्द्र एवम् राज्यों के बीच कर लगाने की समवर्ती शक्ति नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि एक ही आधार पर राज्य एवम् केन्द्र दोनों कर नहीं लगा सकते है। इस बात 'को समझने के लिए हम कुछ उदाहरण लेते है। राज्यों को वस्तुओं एवम् सेवाओं पर बिक्री क लगाने का अधिकार दिया हुआ है लेकिन वे समाचार पत्र पर कर या अन्तर्राज्य बिक्री पर कर नहीं लगा सकते है। इसी प्रकार राज्य विज्ञापनों पर कर लगा सकते है लेकिन समाचार पत्रों में आने वाले विज्ञापनों पर नहीं। सड़कों एवम् अन्तर्देशीय जल मार्गों द्वारा ले जाये जाने वाले यात्रियों एवम् वस्तुओं पर राज्य सरकारें कर लगा सकती है लेकिन रेलवे, समुद्र हवाई यातायात पर कर लगाने का अधिकार केन्द्र के पास है। केन्द्र आय पर कर लगा सकता है लेकिन कृषि जाय पर नहीं। इसी प्रकार मानव के उपभोग की मदिरा, अफीम, भारतीय भांग एवम् अन्य स्वापक औषध तथा पीनक

लाने वाली वस्तुओं पर आवकारी कर लगाने का अधिकार राज्यों को है लेकिन यही वस्तुएं यदि दवाई या श्रृंगार सामग्री बनाने के लिए प्रयोग में ली जाती है तो यह अधिकार राज्यों को नहीं है।

कर लगाना, संग्रहण एवम् विनियोजन

मितव्ययता, कुशलता एवम् एकरूपता की कसौटी से यदि हम देखें तो मालूम होगा कि हमारा संविधान कर लगाने, संग्रहण एवम् विनियोजन मैं अन्तर करता है। इस आधार पर एक प्राधिकार द्वारा कर लगाया जा सकता है लेकिन संग्रहण दूसरे प्राधिकार द्वारा किया जा सकता है, या एक प्राधिकार कर संग्रहण करना है लेकिन उस आयकोदूसरों को सौंपा जा सकता है। इन पहलुओं (कर लगाना, संग्रहण एवम् विनियोजन) के आधार: पर सभी करों को जो भारतवर्ष में. लगाए जा सकते है हमारा संविधान निम्न पांच श्रेणियों में बाटता है -

1. **वह कर जो केन्द्र सरकार लगाए एवम् संग्रहित किए जाते है तथा केन्द्र ही उन्हें रख लेता है-** इस श्रेणी में वे सभी कर आते है जो केन्द्र सरकार द्वारा लगाए जाते है। लेकिन इसमें निम्न कर सम्मिलित नहीं है।

(अ) गैर कृषि आय पर कर

(ब) संघीय उत्पादन शुल्क

(स) अनुच्छेद 269 के अर्न्तगत लगाए गए कर यदि कोई हो तो (इसके बारे में विस्तार से आप बाद में पढ़ोगे)।

(द) अनुच्छेद 252के अन्तर्गत लगाए गए कर (इसके बारे में विस्तृत जानकारी बाद मैं देंगे)। और

(य) अनुच्छेद 268 के अर्न्तगत लगाए कर (इसके बारे में भी विस्तृत जानकारी बाद में देंगे)।

केन्द्र राज्य के साथ जिन करों का बंटवारा नहीं करता है उनमें मुख्य है सीमा शुल्क, धनकर, उपहार कर, निगम कर, व्यय कर आदि।

2. **वे कर जो केन्द्र सरकार द्वारा लगाए एवम् संग्रहित किए जाते है लेकिन जिनका बंटवारा राज्यों में कर दिया जाता है -** इस श्रेणी में दो कर आते हैं

(अ) गैर कृषि आय पर कर - इस कर से प्राप्त शुद्ध आय का बंटवारा राज्यों में करना होता है। कर से प्राप्त आय में से राज्योंकोमिलने वाला अनुपात वित्त आयोग की सिफ़ारिशों के आधार पर किया जाता है। दिल आयोग की नियुक्ति निर्धारित समय पर इन सिफ़ारिशों के लिए की जाती है। केन्द्र एवम् राज्यों के बीच बांटी जाने वाली (विभाज्य कोष) कर से प्राप्त आय के निर्धारण के लिए निम्न कटौतियां की जाती है जैसे-

(1) आय कर पर लगने वाला अधिभार एवम् उपकर,

(2) संघीय क्षेत्रों को मिलने वाली कर प्राप्तियां,

(3) कर संग्रहण की लागत, और

(4) संघीय उपलब्धियों को मिलने वाली कर प्राप्तियां (भारत वर्ष समेकित कोष में से किए जानें वाले भुगतान को संघीय उपलब्धियां कहते है। भारतवर्ष का समेकित कोष उन सभी शेषों से मिलकर बनता है जो भारत सरकार के है) इस सन्दर्भ में आपको याद रखना होगा कि निगम क्षेत्र द्वारा चुकाया गया आय (जिसको निगम कर कहते है) राज्यों में नहीं बांटा जा सकता है। आपको यह भी याद रखना होंगा कि आप के विभाज्य कोष में से राज्यों को मिलने वाला हिस्सा उत्तरोत्तर विल आयोग ने बढ़ाया है और वर्तमान में यह 85 प्रतिशत है।

(ब) संघीय उत्पादन शुल्क - हमारा संविधान संघीय उत्पादन शुल्क की शुद्ध प्राप्तियों' को राज्यों के बीच बांटने की सहमति प्रदान करता है। संघीय उत्पादन शुल्क का ढांचा ऐसा कि वस्तु पर सबसे पहले मूल उत्पादन शुल्क लगाया जाता है। इस मूल उतादन शुल्क पर, अधिभार आदि के रूप मे अतिरिक्त उगाही की जाती है। हमारे संविधान यह अनुबन्ध भी करता कि केन्द्र राज्यों के बीच सिर्फ मूल उत्पादन शुल्क ही बाट सकता है न कि उपकर एवम् अधिभार रूप में प्राप्त आय। किस मूल उत्पादन शुल्क का बंटवारा होगा और कौन सा अनुपात राज्यों को जायेगा इसका निर्णय वित्त आयोग का सिफारिशोंकेआधार पर होता है। वर्तमान में सभी मूल शुल्क की शुद्ध आय का बंटवारा होता है। राज्यों को 45 प्रतिशत मिलता है एम केन्द्र को प्रतिशत।

3. **वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए एवम् संग्रहित किए जाते है, लेकिन सम्पूर्ण शुद्ध आय रहमतो को जाती है -** इसके अन्तर्गत दों प्रकार के कर है। उदाहरण के तौर पर अनुच्छेद 269 तथा 252के अर्न्तगत लगाए गए कर।

(अ) अनुच्छेद 269 के अर्न्तगत लगाए गए कर - इस अनुच्छेद में प्रविष्टियां है जिसमें कई कर है जिन्हे केन्द्र लगा एवम् संग्रहित कर सकता है लेकिन जिनकी शुद्ध प्राप्तियां राज्यों को सौंप दी जाती है। इस सूची में से केन्द्र ने दो कर लगाए है गैर-उप नगरीय रेल यात्री किराया कर और गैर कृषि सम्पत्ति पर सम्पदा शुल्क थे। वर्तमान में अनुच्छेद के अन्तर्गत कोई भी कर नहीं लगाया गया है लेकिन खेप कर लगाने का प्रस्ताव है

(ब) अनुच्छेद 252 के अर्न्तगत लगाए गए कर - भारतीय संविधान अनुच्छेद 252के अन्तर्गत राज्यों ने केन्द्र को चीनी, तम्बाकू निर्मित तम्बाकू सहित एवम् कपड़े पर बिक्री कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पादन शुल्क लगाने का अधिकार दे दिया है।याद होगा कि ये उत्पादन शुल्क जो केन्द्र इन वस्तुओं पर मूल उत्पादन शुल्क के रूप में लगा सकती है,के ऊपर उपकर या अधिभार है। आपको याद होगा कि राज्यों ने इन वस्तु पर बिक्री कर लगाने का अधिकार छोड़ दिया है।

4. **वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते है लेकिन राज्यों द्वारा संग्रहित किए जाते है एवम् रख लिए जाते है -** इन करों का वर्णन अनुच्छेद 268 में दिया गया है। इस प्रकार की व्यवस्था के लिए. यह तर्क दिया जाता है कि कुछ वस्तुओं पर पूरे देश में कर की दर एक समान होनी चाहिए। दवाईयां एवम् श्रृगार की वसुओं पर उत्पादन शुल्क, मोटर वाहन पर कर, रजिस्ट्रेशन एवम् स्टाम्प शुल्क आदि, इस प्रकार के करों के उदाहरणहै।

5. **वे कर जो राज्यों द्वारा लगाए जाते है, संग्रहित किए जाते है एवम् रख लिए जाते है-** इस श्रेंणी में कई कर आते है जैसे बिक्री कर, भू-राजस्व, विज्ञापनों पर कर मनोरंजन कर एवम् आबकारी कर आदि।

टिप्पणियां

1. केन्द्र एवं राज्यों के बीन कर साधनों के बंटवारे का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह है कि केन्द्र के पास सापेक्ष रूप से साधन अधिक है लेकिन कर्तव्य कम। इस बात को यूं भी कहा जा सकता है कि वित्तीय असन्तुलन केन्द्रकेपक्ष मैं है और राज्यों के विपक्ष मैं। इसका मुख्य कारण यह है कि केन्द्रकेपास अधिकांश कर ऐसे है जो बिल्कुल ही उत्पादन है। जबकि राज्यों के पास ऐसे उत्पादन कर नहीं है। (आप उत्प्लावन शब्द वा अर्श बाद में समझेंगे। अभी आप इसका अर्थ यह ले सकते है कि उत्प्लावन कर से प्राप्त आय की वृद्धि उनके आधार की वृद्धि की दर से बढ़ती जा रही है क्योंकि समाजकेआर्थिक एवम् सामाजिक कल्याण से सम्बन्धित अधिकांश राजकीय कर्तव्य इनको सौपे गए है। वित्तीय असन्तुलन केन्द्र के राक्ष में होने के कारण ही केन्द्र से राज्यों को कर का हिस्सा, सहायता एवम् ऋण के रूप में, साधनों के हस्तान्तरण का प्रावधान किया गया है।

2. समय के साथ-साथ हमारी अर्थव्यवस्था अधिक जटिल एवम् समन्वित होती जा रही है। इसके कारण कुछ कर जो वर्तमान मैं राज्यों के पास है, मितव्ययता, कुशलता एवम् एकरूपता की कसौटी पर केन्द्रीय सूची मैं सम्मिलन करने के लिए अधिक उपयुक्त है। इसके विपरीत सामाजिक एवम् आर्थिक जिम्मेदारियां राज्यों की खर्च की आवश्यकता तेजी से बढ़ती जा रही है। अत: केन्द्र एवं राज्यों के बचिए करों का पुन : अलस होता है तो वित्तीय असंतुलन और भी ज्यादा केन्द्र के पक्ष में हो जायेगा।

3. संघीय क्षेत्र की स्थिति में राज्यों को आवंटित किये जानें वाले कर्तव्य एवम् साधन केन्द्र में निहित होते है।

4. जैसा कि आपने पहने देखा था, हमारे संविधान में स्थानीय निकायों के लिए अलग से कोई कर्तव्य एवम् साधनों की व्यवस्था नहीं है। राज्यों को निर्धारित कर्तव्य एवं. साधनों में से ही एक हिस्सा स्थानीय निकायकोउसके अर्न्तगत आने वाले क्षेत्र के लिए सौंपा गया है। वर्तमान में यह चल रहा है कि संविधान में संशोधन करके साधनो कों स्थानीय निकायों को सीधे ही दे दिया जाय।

25.6 महत्वपूर्ण केन्द्रीय कर

आय कर- आप ने पहले देखा था कि केन्द्र सरकार को गैर कृषि आय पर कर लगाने का अधिकार है जबकि राज्य सरकार कृषि आय पर कर लगा सकती हे। यह कर सबसे पहले 1860 में लगाया गया था जिसे हटा लिया गया और 1866 में पुन : लगा दिया गया। इन सभी दशाब्दियों में विशेषकर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद मैं आय कर में अनेक प्रकार के परिवर्तन आए है। इसका कारण एक तो यह है कि हमारी सरकार आयकर को सिर्फ उपाय प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन ही नही बल्कि आय एवम् धन की असमानता को दूर करने का एक उपकरण भी मानती हैं। आयकर मैं परिवर्तनों को कर देय आय, टर सूची, छूट एवम् वापसी से,

सम्बन्धित किया गया है। अधिभार आदि लगाने के सम्बन्ध में भी लगातार परिवर्तन किए गए है। यह स्मरण रखने योग्य है किएक समय कर देय आय की उच्चतम सीमाओं पर कर को दर 97.5 प्रतिशत तक थी इतनी ऊंची कर की दर अनुत्पादक होती है। ऐसे विचार कई व्यक्तियों, समितियों ने दिए थे। कहने का तात्पर्य यह है कि यह लोगो को आय छिपाकर कर वंचन के लिए प्रेरित करता है जिसके कई बुरे प्रभाव होते है। सरकार को आ राजस्व प्राप्त नही होता है। छिपाई गई आय, धन एवम् आय की असमानताओं को बढ़ाना है। देश मैं वास्तविक विनियोग, नियोजन की प्राथमिकताओं के अनुरूप नही होता क्योंकि काले धन का विनियोग तो अधिकारियों से छिपा कर रखना होता है। यह भी तर्क दिया जाता हैं कि यदि कर की दरें यथोचित सीमाओं में नीची' रखी जायेगी तो सरकार को कर राजस्व से अधिक आग आय होगी क्योंकि व्यक्ति अपनी आय कम मात्रा में छिपायेंगे। इसलिए सरकार ने 1970 के दशककेमध्य रो आय कर की दरों में धीरे-धीरे कुमार करनी प्रारम्भ कर दी है। वर्तमान में आय की उच्चतम सीमाओं पर कर की दर 30 प्रतिशत है।

आय कर का विश्लेषण करते समय पूंजी पर लाभ कर पर टिप्पणी कल आवश्यक है। एक परिसम्पत्तियाँ के खरीद मूल्य एवम् बिक्री मूल का अन्तर ही पूंजी पर लाभ है। यदि बिक्री मूल, खरीद मूल्य सें कम है तो पूंजी पर हानि होगी। सिद्धान्त रूप से परिसम्पति जिस काल के लिए रखी जाती है उस दौरान पर संचित आय की पूंजी पर लाभ है। इस प्रकार पूंजी पर लाभ, उसके रोके रखने के कल में उपार्जित होता है एवम् उस परिसम्पत्ति को जब बेचा जाना है तो वास्तव में वसूल होता है। पूंजी पर लाभ के दो दोष है -

(अ) प्रथम यह एकत्रीकरण की समस्या उत्पन्न करता हैं। जिसका तात्पर्य है परिसम्पत्ति पर लाभों को पर काल में फैलाने के बजाय यह मान लिया जाता है कि लाभ उसे उस सम्पत्ति के बिक्री के साल मे ही हु आ है। ऐसा कराधान के दृष्टिकोण से किया जाता। जब आय कर की दर प्रगतिशील (जब कर की दर आय की वृद्धि के साथ. जाती है) होती है तो वरदान को अपने लाभ का एक बड़ा अनुपात कर के रूप में चुकाना पड़ता है। समस्या का आंशिक हल अलग रो पूंजी पर लाभ की नीची दरों द्वारा है।

(ब) पूंजी पर लाभ से सम्बन्धित दूसरी समस्या कीमतों मैं परिवर्तन के उत्पन्न होती है। बढ़ती हु ई कीमतोकेकारण पूंजी लाभ मुद्रा के रूप में होते है। लेकिन इससे परिसम्पत्ति धारक की क्रय शक्ति में कोई वृद्धि नहीं होती हैं। इसके विपरीत कुछ परिसम्पतियां ऐसी भी हो सकती है जिसे खरीदकर वह शुद्ध घाटे में रह सकता है। यह उस समय होता है जबकि परिसम्पत्ति का मूल्य उस तेजी सें नही बढ़ता है जिस तेजी से सामान्य मूल्य स्तर बढ़ता हैं। एक काल्पनिक लाभ पर कर लगाना अन्यायसंगत है।

पूंजी पर लाभ कर बचतों एवम् पूंजी को हतोत्साहित करता है। हमारे देश में यह अकेला ऐसा तत्व है जिसे इस कर का त्याग करनेकेलिए अधिकारियों को प्रेरित करना चाहिए। भारतवर्ष मैं बचत करने वालों को प्रोत्साहन के बढ़ने, दीर्घकालीन विनियोग के लिए रोक कर रखी जाने वाली परिसम्पत्तियों पर कर चुकाना पडता है। यदि इस पूंजी लाभ का पुन :विनियोजन विशिष्ट परिसम्पत्तियों में एक निश्चित समय पर कर दिया जाय तो इसके बुरे

प्रभाव को निष्प्रभावित करनेकेलिए करो में कुछ राहत ही है। आलोचक कहते है. कि यह बचत एवम् विनियोग पर पड़ने वाले कर के बुरे प्रभावों को रोकने में असमर्थ है। इसलिए वे कहते है कि या तो कर को तित : समाप्त कर दिया जाय या फिर कर की दर घटाकर नाम मात्र स्तर तक कर दी जाय।

यह भी कहा जाता है कि परिसम्पत्ति धारक कों बढ़ती कीमतों के कारण कष्ट नहीं उठाना पड़े। अत. पूंजी पर लाभ की रकम (मुद्राकेरूप में मापी गई) सामान्य औसत स्तर (भारतवर्ष के कीमत सूचकांक सें बताया जाता है) से नीचे की ओर समायोजित की जानी चाहिए। जितने साल परिसम्पत्ति रखी गई है उतने साल पूंजी लाभ को (कर की गणना के लिए) लाभ की एक निश्चित प्रतिशत से कम कर देना चाहिए (जैसे 5 प्रतिशत)

परिसम्प्रत्ति धारकों को इस परिसम्पत्ति का प्रयोग सिर्फ गैर सट्टे सम्बन्धी प्रयोगों में करने के लिए इसी प्रकार प्रोत्साहित किया जा सकता है। यदि परिसम्पत्ति को लम्बे समय तक रखा गया है (हमारे उदाहरण में 20 साल) तो कोई भी कर योग्य पूंजी लाभ नही होगा।

निगम कर

यह कम्पनी की स्वयं की आय पर कर है और उस कर से भिन्न है जो कम्पनी स्वयं स्त्रोत पर लाभांश भुगतान के समय काटती है और अंशधारियों की तरफ से सरकारी खजाने में जमा कराती है। निगम कर को सुपर कर भी कहा जाता है। हमारे देश में कम्पनियों को उनकी राष्ट्रीयता (भारतीय/विदेशी) एवम् स्वामित्व के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। प्रत्येक श्रेणी पर छूट वापसी तथा अन्य वृतियों के बाद एक समान दर से कर लगाया जाता है।

हमारे देश में निगम कर सरकार के हत्या में एक महत्वपूर्ण नीति सक-थी उपकरण है। इसीलिए कई व्यक्तियों एवम् समितियों ने कई प्रकार की छूटे, जुर्माने एवम् अन्य तरीके सुझाए है जिससे कि कर का उपयोग विभिन्नलक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हो सके। इसके कारण निगम कर में जल्दी जल्दी परिवर्तन किए गए और कूर के प्रावधान बहु त ही कठिन हो गए है। उद्देश्यों में भी कहीं कहीं विरोधाभास हो गया है। इसके अतिरिक्त जब कर में परिवर्तन बहुत जल्दी जल्दी किए जातें है तो उनमें से किसी भी प्रभाव का अध्ययन बहु त विश्वसनीयता से नहीं किया जा सकता है। निगम क्षेत्र पर कर की दर नीति की मूल सूचनाओं के अभाव में, अधिकारी न्याययुक्त दीर्घकालीन नीति बनाने में सफल नहीं हो सकते है। एक स्थाई एवम् दीर्घकालीन कर नीति की अनुपस्थिति से, कम्पनी के दीर्घकालीन उत्पादन एवम् विनियोग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि निगम कर का आधार आय से बदल कर खर्च (वेतन एवम मजदूरियों को छोड़कर) कर देना चाहिए। इसके लिए यह तर्क दिया जाता है कि निगम क्षेत्र अपनी पूंजी (जो हमारे देश मे दुर्लभ है)केप्रयोग में मितव्ययता लायेगा और उनको पूंजी गहन तकनीकोंकेप्रयोग के लिए प्रोत्साहित करेगा। वर्तमान में यदि कोई कम्पनी अधिक कुशल है एवम् फिजूलकेखर्च रोक कर लाभ कमानी है तो उस पर कर दायित्व लगा कर उसे दंडित किया जाता है। इसके विपरीत यदि वह अनावश्यक खर्च करती है तो उस पर कम कर दायित्व डालकर पुरस्कृत किया जाता है।

धन कर

धन कर, करदाता के गैर कृषि सम्पत्ति के शुद्ध मूल्य पर वार्षिक कर है। धन कर का महत्व उसके द्वारा प्राप्त राजस्व से नहीं है। इस दृष्टि से यह बिल्कुल ही महत्वहीन है। इस कर को लगाने का औचित्य निम्न दो कारणों से है।

1. यह आयकर के वंचन को रोकने में सहायक सिद्ध होता है।
2. यह असमानताओं कों कम करने में सहायक सिद्ध होता है।

वस्तुत : तथ्य यह है कि यह दोनों ही उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल रहा है। धनकर चुकाने वाले कुल करदाता संख्या में बहुत ही कम है। धन के स्वामी धन को परिवार के सदस्योंकेबीच बांटने और कर की कुल देयता कम करने में सफल हो जातें है। इसके अतिरिक्त कर सें प्राप्त आय इतनी कम है कि यह किसी भी प्रकार आय एवम् धन की असमानताओं को कम नही कर सकता। धन कर से बचतें हतोत्साहित होती है.। यदि बचतें होती भी है तो वें उस परिसम्पत्ति के रूप में रखी जाना है जिसे की कर अधिकारियों जी नजरों से बचाया जा जाये या जिस पर धन कर नही लगे।

केन्द्रीय उत्पादन शुल्क

यह केन्द्र की आय का एक महत्वपूर्ण साधन है और पिछले वर्षों में इसमें तेजी से वृद्धि हुई है। 1989-90 के बजट में इसमे 21, 910 करोड़ रुपये या कुल कर आस का 40 प्रतिशत प्राप्त हुई। इस राशि में बिक्री के बदले (लगभग 1500 करोड़ रुपये) अतिरिक्त उत्पादन शुल्क एवं उपकर (3300 करोड़ रुपये शामिल है। मूल शुल्क का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। कर लगने वाली वस्तुओं को बजट में 139 मदों के अर्न्तगत समुचित किया गया है। हालाँकि उसमें से कई वस्तुओं पर कर की छूट दी गई है। सरकार उत्पादन शुल्कों का प्रयोग आय प्राप्त करने तथा देश में विनियोग, उत्पादन एवम् आर्थिक क्रियाओं को वांछित दिशा प्रदान करने के लिए करती है।

उत्पादन शुल्कों की एक महत्वपूर्ण सीमा यह है कि यह विभिन्न प्रकार की आदाओं, मध्यवर्ती वस्तुओं तथा मशीनरी एवम् उपकरणों पर लगाया जाता है। अच्छा यह होता।, है कि ये अन्तिम उपभोक्ता वस्तुओं पर लगाए जाते। इसका परिणाम यह है कि हमारी वस्तुओं की लागतें एवम् कीमतें ऊँची है जिसके कई बुरे प्रभाव है। उदाहरण के तौर पर यह आय एवम् धन की असमानताओं को बढ़ावा देता है। हमारे उत्पादनकर्ता अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बराबरी करने मे परेशानी महसूस करने है। इससे आयात प्रोत्साहित होते हैं और निर्यात पिछड़ जाते है जिसमें व्यापार की बाकी विपक्ष में चली जाती है।

सीमा शुल्क

ये शुल्क केन्द्र सरकार की कर आय का दूसरा महत्वपूर्ण साधन है। 1989 - 90 के बजट में इससे 18,000 करोड़ या केन्द्र की कर आय का 36 प्रतिशत प्राप्त होने की आशा थी। इस कर समूह में भी आयात करों से अधिक आय प्राप्त होती है जबकि निर्यात करों से बहुत ही कम। इसका मुख्य कारण यह है कि सरकार निर्यात कर लगाकर निर्यातों मेबाधा नहीं डालना चाहती है। इसके बजाय निर्यातों पर उपदान देकर उनको बढ़ाना चाहती है। आयात शुल्कों से न सिर्फ राजस्व की प्राप्ति होती है बल्कि अयातो पर नियंत्रण भी लगता है। आयातो का विभिन्न श्रेणियों में बंटवारा किया गया है। सरकार आयात प्रतिस्थापन को प्रोत्साहित करने या

अनावश्यक आयात पर रोक लगाने, आवश्यक औद्योगिक आदाओं तथा उपभोग वस्तुओं को प्राप्त करने जैसी आर्थिक नीतियों के आधार पर उन पर विभिन्नदरों से कर लगाती है, जिससे कि देश में लागत एवम् मूल्य बढ़ नही। यह सामान्यतया महसूस किया गया है कि सरकार अपने। उद्देश्य में आंशिक रूप से सफल रही है और उसकी नीति में सुधार की बहुत गुंजाइश हैं।

25.7 राज्य सरकारों के महत्त्वपूर्ण कर

राज्य सरकारों के कर साधन उनकी कुल आय का लगभग दो तिहाई भाग होते है कुल आय में गैर कर साधन जैसे सहायता अनुदान, ब्याज की प्राप्तियां आदि भी सम्मिलित होती है।

आपको याद होगा कि राज्य सरकारों के दो प्रकार के कर साधन है।

(अ) केन्द्र सरकार द्वारा लगाए गए एवम् संग्रहित किए गए कुछ करों में से राज्यों कों या तो हिस्सा मिलता है या फिर सम्पूर्ण प्राप्तियां ही राज्यों को सौंप दी जाती है। आपने देखा कि आय कर केन्द्रीय उत्पादन शुल्क और अनुच्छेद 269 के अर्न्तगत लगाए गए कर आदि इसी श्रेणी में आते हैं।

(ब) कुछ कर राज्य सरकारों द्वारा ही लगाए जाते है, संग्रहित किए जाते है एवम् राज्यों द्वारा ही रख लिए जाते है। इन करों को राज्यों के स्वयं के कर साधनों के नाम से पुकारा जाता है। ये राज्यों की कुल कर आय के लगभग दो तिहाई भाग के बराबर है। बाकी के एक तिहाई केन्द्र से हिस्सों के रूप में प्राप्त होते है।

बिक्री कर

आय प्राप्ति की दृष्टि से यह राज्यों का महत्वपूर्ण कर है इसका राज्यों के स्वयं के कर साधनों में अंशदान 60 प्रतिशत और कुल कर राजस्व में 40 प्रतिशत है। पिछले वर्षो में इसमें तेजी से वृद्धि हुई है और वर्तमान में इससे 15,000 करोड़ रुपये प्राप्त हो रहे है। बिक्री कर मूल्यानुसार है यानि मूल्य के आधार पर लगाया जाता है। इसके कारण वस्तुओं की लागत एवम् कीमत बढ़ती है और वे प्रतिस्पर्धा योग्य नहीं रहती। एक जनवरी सन् 2000 से पूरे भारत वर्ष में बिक्रीकर की न्यूनतम समान से राजस्थान में जहाँ ट्रेक्टर, मोटरवाहन, कम्प्यूटर, चाय मँहगी हो जाएगी, वहीं कैरोसीन गैस सिलेण्डर, बिजली के सामान, सीमेन्ट, गुड़-शक्कर व दाले सस्ती हो जाएगी। राजस्थान में बिक्री कर पर सरचार्ज समाप्त हो जाएगा।

तालिका 25.2

बिक्री कर की दरे (1 जनवरी सन् 2000 से लागु)

(प्रतिशत में)

मद	नई दर	मद	नई दर
ट्रैक्टर	8	करोसिन	4
मोटरवाहन	12	गैस सिलेण्डर	8
कम्यूटर	8	गुड़ शक्कर	-
चाय	8	बिजली का सामान	8
खल	4	पाईप	4
अगरबत्ती	8	काफी	8

धागे	8	सीमेन्ट	8
घी, मक्खन	8	सोना चाँदी	1
दाले	-	पेजर	8
आर्गानिक खाद	-	गेहूँ चावल	-

परन्तु कुछ राज्यों द्वारा इस समान दर का विरोध किए जाने के कारण यह व्यवस्था 1 जनवरी सन्न 2000 से लागू नहीं हो सकी है।

आबकारी शुल्क

बिक्री कर के बाद में राज्य की आय का महत्वपूर्ण साधन आबकारी शुल्क है। ये शुल्क मनुष्य के उपभोग के लिए बनी मदिरा, भारतीय भांग एवं अन्य नशीली दवाइयाँ एवम् पदार्थो पर लगाए जाते है। दवाइयाँ एवम् श्रृंगार प्रसाधन सामग्री पर शुल्क तो केन्द्र द्वारा लगाया जाता है लेकिन संग्रहित राज्य द्वारा किया जाता है और राज्य ही इनको रख लेता है आबकारी कर से राज्य के स्वयं के कर साधनों लगभग 15 प्रतिशत प्राप्त होता है। इनक वृद्धि की दर पर्याप्त ऊँची रही है। इस सम्बन्ध में एक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि अधिकारी कर एक बड़ा हिस्सा मदिरा से प्राप्त होता है। नीति निर्देशक तत्वों में हालांकि यह आशा की गई है कि राज्य मद्य निषेध की नीति का पालन करेगे। राज्य यदि ऐसा करता है तो न सिर्फ उनकी कर आय में कमी होगा बल्कि मद्य निषेध लागूकरने के खर्च में भी कमी होगी।

अन्य महत्वपूर्ण कर

राज्य सरकारों के अन्य महत्वपूर्ण करों में पंजीयन एवम् मुद्रांक कर मोटर वाहन कर है। प्रत्येक कर से राज्य के स्वयं के कर साधनों का 5 से 6 प्रतिशत तक प्राप्त है। इसके बाद में विद्युत शुल्क, (जो कि वितरण एवम् उपयोग पर लगाया जाता है।) यात्री एवम् वस्तुओं पर कर, एवम् मनोरंजन कर का स्थान आता। इनमें से प्रत्येक का राज्य के स्वंय के कर साधना में योगदान 3 से 5 प्रतिशत है। एक समय था जबकि भू-राजस्व राज्य की आय का महत्वपूर्ण साधन था। लेकिन समय के साथ इसका महत्व घट गया है। इसके लिए कई तत्व जिम्मेदार है अर्थव्यवस्था के कुल घरेलू उत्पादन में कृषि, अनुपातिक रूप से जनसंख्या के बड़े हिस्से का, भार वहन करती है। कुल घरेलू उत्पादन में कृषि का अंशदान 32.5 प्रतिशत है जबकि देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या का इसे भरण पोषण करना पड़ता है। गैर कृषि क्षेत्र की तुलना में गरीबों का अनुपात इसमें ज्यादा है। इन कारणों से राज्य कृषि पर भारी कर नही लगाना चाहता है। वस्तुत : इस कर को अनेक राज्यों ने या तो घटा दिया है या समाप्त ही कर दिया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि भू-राजस्व में राज्यों के बीच तथा राज्य के अन्दर भी एक रूपता नहीं है। इसलिए मुख्य कारण यह है कि शम सम्बन्धी दस्तावेज दोषपूर्ण है, सर्वेक्षण सामान्यतया अधूरे है, देश के, विभिन्न भागों में भू-धारण के तरीके अलग-अलग है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी राज्यों ने भूमि सम्बन्धी कानूनों एवम् भू-राजस्व के सन्दर्भ में एक जैसी नीति नही अपनाई है।

बोध प्रश्न - 2

1. उन तीन कसौटियों को बताइये जिनके अधीन हमारे संविधान ने केन्द्र तथा राज्यों के बीच कर साधनों का निर्धारण किया है। ये कसौटियां किससे सम्बन्धित है?
2. सही या गलत पर ✓ निशान लगाए।

(अ) हमारा संविधान केन्द्र एवम् राज्यों के बीच कराधान का समवर्ती अधिकार प्रदान करता है। सही/गलत

(ब) केन्द्र सभी प्रकार की आय पर कर लगा सकता है। सही/गलत

(स) केन्द्रीय उत्पादन शुल्क का राज्यों के बीच बंटवारा होता है। सही/गलत

(द) अनुच्छेद 269 के अर्न्तगत लगाए गए सभी करों से प्राप्त आय राज्यों को मिलती है। सही/गलत

(य) राज्य बिक्री कर के बदले अतिरिक्त उत्पादन शुल्क लगता है। सही/गलत

(र) वित्तीय असन्तुलन केन्द्र के पक्ष में तथा राज्यों के विपक्ष में है। सही/गलत

3. कर लगाने, संग्रहित करने एवम् विनियोजन की दृष्टि से वे कौन सी 5 श्रेणियां है जिनके आधार पर भारतीय करों का वर्गीकरण किया जा सकता है?
4. केन्द्र सरकार के कुछ महत्वपूर्ण करों की गणना कीजिए।
5. राज्य सरकारों के कुछ महत्वपूर्ण करो की गणना कीजिए।

25.8 प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष कराधान

सिद्वान्त में प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष करों में अन्तर कई वैकल्पिक विचारों पर आधारित है जो सदैव सन्तोषजनक या संगत नहीं है। ऐसा ही एक अन्तर करों के भार से सम्बन्धित है। यह कहा जाता है कि कर का भार एवम् दबाव यदि एक ही व्यक्ति पर है तो यह प्रत्यक्ष कर है। हलांकि हमारे लिए स्वीकार योग्य अन्तर का आर्थिक आधार निम्न है। प्रत्यक्ष कर की स्थिति में करदाता का निर्धारण अप्रत्यक्ष होता है। इसी आधार पर आयकर प्रत्यक्ष कर है, क्योकि करदाता कि योग्यता का निर्धारण कानून द्वारा परिभाषित आय से होता है। इस सन्दर्भ में यदि आप प्रमुख प्रत्यक्ष करों के क्षेत्र के बारे में जानकारी करें तो लाभदायक होगा। इस प्रकार जब आय पर कर लगाया जाता है तो प्रत्यक्ष कर है। जब उस आय के खर्च पर कर लगाया जाता है तो यह एक खर्च कर है। यदि आय के उस भाग पर कर लगाया जाता है जो खर्च नहीं की गई है तो यह धन कर या पूंजी कर है। एक परिसम्पत्ति को रोकने से जो लाभ होता है उसे पूंजी लाभ कर कहते है यदि धन के स्वामी इसमें से एक हिस्सा उपहार के रूप में दे दें तो उस पर उपहार कर लगता है। धन के स्वामी की मृत्यु होने पर उसकी सम्पति पर आस्ति कर लगाया जाता है या फिर उत्तराधिकारी को मिलने वाली आय के रूप में उत्तराधिकारी कर इसी प्रकार निगम क्षेत्र में प्रत्यक्ष कर आय एवम् धन पर लगाए जा सकते है।

अप्रत्यक्ष कर मुख्यत: उत्पादन, विनिर्माण, पैकिंग, बिक्री, खरीद एवम् वस्तु के यातायात पर लगाया जाता है। यहां करदाता की कर देय योग्यता का निर्धारण अप्रत्यक्ष तरीके से किया जाता है। विलासिता तथा अन्य मंहगी वस्तुओं पर सामान्यतया भारी दरों से कर लगाया जाता है। इसका आधार यह है कि इनको धनवान व्यक्ति खरीदते है। भारतवर्ष में महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष करो के अन्तर्गत सीमा शुल्क, बिक्री कर एवम् उत्पादन शुल्क आदि आते है। अप्रत्यक्ष कर विशिष्ट या मूल्यानुसार हो सकते है। विशिष्ट होने की स्थिति में उन पर कर मात्रानुसार लगता है जबकि दूसरी स्थिति में कर मूल्य के अनुपात में लगता है।

भारतवर्ष में व्याप्त गरीबी एवम् बेरोजगारी के कारण प्रत्यक्ष करों का आधार बहुत ही संकुचित है। सरकार की बढ़ती आवश्यकताओं की तुलना में, प्रत्यक्ष करों से प्राप्तियां बहुत ही कम है। यह स्थिति दर सूची के अति प्रगतिशील होने पर है। प्रगतिशीलता की स्थिति में बढ़ती हुई आय एवं धन पर कर की देयताएँ निरपेक्ष रूप में तथा कर के आधार के अनुपात में बढ़ती है। हमारे देश में यह पाया गया है कि यदि कर की दर एक सीमा से परे बढ़ा दी जाय तो इससे कर वंचन शक्तियों को प्रोत्साहन मिलेगा। अनेक समितियों एवम् व्यक्तियों ने यह सिफारिश की है कि प्रत्यक्ष करो की दरें उचित सीमाओं से परे नही होनी चाहिए।

परिणामस्वरूप अधिकारियों कों अप्रत्यक्ष करों पर ज्यादा भरोसा करना पड़ता है। अप्रत्यक्ष करों के लाभ एवम् हानि दोनों ही है। हमारे देश में अप्रत्यक्ष करों से मिलने वाले लाभों में सबसे महत्वपूर्ण है, कर के जाल का अधिक विस्तार गरीब करों के जरिए ज्यादा नहीं दे सकते है, बहुत कम ही चुका पते है। सार्वजनिक राजस्व तथा राष्ट्रीय निर्माण में उनके योगदान के लिए अप्रत्यक्ष करों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष कर कई वस्तुओं पर लगाए जा सकते है। जिससे कि प्रत्येक मद से उचित संग्रहण प्राप्त हो जाय। सिर्फ विलासिता की वस्तुओं पर ऊँची दरों से कर लगाया जाता है। इसके विपरीत आपको याद की होगा कि अप्रत्यक्ष करों की प्रकृति अद्योगामी होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इनका तुलनात्मक दृष्टि से गरीबों पर अधिक होता है।

भारतवर्ष में अधिकारियों ने इस बात का प्रयास किया है कि अप्रत्यक्ष करो की अद्योगामिता न्यूनतम है। बिना तैयार खाद्य पदार्थों एवम् अन्य कई आवश्यकताओं पर कर नहीं गया है। जहां कहीं, आवश्यक वस्तुओं पर कर लगाया गया भी हैं वहां कर की बहुत ही नीची है फिर भी यह सामान्य धारणा है कि हमारे, अप्रत्यक्ष कर अधोगामी है।

(1) अधिकांश वस्तुओं पर मूल्यानुसार कर लगाया जाता है।
(2) अधिकांश अप्रत्यक्ष कर बार-बार लगाए जाते है। ऐसा बिक्री कर के में विशिष्ट रूप सें लागू होता है।
(3) अप्रत्यक्ष कर सिर्फ अन्तिम उपयोग वस्तुओं तक ही सीमित नहीं है। कच्चा, मध्यवर्ती वस्तुएं एवं पूंजी उपकरण तथा मशीनरी पर भी कर लगाया जाता है। इससे हमारे उद्योगों की लागतें कीमतें बढ़ती है, स्फीति तत्वों को बढ़ावा मिलता है, तथा आय धन के वितरण की असमानताऐं बढ़ती है।

अप्रत्यक्ष कराधान के मूल्य उत्पादन प्रभाव (याने मूल्यों पर संचयी प्रभाव) को परिवर्धित कर लगाकर समाप्त किय जा सकता है। मूल्य परिवर्धित कर एक उत्पादन शुल्क है। करदाता

द्वारा वस्तु के निर्माण, माल तैयार करना, पैकिंग तथा एक स्थान से दूसरे स्थान भेजने से जोड़ गए मूल्य आदि पर लगाया जाता है। एक मद से वसूला गया कर हमेशा राशि के बराबर होगा जो कि अन्तिम उपभोग वस्तु पर लगाकर वसूल किया जाता। अन्तर सिर्फ इतना है कि मूल्य परिवर्धित कर, उपभोक्ता तक पहुंचे इसके लिए उत्पादन की विभित्र अवस्थाओं में कई टुकड़ों में वसूल किया जाता है। सिद्धान्त में मूल्य परिवर्धित कर एक है। यह लागत एवम् कीमतों के संचयी प्रभाव को रोकता है। एवम् स्फीतिकारी शक्तियों को बढ़ावा नहीं देता है। यह विभिन्न विनियोगों की लाभदायकता को प्रभावित करके उत्पादक साधनों के आवंटन को नही बिगाड़ता है। फिर भी भारतवर्ष में उस कर के अपनाने में कई प्रशासकीय एवम् अन्य कठिनाइयाँ है। हमारी आर्थिक एवम् सामाजिक आवश्यकताएँ बताती है कि कुछ वस्तुए मूल्य परिवर्धित कराधान से मुक्त होनी चाहिए और कुछ वस्तुओं पर नीची दरों से कर लगाना चाहिए। इन परिस्थितियों में मूल्य परिवर्तित कर को अपनाए रखना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इस कर को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए हमारे व्यापारी अभी भी विस्मृत लेखा तैयार करने की स्थिति में नहीं है। भारतवर्ष में सरकार ने मूल्य परिवर्धित कर को कुछ विनिर्माण उद्योगों में अपनाया है और इसका नाम संशोधित मूल्य परिवर्धित कर (मोडवेट) दिया है। सन् 2000- 2001 के बजट सें मोडवेट को अब सेनवेंट (CENVAT) के नाम से सभी उद्योगों पर किया गया है।

हमारे देश में अप्रत्यक्ष कर कुल कर आय का महत्वपूर्ण हिस्सा है। राज्य की स्वयं की कर आय का लगभग 90 प्रतिशत और केन्द्र की कर आय का लगभग 80 प्रतिशत अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त होता है।

25.9 भारतीय कर व्यवस्था के महत्वपूर्ण लक्षण

1. आपने देखा है कि भारतीय संविधान केन्द्र एवम् राज्यों के बीच कराधान की सूची से बचने का प्रयास करता है। साधनों को बहुत स्पष्टता से सीमाबद्ध किया है। किसी भी कर आधार पर केन्द्र एवम् राज्य दोनों द्वारा कर नहीं लगाया जा सकता है।
2. आपने पढ़ा होगा कि हमारे संविधान ने केन्द्र एवम् राज्यों के बीच कर साधनों का निर्धारण तीन कसौटियों के आधार किया है, जैसे (1) मितव्ययता (2) कुशलता एवम् (3) एकरूपता। यह देखा गया है कि कर लगाने संग्रहण एवम् विनियोजन में अन्तर है। इन आधारों पर सम्पूर्ण कर व्यवस्था को पांच श्रेणियों में बाँटा गया है। करों का बंटवारा हमारी कर व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण लक्षण है।
3. एक अन्य लक्षण जो आपने पढ़ा है उसका सम्बन्ध करों का प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष कर के रूप में विभाजन है। आपने यह भी देखा है कि भारत के कर साधनों में अप्रत्यक्ष करो का अनुपात बहुत ज्यादा है। हमारे देश में प्रचलित परिस्थितियों एवम् साधनों की बढ़ती हुई जरूरतों को देखते हुए, सरकार को अप्रत्यक्ष करो से आय प्राप्त करने के लिए मजबूर होना पड़ा है। हालांकि यह महसूस किया गया है कि अप्रत्यक्ष करों में आमूल चूल परिवर्तन एवं सुधार की आवश्यकता है।

4. भारतीय कर व्यवस्था जटिलताओं से ग्रसित है। हमारे यहाँ प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के कई कर है। हमारे कर कानून सरल नही है। छूट, वापसी आदि की पेंचीदा कानूनी परिभाषाओं के कारण वें समझने में कठिन है। कर कानूनों में अधिकारिक अधिसूचनाओं तथा प्रक्रिया सम्बन्धी परिवर्तनों से जल्दी जल्दी फेर बदल किए गए है। अधिकांशत: इन अधि सूचनाओं से विरोधी अर्थ निकलते है एवम् कानूनी अड़चने आती है।
5. हमारी कर व्यवस्था में दर सूची, छूट, वापसी एवम जुर्माना आदि में जल्दी जल्दी परिवर्तन के कारण अतिरिक्त जटिलताएँ हो जाती है। यह परिवर्तन वार्षिक बजट के समय एवम मध्यवर्ती अवधि दोनों में होते है। इसके परिणाम स्वरूप अपनाए गए विभिन्न प्रयासों के आर्थिक प्रभावों को अधिकारी निर्धारित नहीं कर सकते है।
6. अब हमें यह देखना है कि हमारी कर व्यवस्था में लोचकता एवम् उत्पलावकता के लक्षण विद्यमान है या नहीं। कर की दर सूची एवम् उसके सीमा क्षेत्र में परिवर्तन के कारण कर से प्राप्त आय में परिवर्तन को कर की लोचकता कहते है। सीमा क्षेत्र से हमारा तात्पर्य नई मदों में कर का विस्तार करना है। इसी प्रकार कर आधार के बढ़ने से करों से प्राप्त आय भी बढ़ सकती है। कर के आधार में आनुपातिक वृद्धि से कर आय में आनुपतिक वृद्धि यदि अधिक है तो कर उत्पलावित कहा जायेगा। अध्ययनों से पता चलता है कि कुछ व्यक्तिगत करों में लोचकता एवम उत्प्लावकता अच्छी है। यह माना जाता है कि सम्पूर्ण कर व्यवस्था में इन करों के कारण ही उचित श्रेणी की लोच एवम् उत्प्लावकता है। केन्द्र एवम् राज्यों के करों में हालांकि केन्द्र के कर अधिक लोचदार एवम् उत्प्लावित है।
7. क्या भारतीय कर व्यवस्था प्रगतिशील है? इस प्रश्न के हल के लिए आपको यह पहले नोट करना होगा कि शब्द प्रगतिशीलता दो प्रकार से प्रयोग में लाया जा सकता है। कागजों में कर व्यवस्था प्रगतिशील होंगी यदि आय एवम् धन में वृद्धि के साथ कर देयता में बढ़ने की प्रवृति मिलती है। वास्तव में कर व्यवस्था प्रगतिशील तभी होगी जबकि इसके कारण आय एवम् धन की असमानता कम होती है।

   कर की प्रगतिशीलता के लिए प्रयोग में लिए गए पहले अर्थ में आपको नोट करना होगा कि हमारे प्रत्यक्ष करो की दर सूची में ऊँचे दर्जे की प्रगतिशीलता है। हमारे अप्रत्यक्ष कर, विलासिताओं तथा धनवानों के काम में आने वाली वस्तुओं पर मुख्य रूप से केन्द्रित है। दूसरी कसौटी के आधार पर हमारी कर व्यवस्था बिल्कुल ही प्रगतिशील नही है।

(अ) प्रत्यक्ष करों का सीमा क्षेत्र बहुत ही संकुचित है। बहुत ही कम व्यक्ति करो का भुगतान करतें है।

(ब) कुल कर राजस्व में प्रत्यक्ष करों का हिस्सा बहुत ही कम है।

(द) प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष दोनों करो का वंचन अधिक मात्रा में होता है। यह सभी तत्व गरीबों को लागत पर धनवानों की आय बढ़ाते हैं।

8. हमारे देश में, कराधान का प्रयोग क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने में किया जाता है। औद्योगिक रूप से पिछड़े जिलों की पहचान की गई है और इन जिलों में विनियोग करनें पर करों में कई प्रकार की रियायतें दी गई है। हालांकि यह नीति आशिक रूप से ही सफल

सिद्ध हुई है। प्रादेशिक असमानताओं को उचित स्तर तक कम करने के लिए गहन एवं दीर्घकालीन प्रयासों की आवश्यकता है।

9. निर्यात प्रोत्साहन तथा आयात प्रतिस्थापन्न द्वारा आत्म निर्भर बनाना हमारी कर व्यवस्था का एक निश्चित उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आयात शुल्कों का प्रयोग किया जाता है जिससे कि अनावश्यक आयात रोके जा सके और ये उद्योग देश में प्रगति कर सकें। हमारे आयातो को विभित्र श्रेणियों में बांटा गया है और प्रत्येक पर आयात शुल्क की दर अलग है। निर्यात शुल्क त्रयी लगाए जाने है जबकि निर्यात प्रोत्साहन को बगैर प्रभावित किए निर्यात आय प्राप्ति की जा सक। कुछ पारालाहयों में जब वस्तु विशेष का पुन: निर्यात किया जाता है तो सीमा शुल्कों का पुन: भरण किया जाता है। कुछ उद्योग ऐसे भी है जो सिर्फ निर्यात के लिए ही उत्पादन करते है। इन उद्योगों के लिए शुल्क में रियायतें इतनी ज्यादा है कि वे व्यवहार में कुछ भी कर नहीं चुकाते है।

10. कर व्यवस्था हमारी अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास में सहायता करने का प्रयास भी करती है। चुने हुए महत्वपूर्ण उद्योगों को कर छुट्टी भी स्वीकार की जाती है याने उनको निगम करोंकेभुगतान से मुक्त रखा जाता है। इसी प्रकार हमारी कर व्यवस्था कुटीर एवम् छोटे पैमाने के उद्योगों के भी पक्ष में है।

25.10 कर सुधार की आवश्यकता

यह स्वीकार किया गया है कि हमारी कर व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है। इसको निम्न प्रकार से सम्पन्न किया जा सकता हैं-

1. सरलीकरण

हमारे कर कानून बहुत ही जटिल है। कानून के विशेषज्ञ इसमें छिद्र ढूंढ लेते है और कर वंचन करने वाले इनका लाभ लेते है। दूसरी तरफ ईमानदार करदाताओं को अनिश्चितता एवम् मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। छिद्रों को बन्द करने के प्रयास में अधिकारियों ने हमारी कर व्यवस्था की जटिलता कों बढ़ाया ही है। कर प्रावधानों में बार-बार परिवर्तनों से प्रतियां बढ़ी है। इस प्रकार के कार्यों से हमारी अर्थव्यवस्था पर हानिकारक प्रभाव ही पड़े है। सरकार को राजस्व की हानि होती है और विनियोगकर्ता दीर्घकालीन आधार पर आयोजन नहीं कर पाते है। नियोजित विकास के विचार के विपरीत काली मुद्रा एवम् समानान्तर अर्थव्यवस्था चलती है।

2. एकीकरण

कई विचारकों ने यह वकालत की है कि हमारे सम्पूर्ण अप्रत्यक्ष करों को एक ही कर-मूल्य वर्धित कर से प्रतिस्थापित किया जा सकता है। इसी प्रकार हमारे सभी प्रत्यक्ष करों के बदले में वैयक्तिक उपभोग कर और निगम क्षेत्र पर खर्च कर लगाया जा सकता है। आपको याद रखना होगा कि सैद्धान्तिक रूप से भी प्रत्यक्ष करों की स्थिति में एक कर का चुनाव स्पष्ट मही है। उदाहरण के तौर पर कई अर्थशास्त्रियों ने यह बताया है कि वैयक्तिक खर्च पर कर के लिए प्रत्येक व्यक्ति को हिसाब किताब का विस्तृत ब्यौरा रखना होगा जो कि विकसित राष्ट्रों में भी सम्भव नही है। यह कहा जाता है कि खर्च कर के सभी लाभ तभी प्राप्त हो सकते है

जबकि बचत पर उचित छूट दी जाय। इसी प्रकार एक निगम कर सरकार को अनेक उद्देश्यों वाली आर्थिक नीति अपनाने में सहायक नहीं हो सकता है।

3. समन्वय

हमारे देश में जब कई कर है तो उनमें समन्वय की आवश्यकता रह जाती है। कर एक दूसरेंकेविरूद्ध कार्य नहीं करें। इसके विपरीत वे अधिकारियों द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने मे एक दूसरे की मदद करें। एक अनेक उद्देश्य वाला कर लाभ इसमें सहायक हो सकता है।

बोध प्रश्न - 3

1. आप प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष करो में भेद कैसे करते है?
2. भारतवर्ष में अप्रत्यक्ष कर क्यों कुल कर राजस्व का बहुत बड़ा अनुपात है?
3. क्या हमारी कर व्यवस्था प्रगतिशील है?
4. वें कौनसी विचारधाराएं है जिनको ध्यान में रखकर हम कर व्यवस्था में सुधार कर सकते है।

25.11 सारांश

इस इकाई में आपने हमारी कर व्यवस्था से सम्बन्धित कुछ पहलुओं तथा आधारभूत प्रत्ययों के बारे में पढ़ा है। कर एक अनिवार्य भुगतान है। कर जुर्माना तथा कीमत में अन्तर किया जाता है। कर में लाभ की भावना का अन्त होता है। हमारी अर्थव्यवस्था में कर से प्राप्त आय निरपेक्ष रूप से तथा कुल घरेलू उत्पादन के अनुपातकेरूप में बढ़ती जा रही है। यह आय प्रथम योजना में 6.21 प्रतिशत के औसत से बढ़कर 1987 - 88 में 19.54 प्रतिशत हो गई। इसी काल में यह निरपेक्ष रूप से भी बढ़ी है और 585 करोड़ रुपयों से बढ़कर 56, 949 करोड़ रुपये हों गई। हमारी अर्थव्यवस्था में कर साधनों की बढ़ती भूमिका की व्याख्या समय के परिवर्तन के साथ राज्य के बढ़ते कर्त्तव्य एवम् खर्च की प्रवृत्ति से की जा रही है। हमारे यहां कराधान का प्रयोग सामाजिक एवम् आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्तिकेलिए नीति सम्बन्धी उपकरण के रूप में किया जा रहा है।

हमारे देश में कर साधनों का बंटवारा केन्द्र एवम् राज्यों के मध्य स्पष्ट रूप से बिना परस्पर मिलाए किया गया है। करों के निर्धारण में मितव्ययता, कुशलता एवम् एकरूपता की कसौटी को अपनाया गया है। इससे वित्तीय असन्तुलन केन्द्र के पक्ष में हो गया है। और करो के बंटवारे की आवश्यकता महसूस की गई है।

इस इकाई में आपको केन्द्र सरकार एवम् राज्य सरकारोंकेकुछ महत्वपूर्ण करों के सम्बन्ध में भी जानकरी दी गई है। केन्द्रीय सरकार की आय की दृष्टि से उत्पादन. शुल्क, सीमा शुल्क, निगम कर एवम् आय कर महत्वपूर्ण कर है। इसी प्रकार राज्यों की आय में बिक्री कर का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है और इसके बाद क्रमश: आबकारी कर, यात्री एवम् वस्तुओं पर कर एवम् अन्य है।

कुल कर राजस्व में अप्रत्यक्ष करों का हिस्सा महत्कार्ण है। राज्यों की स्थिति में यह 90 प्रतिशत है। यह प्रत्यक्ष करों के संकीर्ण आधार के कारण है और इसीलिए गरीबों से भी कर वसूलने की आवश्यकता होती है।

कर साधनों का केन्द्र एवम् राज्यों के बीच -बँटवारा, प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष कर भाग, प्रगतिशीलता, लोंचक एवम् उत्प्लावता, कर कानूनोकोजटिलता एवम् उनमें तीव्र गति से परिवर्तन आदि की दृष्टि से हमारी कर व्यवस्था के प्रमुख लक्षणों का वर्णन किया गया है।, का सरलीकरण, एकीकरण तथा समन्वय कर सुधार की तीन सम्मानित विचारधाराएं है।

25.12 शब्दावली

कर	:	राज्य को एक अनिवार्य भुगतान है जिसमें लाभ की भावना का लाभ की होता है। लाभ की भावना से तात्पर्य बदले में कुछ मिलना होता है।
कर व्यवस्था	:	से तात्पर्य सरकार द्वारा प्रयोग में लिए गए सभी करों से है।
कर आधार	:	उद्देश्यों आ वैधानिक विवरण है जिनके सन्दर्भ में कर लगाया गया है।
दर सूची	:	का अर्थ वे सम्बन्धित दरें है जो करके आधार में परिवर्तन के कारण करदाता की कर देयता का निर्धारण करती है।
कर ढांचे	:	में लगाए गए करो के प्रकार तथा कुल कर आय में उनके सापेक्षिक योगदान का वर्णन होता है
निर्बाध व्यापार	:	से तात्पर्य अर्थव्यवस्था के संचालन में सरकार की अहस्तक्षेप की नीति से है।
मितव्ययता की कसौटी	:	से तात्पर्य कर संग्रहण की लागतों से है।
कुशलता की कसौटी	:	से तात्पर्य अधिकारियों की कर को लागू करने की प्रशासनिक क्षमता सें है।
एकरूपता की कसौटी	:	बताती है कि जहाँ तक सम्भव हो सके पूरे देश या राज्य में कर की दरें एक समान होनी चाहिए।
भारत का समेकित कोष	:	उन मोद्रिक शेषों को बताता है जो कि भारत सरकार के है।
संघीय आय	:	से तात्पर्य उन भुगतानों सें है जो कि भारत के समेकित कोष सें किए गए है।
प्रत्यक्ष कर	:	में करदाता की कर देयता का निर्धारण उसकी कर चुकाने की प्रत्यक्ष क्षमता से होता है।
अप्रत्यक्ष कर	:	में करदाता की कर देयता का निर्धारण किसी क्रिया के आधार पर अप्रत्यक्ष रूप से होता है।
कर की लोचकता	:	से तात्पर्य कर की दर तथा उसके सीमा क्षेत्र में आनुपातिक वृद्धि के कारण कर सें प्राप्त आय मेंआनुपातिक वृद्धि है
कर की उत्प्लावकता	:	से तात्पर्य कर के आधार में आनुपतिक वृद्धि से कर ओय में आनुपतिएक वृद्धि है।

25.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

H.L Bhatia, Public Finance,

Government of India, Economic Survey Latest Lssue, Chapter -6

Reservc Bank of India, Bulletin,

Government of India, Receipte Budget, Latest Issue.

25.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1. कर एक अनिवार्य भुगतानहै जिसमें लाभ की भावना का अभाव होताहै। जुर्माना भी एक अनिवार्य भुगतान है लेकिन यह आय प्राप्ति के लिए नहीं लगाया जाता है।
2. कर का आधार उद्देश्य का एक वैधानिक विवराण है जिसकें आधार पर वह कर लगाया जाता है।
3. सरकार का कल्याण कैन्द्रण, (2) सरकारा कार्यों के क्षेत्र वृद्धि (3) सरकारी कार्यों की तीब्रता में वृद्धि (4) मंहनें कर्मचारियों एवम् उपकरणों का प्रयोग (5) सुरक्षा की बढ़ती आवश्यकताएं, (6) अर्थव्यवस्था एवम् समाज की बढ़ती जटिलताएं एवम् (7) बढ़ती कीमतें आदि इसके मुख्य कारण है।
4. कराधान के मुख्य उद्देश्यों में जिनको सम्मिलित किया जा सकता है उनमें प्रमुख है -(1) देश की आर्थिक वृद्धि और अच्छे समाज के बनाने में मदद करना, (2) आय एवम् रोजगार को बढ़ाना, (3) असगानताओं को कम करना, (4) प्रादेशिक असमानताओं को कम करना, (5) सन्तुलित विकास निश्चित करना एवम् (6) अन्य देशों में होने वाले आर्थिक उतार चढ़ाव से देश को बचाना, आदि।

बोध प्रश्न - 2

1. मितव्ययता, कुशलता एवम् एकरूपता ही तीन कसौटियां है। मितव्ययता का तात्पर्य करसंग्रहण की त्नागत से है। कुशलता का अर्थ सरकार के कर नियमों को लागू करने की योग्यता से है। एकरूपता से हमारा तात्पर्य दर एवम् कर निर्धारण में एक रूपता से है।
2. (अ) गलत, (ब) गलत, (स) सही, (द) सही, (य) गलत, (र) सही।
3. (1) वे कर जौ केन्द्र द्वारा लगाए और संग्रहित किए जाते है और केन्द्र ही उन्हें रख लेता

   (2) वें कर जों केन्द्र द्वारा लगाए और संग्रहित किए जाते है लेकिन जिनका राज्यों को हिस्सा दिया जाता है।

   (3) वे, कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जाते है एवम संग्रहित किए जातै है लेकिन जिनकी शुद्ध प्राप्तियां राज्यों कों सौंप दी जाती है।

   (4) वे कर जो केन्द्र द्वारा लगाए जातै है लेकिन राज्यों द्वारा ही संग्रहित किए जाते है और राज्य ही उनको रख लेता है।

   (5) वें कर जों राज्यों द्वारा ही लगाए जाते है, संग्रहित किए जाने है और राज्यों द्वारा ही रख लिए जाते है।

4. (1) उत्पादन शुल्क, (2) सीमा शुल्क, (3) निगम कर, (4) आय कर, (5) धनकर।
5. (1)बिक्री कर, (2) आबकारी कर (3) पंजीयन एवम् मुद्रांकन शुत्क, (4) यात्रियों एवम् वस्तुओं पर कर, (5) विददूत कर (6) मनोंरंजन कर आदि।

बोध प्रश्न-3

1. प्रत्यक्ष कर वे कर है जो करदाता की कर चुकाने की क्षमता-प्रत्यक्ष रूप से आय आदि के आधार पर लगाए जातें है। अप्रत्यक्ष करो की स्थिति में देयता का निर्धारण अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। प्रत्यक्ष करोंकेउदाहरण (अ) आय कर, (ब) धन कर, उपहार कर, (द) खर्च कर आदि है। अप्रत्यक्ष करों पे- उदाहरण में (अ) बिक्री कर, (ब) सीमा शुल्क, और (स उत्पादन शुल्क आदिहे।
2. भारतवर्ष में प्रत्यक्ष कर्रो का क्षेत्र बहुत सीमित है क्योंकि हमारा देश अर्ध्दविकसित' है और धन तथा आय की बहुत असमानताएं है। सरकार की आय प्राप्ति की अवश्यकताओं के कारण गरीबों से भी कर वसूल किया जाता है।
3. सेद्धान्तिक दृष्टि से हमारे प्रत्यक्ष कर बहुत ही प्रगतिशील है तथा अप्रत्यक्ष की अवरोहिता को विभेदी कर दरोंकेप्रयोंग एवम् क्षेत्र सें सीमित किया गया है। लेकिन में हमारी कर व्यवस्था प्रगतिशील नहीं है क्योंकि : -

   (अ) बहुत बड़ी मात्रा में कर वंचन होता है। और

   (ब) प्रत्यदा करों का आधार बहुत ही संकीर्ण है।
4. हम कर व्यवस्था में सुधार (1) कर कानूनों की जटिलताओं को समाप्त करके, (2) सभी करो को दो या तीन करो में सम्मिलित करके, एवम् (3) विभित्र कर कानून में समबयय करके कर सकते है।

इकाई 26
समाज के विभिन्न वर्गो, पर करापात

इकाई की. रूपरेखा

26.0 उद्देश्य
26.1 प्रस्तावना
26.2 करापात की अवधारण
26.3 व्यवहार में करापात
26.4 करापात तथा समाज के विभिन्न वर्गों का सम्बन्ध
26.5 कुछ महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष करो का करापान
26.6 समस्त प्रत्यक्ष करों का करापान
26.7 अप्रत्यक्ष करो वा करापान - अवधारणा सम्बन्धी विचार
26.8 समाज के विभिन वर्गो पर अप्रत्यक्ष करो का करापात
26.9 सारांश
26.10 शब्दावली
26.11 उपयोगी पुस्तकें
26.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के बाद :

- आप कराघात, करापात एवं करों के प्रभाव की अवधारणाओं को समझ सकेंगे।
- आप कर विवर्वन की धारणाकोसमझ पाओगे।
- आप समझ जाओगे कि कर भार केवल विक्रय क्रय व्यवहार द्वारा ही विवर्तित किया जा सकता है।
- आप देखेंगे कि प्राधिकारी वर्ग करापात की समस्या की उपेक्षा नहीं कर सकता।
- समाज के विभिन्न वर्गोकेसाथ व्यक्तिगत करोंकेभार का सम्बन्ध स्थापित कर सकता।
- महत्वपूर्ण व्यक्तिगत प्रत्यक्ष करों के भार का विश्लेषण करके निर्णय कर पाओगे।
- महत्वपूर्ण व्यक्तिगत अप्रत्यक्ष करों के भार का विश्लेषण एवं निर्णय कर पाओगे।

वैकल्पिक आधारों पर सूत्रित समस्त प्रत्यक्ष करो के समाज के विपिन वर्गों पर पड़ने वालें भार का विश्लेषण कर पाओगे।

- आप समझ पाओगे कि अप्रत्यक्ष करों का भार, विशेष कर भारत में, उपभोक्ताओं द्वारा सहन किया जाता है।
- आप समझ जाओगे कि भारतीय सरकार द्वारालगाये गये सीमा करो का भार भारतीयों द्वारा ही सहन किया जाता हैं।

– आप समझ जाओगे कि हमारे अप्रत्यक्ष कर मुखतया उच्च वर्ग द्वारा सहन करने के लिए बनाये गये है। उनका करापात उपभोक्ताओं पर होता है न कि पूर्तिकर्ताओं (प्रदायको) पर, उनका भार शहरी क्षेत्रों पर अधिक तथा ग्रामीण क्षेत्रों पर कम पड़ता है।

26.1 प्रस्तावना

प्रत्येक आधुनिक सरकार अर्थव्यवस्थाकेकार्य कारण तथा कल्याणकारी पहलुओं में का पद्धति के महत्व कों अनुभव करती है। इसलिए विपिन करों को लगाने तथा और धन की विषमताओं पर उनके प्रभावों का निर्धारण करने में प्राधिकारियों को महत्वपूर्ण करों के भार को तथा समाज के विभिन्न वर्गों पर सम्पूर्ण कर प्रणाली के प्रभावोंकोध्यान में रखना चाहिए। निर्णयों को उन वैकल्पिक विधियों, जिनसे समाज की विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया जायें तथा सरकार के सभी सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्यों से संबंधित जाना चाहिए। हमारे देश में विशेषतया करो के इन उद्देश्यों की उपेक्षा नही की जा सकती इसलिए करापान के अध्ययन का विशेष महत्व है। इस इकाई में हम समाज के विभिन्न वर्गों पर कारपात का अध्ययन करेंगे

26.2 करापात की अवधारणा

समाज के विभिन्न वर्गों पर कर-भार का अर्थपूर्ण अध्ययन करने के इस बात की आवश्यकता है कि हम पहले करापात की धारणा से परिचित हो। इस संदर्भ में सामान्यतया कराधान, करापात तथा कर के प्रभावों में अन्तर समझ लेना चाहिए, तब करापात की धारणा का समूची कर पद्धति पर विस्तार किया जा सकेगा। जैसा कि आप पहले ही जानते है कि कर प्राधिकारियों द्वारा लगाया गया एक अनिवार्य भुगतान है। यह ऐक ऐसा भुगतान है जिसे करदाता बिना किसी "जैसे कों तैसा" व्यवहार के करता है अर्थात् उसे बदले में कोई लाभ प्राप्ति का अधिकार नहीं होता। कर किसी आधार पर लगाया जाता है अर्थात् यह किसी आर्थिक परिमाण (Magnitude) की वैधानिक व्याख्याकेसदंर्भ में निर्धारित किया जाता है। जैसे कि धन या कोई आर्थिक क्रियाकेसदंर्भ में जैसे कि उत्पादन, क्रय या विक्रय आदि। परन्तु इसका संग्रह किसी वैधानिक सला से ही किया जायेगा जैसे कि व्यक्ति, परिवार, फर्म या संस्था आदि। कराघात वैधानिक सला पर ही कहा जायेगा जिसका प्राधिकारियों को कर देने का वैधानिक दायित्व होता है। उदाहरणकेलिए आयकर का कराघात आय कमाने वाले पर और उत्पादन शुल्क का उत्पादक पर होगा इत्यादि। यह ध्यान देने की बात है कि कर की वसूली प्राधिकारियों की उगे से मध्यस्थ अभिकरणों द्वारा भी की जा सकती है। इसलिए एक स्वामी अपने कर्मचारियों के वेतन में से, आयकर की कटौती करके सरकार के पास जमा कराता है। एक थियेटरकेमालिक का भी वैधानिक उतरदायित्व है कि वह दर्शकों से मनोरंजन कर वसूल करके प्राधिकारियों के पास जमा करावे। परन्तु स्वामी तथा थियेटर के मालिक तो केवल सरकार के कर संग्रह के एजेंट का कार्य कर रहे है। कराघात तो क्रमश: वेतन भागी कर्मचारी तथा थियेटर के दर्शकों पर ही रहता है। ऐसा इसलिए है कि कराघात कर दातस्कों के साथ इसके स्पर्श का प्रभावी बिन्दु होता है। कराघात उन लोगों पर होता है जिनका प्राधिकारियों को भुगतान करने का वैधानिक दायित्व होता है। इसके विपरीत कराघात को कर के आष्णुँ विश्राम स्थल के रूप में परिभाषित

किया गया है - अर्थात वह सोत अन्तिम रूप में जिससें इसका भुगतान किया जाता है। कराघात का अनुमान तथा माप मुद्राकेरूप में लगाया जाता है। अर्थात इस कर राशि द्वारा जो वास्तव में प्राधिकारियों द्वारा वसूल की गई हों। यह सर्वविदित तथ्य है कि करदाता अपने द्वारा दिये गए कर का आशिक या भाग दूसरों सें वसूल कर सकता है। जिस सीमा तक वह ऐसा करने में सफल हों जाता है, उस सीमा तक करापात दूसरों पर विवर्नित हो जाता है। इस प्रकार एक उत्पादक, उत्पादक शुल्क क्रेताओं से वसूल क्र सकेगा जिससे उत्पादन शुल्क का भार उन पर विवर्तित हो जाएगा। इसे अग्रगामी विवर्तन कहतें है। इसके विपरीत यदि वह कच्चे माल के पूर्तिकर्ताओ अथवा दूसरें आदानों से उ उत्पादक शुल्क का कुछ भाग वसूल कर पाता है तो वह प्रतिगामी विवर्तन होगा। सामान्यतौर पर हम कहतें है कि अग्रगामी विवर्तन में करदाता उन वस्तुओं की कीमते बढ़ा देता है जो वहू बेचता है। याद रखिये कि कर भार का तब वक विवर्तन नहीं किया जा सकता जब गक कि विक्रया/क्रय व्यवहार न हो और मृत्यों की तत्सम्बन्धी पुनरावृति न हो। यह भी सम्भव है कि कर विवर्तन का कार्य कई चरणों में हो और किसी विशेष कर का भार विभिन करदाताओं का फैल जाये। कर-विवर्नन की किया में विभिन्न वस्तुओं की मांग, पूर्ति और मूल्यों में परिवर्तन हो सकता है। करापात औंर कर प्रभाव एक ही चीज नहीं है। कर-प्रभाव धारणा तथा विश्लोण दोनों के दृष्टिकोणा से कराघात नथा करणन से भिन्न है। करकेप्रभाव करदाताओं की प्रतिक्रियाओं तथा कर के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों को कहते है। यह परिवर्नन कई क्षेत्रों में प्रतीत हो सकते है जैसे मूल्यों, मांग, पूर्ति, बचत, विनियोग एवं आय का विवरण आदि।

"करापात" शब्द का कुछ दूसरे तरीका से भी उपयोग किया जाता है। श्रीमती हिक्स ने दो पदों (Terms) का परिचय दिया - औपचारिक करामात और प्रभापूर्ण करापान। औपचारिक करापात, कर दाताओं पर. मौद्रिक भार है। यह सदा प्राधिकारियों द्वारा संग्रह किये गये कर राजस्व के बराबर होता है। इससे स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण कर प्रणलीका औपचारिककरापात सरकार द्वारा वसूल किया गया कुल कर-राजस्व है। इसके विपरीत प्रभावपूर्ण करापात, अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभावों को व्यक्त करता है। इसी प्रकार मसग्रेव के अनुसार किसी कर प्रणाली का करापात कर लगने के बाद जनता की आय के वितरण में अन्तर है।

दूसरे शब्दों में मसग्रेंव चाहते है कि हम कर प्रणाली द्वारा उतन आय की असमानताओं में परिवर्तन का अनुमान लगाये। एक एकल कर के वितरणात्मक प्रभाव उस विशिष्ट कर का करापात है। प्राधिकारी वर्ग भी वैकल्पिक कर प्रणाली के वितरणात्मक प्रभावों का अनुमान तथा उनमें तुलना कर सकता है। जब एक कर प्रणाली की जगह दूसरी को प्रनिस्थापित किया जाता है, उससे आय के वितरण में परिवर्तन को विभेदात्मक करापात कहा जाता है।

26.3 व्यवहार में करापात

एक आधुनिक सरकार की सदा यह जानने मे रुचि होती है कि (1) विचाराधीन कर का भार किस पर है, (2) इसके, प्रभाव क्या है? यह जानकारी प्राप्त करने पर वह अपनी समस्त आर्थिक और सामाजिक नीतियों के समरूप उपयुक्त कर समूहों कों सूत्रित कर सकती है।

व्यवहार में अक्सर किसी विशिष्ट करकेकरापात के प्रसार का यथार्थ रूप से अनुमान लगाना बहु त कठिन है। आईये इसके कारणों पर विचार करें।

आधुनिक अर्थव्यवस्था बहु त जटिल है। कर देनें वाली विभिन्न इकाइयाँ कई प्रकार के विक्रय और क्रय व्यवहार में लगी हु ई है। आप पहत्रे ही जानते ही कि एक कर-दाता कर दूसरों से वसूल कर सकता है। अर्थात वह दूसरों से कर का भुगतान करा सकता है। यह केवल/विक्रय-क्रय व्यवहार द्वारा ही हो सकता है। वह उसके द्वारा दिये गए कर का कुछ भाग, या तो जिन चीजों को वह वेचता है उनका विक्रय मूला बढ़ाकर वसूल क्रने हें अथवा जो वह खरीदता है उनका क्रय मूल्य कम करके। इस प्रकार कर भार का विवर्नन करने की उसकीक्षमता क्रय-विक्रय की गई वस्तुओं की मांग और पूर्ति की सापेक्षिक शक्तियों पर निर्भर करती है। इससे' किसी विशिष्ट कर के भार के विवर्तन का पता लगाना बहु त कठिन हों जाता है। परन्तु अधिक महत्वपूर्ण बाधा इस तथ्य द्वारा उत्पन हों जाती है कि कर विवर्तन केवल वास्तविक कर दाताओं द्वारा सम्पन किये गए सौदों तक ही सीमित नही होता। अक्सर यह क्रम अनन्त रूप में चलता रहता है। परिणामस्वरूप अन्त में कर भार अर्थव्यवस्था पर इस प्रकार प्रसारित हो जाता है कि इसकी अन्तिम स्थिति जानना लगभग असम्भव सा हो जाता है।

इस तर्क के आधार गर कुछ लोगों का दावा है कि कर के अन्तिम भार का अध्ययन करना ही सारहीन है। उनका कहना है कि कर का भार सब पर समान रूप से फैल जाता है इसलिए इस बात का कोई महत्व नहीं कि प्रारम्भ में कर किस पर लगाया गया। फिर भी यह दावा पूर्ण रूप से न्यायोचित नहीं है और अधिकारियों को सावधानी से करो का चुनाव करके ही लगाना चाहिए। अध्ययनों से पता चलता है कि कई करों के संबंध में हम अन्तिम कर भार के बिन्दु तक पहुंच सकते है जो कि वास्तविक बिन्दु के काफी समीप होता है। उदाहरण के' तौर पर प्रत्यक्ष करों के सम्बन्ध में कर विवर्तन इतना न्यूनतम होता है कि कुछ अर्थशास्त्री प्रत्यक्ष करों का परिभाषा इस प्रकार देने हैं कि यह वह कर होते है जिनमें कर भार का दूसरों पर विवर्तन नहीं हों सकता। ऐसे प्रत्यक्ष करों का उदाहरण आयकर, उपहार कर, मृत्युकर, धनकर आदि है। इसके विपरीत अप्रत्यक्ष करों का आसानी सें विवर्नन होनें की सम्भावना ' है। कई स्थितियों में प्राधिकारी स्वयं इन करो को इस आशय से लगाते है कि वह दूसरों से ठस किए जाये। उदाहरणकेलिए उत्पादन शुल्क उत्पादकों से वसूल किये जानें है परन्तु उनसे अपेक्षा की जाती है कि वह इन्हें ग्राहकों से वसूल करेंगे, इसी प्रकार यद्यपि बिक्री कर विक्रेताके द्वारा दिये जाते है परन्तु अपेक्षा की जाती है क्रेताओं द्वारा सहन किये जायेंगे, विक्रेताओं द्वारा नही। सामन्य तौर पर एक कर वहीं लगाना चाहिए जहां इसका भार डालने का उद्देश्य हो ताकि सके अर्थव्यवस्था पर अनचाहे (Unintended) प्रभावों को न्यूनतम किया जा सके। भी प्रशासनिक दृष्टिकोणा से ऐसा करना सदा सम्भव नहीं होता। परन्तु वास्तविकता यह है अधिकारियों को प्रत्येक कर के अन्तिम भार तथा प्रभावों, दोनों का पता लगाना चाहिए और इसे लगाने का उलम बिन्दु अपनाना चाहिए। प्राधिकारियों को यह भी सुनिश्चित करना कि अन्तिम करापात से आय और धन की विषमताओं में वृद्धि न हो तथा विनियोग, उत्पादन तथा व्यापार आटि पर इसके हानिकारक प्रभाव न पड़े।

दूसरे प्रकार से भी इसे समझता जा सकता है जिसके लिये दो बिन्दुओं पर ध्यान देना होंगा :

(अ) यह अपेक्षा नही की जा सकती कि करों के प्रभाव तटस्थ होंगे। वह अर्थव्यवस्था के कार्यो पर कई प्रकार के निर्णयों द्‌वारा प्रभाव डालते है। जिनसे विनियोग, बचत, तकनीक का चुनाव, साधनों का आवंटन, उपभोग और रोजगार आदि प्रभावित होते है। इसलिए अधिकारियों का उद्देश्य उपयुक्त कर प्रणाली का चुनाव करना होना चहिए। जो देश के सामाजिक और आर्थिक उद्देश्योंकेअनुरूप हों, न कि इनके विपरीत।

(ब) यह कहना भी गलत होगा कि प्रत्येक कर का भार पूरी अर्थव्यवस्था पर इस प्रकार फैल जाता है कि उसका पता लगाना ही व्यर्थ है। कई स्थितियों में अन्तिम का-भार के अनुमान लगाकर प्रयोग में त्नायै जा सकते है। वैसे भी हमारे देश में व्यक्तिगत: करों के करापात पर अध्ययन की कमी है इसलिए हमें उपलब्ध सूचना पर ही विश्वास करना होगा ताकि संबंधित निष्कर्षो पर पहुंचा जा सके।

समाज के विभिन वर्गों पर भारतोय कर प्रणालीकेभार का अधग्यन करते समय इसको प्रगतिशीलता की धारण सामने आती है। प्रगतिशील कर वह होता है जबकि कर आधार के बढ़ने कर करदाता का दायित्व भी निरपेक्ष तथा अनुपातिक दोनों रूप से बढ़ता जाता है। उदाहरणकेतौर पर आयकर के सम्बन्ध में जैसे-जैसे व्यक्ति की कर यौग्य आय बढ़ती जावै वैसे-वैसे उस द्‌वारा दिये जानै वाली कर की राशि भी निरपेक्ष तथा अनुपातिक रूप से बढ़ते जाना चाहिए। वास्तविक अर्थ में प्रगतिशील होनें का अर्थ है कि कर प्रणाली आय एवं धन की विषमताओं को कम करनें योग्य होनी चाहिए। अक्सर यह पता लगाना आसान नहीं होता है कि प्रणाली असमानताओं को कम करने से दृष्टिकोण से प्रगतिशील है भी कि नही क्योंकि असमानताओं को बढ़ाने में किन्ही और तत्वों का भी हाथ हो सकता है।

26.4 करापात तथा समाज के विभिन्न वर्गों का सम्बन्ध

समाज के विभिन वर्गों पर करलान जानना भीषण कार्य है। एक समय पर समस्या के केवल एक पहलू को लेकर प्रयास किया जा सकता है। मूल समस्या इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि एक नरफ तो बहुत सारे कर है जिनकी व्यवस्था काफी जटिल है। और दूसरी तरफ कई वैकल्पिक विधियाँ है जिनके द्‌वारा समाज को विपिन वर्गों में बाटा जा सकता है। पहले करो को ही लेते है। कई प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर है। उनमें छूटें, रियायतें और दूसरी व्यवस्थाएं भी है जिनसे यह देखना मुश्किल हो जाता है कि कौन कितना कर सहन करता है। व्यापारिक क्षेत्र पर लगाए गए करो के सम्बन्ध में विशेष रूप से ऐसा होता है। हम समाज के विभिन्न वर्गो पर कर भार जानने में रुचि रखते है। व्यापारिक क्षेत्र पर दूसरे आधासे पर कर लगाया जाता है जेसे व्यापार का आकार, इसके लाभ की स्थिति, उत्पादन का प्रकार और निर्यात राष्ट्रीय प्राथमिकताओं में इसका स्थान आदि-आदि। ऐसा कोई भी प्रत्यक्ष तरीका उपलब्ध नहीं है जिससे नापारी वर्ग द्‌वारा दिए गए करो को समाज के विपिन वर्गों के साथ यथार्थ रूप से संबंधित किया जा सके। इस संदर्भ में हमारा विश्लेषण अपूर्ण है।

इसी प्रकार कई वैकल्पिक रीतियाँ है जिनसे, समाज कों विशेष समूहों अथवा वर्गों में बांटा जा सकता है। उदाहरण के लिए हम जनसंख्या को कृषि और गैर-कृषि क्षेत्र में बांट सकते है अर्थात वह जो अपनी जीविका कृषि क्षेत्र से फास करते हैं तथा वह जो अन्य स्रोतो से प्राप्त करते है। दूसरे शब्दों में यह वर्गीकरण ग्रामीण और शहरी वर्गों में हो सकता है। उनकी आर्थिक स्तर के आधार पर भी, वर्गीकृत किया जाना सम्भव है। उस प्रकार से हम कई आर्थिक वर्गो के बारे में सोच सकते हैं, जो स्वयं कई तरीकों से बनाये जा सकते है। उदाहरण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोग औसत रूप से शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों से अधिक गरीब है। अनुशुक्त जाति तथा जनजाति के लोग सामान्य तौर पर समाज के दूसरे वर्गो की तुलना में अधिक गरीब है। इसका अर्थ है कि कई स्थिनियो में भिन्न आय वर्गो की निवास की स्थिति के साथ संबधिन किया जा सकता है। (शहरी या ग्रामीण, आर्थिक दृष्टि सें पिछड़े हुए क्षेत्र और राज्य आदि) अथवा रोजगार की प्रकृतिकेअनुसार (कृषि और उद्योग, वेतन भोगी और स्व: नियोजित व्यक्ति आदि) इस प्रकार करों तथा समाज के वर्गों के विभिन्न संयोग बनाये जा सकने है। इस इकाई में उनमे से कुछ का अध्ययन किया जायेगा।

26.5 महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष करो का भार (करापात)

इस भाग में हम कुछ महत्वपूर्ण प्रटग्श करो के संभावित करणत को देखेंगे। ऐसा करने के त्निए हम समाजकेसदस्यों को उनकी आय, रोजगार तथा निवास के क्षेत्र आदि के आधार पर अनेक वर्गों में बांटेगें।

(1) **आयकर -** सामान्य तौर पर यह माना य या है कि आयकर का भार विवर्निन नहीं किया जा सकना। यह अपने स्पर्श बिन्दु गर ही पड़ता है। हमारे देश में विशेष रूप से इसलिए है कि यहां अतिरिक्त श्रम की उपलब्धता की विशेष स्थिति है। इस लिए आयकर के करापात का निर्धारण करना यह पना लगाना है इस कर को कौन कितना देता है।

भारत में आययकर को अति प्रगतिशील दर अनुसूचियाँ है। इस प्रकार इसका अर्थ है कि इसका करापात उच्च आय वाले राज्यों पर बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त प्रारंभिक छूट की सीमा निम्नआय वाले लोगों कों इस कर से मुक्त कर देती है। तथापि व्यवहार में उच्च वर्ग के लोग भी अपना कर दायित्व पर्याप्त मात्रा में कम कर लेते है। ऐसा इसलिए होता है कि कई प्रकार के स्रोतो से प्राप्त आय में छूट और रियायतें मिल जाती है। इस स्रोतो में निर्यात, नई कम्पनियों की equity मे विनियोग तथा किया विशिष्ट प्रकार के रत्रोंतो को विनियोग आदि। कुछ प्रकार की बवतें स्वयं करदाता की कर योग्य आय को कम कर देता है। वह ध्यान देना महत्वापूर्ण है कि केवल उच्च आय वारने लोग ही वास्तव में इन रियायतो का लाभ उठाते है जिसका अर्थ है कि उन पर कर का भार: कम हों जाता: है। इसके विपरीत मध्यम आय वर्ग के लोग बचत नहीं कर पाने तथा उपर्धृ_क्त स्रोतो से आय प्राप्त नहीं कर सकते और इस प्रकार उनकी आय की तुलना में अधिक कर दैने है। इसके अतिरिक्त हमारें कर नियम व्यापार में कई खर्चो की छूट देते है। वाणिज्यिक सस्थानों के मालिक और उनकें शीर्ष स्तर के कर्मचारी इन व्यवस्थाओ, का लाभ उठाकर व्यक्तिगत व्ययों को कम्पनी के खर्च पर डाल देते है। इस प्रकार वह अधिक कर दियें बिना अधिक आय का लाभ उठाते है। आपको यह भी ध्यान होगा कि बड़े

पैमाने पर कर कौन की सयस्ग भा हमारे सामने आती है जिससे समाज के बड़े भागों पर इसका भार काम हो जाता है। यह इसलिए होता है कि हमारे कर नियमों की क्रियान्विति ठीक प्रकार से नहीं होता। दूसरा ध्यान रखने योग्य बिन्दु यह है कि कृषि आय पर कर केवल राज्य सरकारों द्वारा लगाया जाता है। केन्द्रीय सरकार द्वारा नहीं। और राज्य सरकारों इस कर को लगाने के प्रति उत्सुक नहों है। केवल कुछ राज्य इस कर को लगाते है। उन्होंने छूट की सीमा बहुत ऊंची तथा कर की दरें बहुत नीची रखी है। परिणामस्वरूप समूचा कृषि क्षेत्र लगभग कोई आयकर भार सहन नहीं करता। बल्कि यह गैर-कृषि आय वर्ग के लोगों पर केन्द्रित हो जाता है।

(2) **पूंजीगत लाभकर -** किसी विशिष्ट अथवा उससें लम्बे समय के लिए रखी सम्पत्ति के क्रय मूल्य सें जिनना उसका विक्रय मूला अधिक होता है उसे पूंजीगत लाभ कहा जाता है। इस पर लगाया गया कर आय कराधान का ही एक अंग होता है। यहां हमें ध्यान रखना चाहिए कि केवल धनी वर्ग ही समत्तियाँ रखतें है जिसपर कर योग्य पूंजीगत लाभ प्राप्त होता है। इसलिए जिस सीमा तक यह कर दिया जाता है इसका भार केवल उच्च आय वर्ग पर ही पड़ता

(3) **निगम कर -** यह कर वाणिज्यिक संस्थाओं की आय पर लगाया और वसूल किया जाता है। राजस्व के दृष्टिकोण सें यह भारत सरकार का बहुत महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष' कर है। कंपनियों की कर योग्य आय पर समान दर सें भारी कर लगाया जाता है। निगम कर के भार को परिशुद्धता से निर्धारण करना आसान नही है। एक तरफ तो इन संस्थाओं के अंशधारियों सेर, इनके मालिक होंने के काराग, आशा की जाती है कि कर भार वह सहन करें दूसरी और कुछ वाणिज्यिक संस्थान अपने माल की कीमन ऊची कर देते है या आदानों की व्यईमत कम कर देते है और इस प्रकार कर भार दूसरों पर डाल देतें है। सही स्थिति अलग-अलग कम्पनी में अलग-अलग प्रकार की होती है। तथापि सामान्य तौर पर हम कह देते है कि पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत काम कर रही अधिकतर कम्पनियों से कर भार स्वयं सहन करने की अधिकसम्भावना होती है एकाधिकृत प्रतियोगिता में कम्पनियां कर भार दूसरो पर डाल देने में समर्थ होती है।

(4) **केन्द्रीय सरकार के दूसरे प्रत्यक्ष कर -** इसके अतिरिक्त कुछ और प्रत्यक्ष कर भी है, इनमें वार्षिक धन-कर, उपहार कर, धन के उत्तराधिकार पर कर तथा कुछ प्रकार की व्ययों पर कर जैसे होटल तथा हवाई यात्रय पर कर आदि। इन करों की महत्वपूर्ण सामान्य विशेषतौं यह है कि उनसे बहुत सीमित सा सजस्व प्राप्त होता है। इस प्रकार अधिकारियों द्वारा संग्रह किये गयें कुल राजस्व में इन करों का विशेष महत्व नही है। इन करों की दूसरी विशेषता यह है कि प्रत्यक्ष करदाताओं के वर्ग में भी इनका भार कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित रहता है। इन करों का भुगतान करने वाले व्यक्तियों की संख्या अधिक सही और धनकर के अतिरिक्त कर देने वालों की संख्या तो और भी कम है।

(5) **राज्य सरकारों द्वारा लगाये गये प्रत्यक्षकर -** इन करों में कृषि आय पर कर, भू-राजस्व, व्यवसाय कर और भवनो पर कर शामिल है। प्रत्यक्ष करों में से कुछ स्थानीय निकायों को हस्तान्तरित किये जाते है और राज्य सरकारें इन्हें अपने लिये राजस्व संग्रह करने के लिए नही लगाती। इन स्थानीय प्रत्यक्ष करों का करापात उन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों पर ही

पड़ता है। जहां तक व्यवसाय कर का सम्बन्ध है, कैवत्न कुछ ही राज्य इसे लगाते है। इसकी दर बित्कुल नाम मात्र होती है। यह केवल आयकर दाताओं पर लगाया जा सकता है। वर्ष1989 तक इसकी राशि 250 रु प्रति वर्ष सें अधिक नही थी। अब इसकी संशोधित उपरी सीमा 2500 रु प्रति वर्ष है। सामान्य तौर पर ऐसा विश्वास है कि जिन व्यवसायी लोगों पर यह कर लगाया जाता है, वह इसें अपने ग्राहकों सें वसूल कर लेते है और इस प्रकार इसका। भार प्रसारित हों जाता है। जहां तक कृषि आयकर तथा भू-राजस्व का सम्बन्ध है, राज्य सरकारें इनकेस्रोतो से आय प्राप्त करनें के लिए उत्सुक नहीं है। कई स्थितियों में भू-राजस्व हटा दिया गया है या कम कर दिया गया है। इसका भार भू-स्वामियों पर पड़ता है, दूसरों पर विवर्तित नहीं किया जा सकता। कैंवल कुछ राज्यों द्वारा ही कृषि आयकर लगाया जाता है। इसमें छूट की सीमा अधिक तथा कर की दरें कम है। इसलिए इससे प्राप्त होने वाला कर राजस्व बित्कुल नगण्य है। चाहे कितना भी है इसका भार धनी कृषकों तक ही सीमित रहता है।

26.6 समस्त प्रत्यक्ष करो का करापात

इस भाग में हम समाजकेविभिन वर्गों पर समस्त प्रत्यक्ष करों के भार का विश्लेषण करेंगें।

आय वर्ग - प्रत्यक्ष करों का निर्धारण करदाता की करदान क्षमता के आधार पर किया जाता है। यह क्षमता आय, व्यय, धन तथा कुछ इसी प्रकार के सूचकों के आधार पर निर्धारित की जा सकती है। सामान्य तौर पर ऐसी मान्यता है कि प्रत्यक्ष कर, कर दाताओं द्वारा स्वयं ही वहन किये जातें है। हमे देखना है कि प्रत्यक्ष कर का भुगतान कौन करता है और कितना। भारत में प्रत्यक्ष कर प्रागाली की निम्न विशेषताएं है जिनसे हमें आय तथा धन की विषमताओं पर उनके करापात तथा प्रभाव का विश्लेषण करनें में सहायता मिलती है। -

(1) भारत में सामान्य तौर पर प्रत्यक्ष करें में कुछ प्रारंभिक छूट की सीमाएं होती है जिनके कारण गरीब वर्ग कर देने से बच जातें है। बल्कि समाज के धनी वर्ग द्वारा इनका भुगतान किया जाता है। उदाहरण के तौर पर कोई भी व्यक्ति जिसकी कर योग्य आय 60,000 रु. प्रति वर्ष से कम हो, उसे इस कर का भुगतान नहीं करना पड़ता। यही स्थिति धनकर, उपहार कर तथा दूसरे करों के सम्बन्ध में होती है।

(2) भारत वर्ष में प्रत्यक्ष कर खंड प्रणाली (Slab System) पर आधारित है अर्थात् जैसे-जैसें कर का आधार बढ़ता जाता है कर की दर भी बढ़ती जाती है। इससे भी वह अधिक प्रगतिशील बन जाते है। जैसे-जैसे हेम उच्च आय तथा धन के वर्गो की तरफ जाते है इसका भार भी बढ़ता जाता है। एक समय था जब कि उच्चतम खंड के लिए कर की सीमान्त दरें बहु त ही ऊंची होनी थी। पिछले दशक में, उच्चतम खंड के लिये कर की दरों को कुछ सीमा तक नीचा कर दिया गया है, अभी भी वह -प्रति प्रगतिशील है इसके साथ ही मूल्य में स्फीतिजनक वृद्धि होनेकेकारण इन करो की प्रगतिशीलता बढ़ती जा रही है स्फीति के कारण एक करदाता की आय तथा धन आदि का नाम मात्र मूल्य बढ़ जाता है जबकि उसके अनुरूप क्रय शक्ति में कोई वृद्धि नहीं होती। कर की दरों आय और धन के मौद्रिक मूल्यों पर होती है।

इसलिए कर दाता धनवान हुए बिना ही उंची आयकर के खंड में चला जाता है जिससे प्रत्यक्ष कर और भी प्रगतिशील बन जातै है।

(3) कुछ प्रत्यक्ष कर केवल उच्च आय वर्ग से वसूल करने के लिये बना,ये गये है। यहां होटल व्यय अथवा हवाई यात्रा पर व्यय का उल्लेख किया जा सकता है। या मान्यता है कि केवल धनी वर्ग ही इन सेवाओं का उपभोग करता है इसलिए इनका करापात।_भी केवल उन आय वर्ग पर ही होगा। इसे विपरीत प्रत्यक्ष करों में कुछ कमियां भी है जिनसे वह धनी वर्ग के लिये कम भार स्वरूप होते है -

(1) हमारे कर नियम बहुत जटिल है उनका पालन करने मे कई वैधानिक समस्याएं उत्पन्न हौती है। इसके अतिरिक्त हमारा कर संग्रह तंत्र भी इतना कुशल नहीं है। निश्चित रूप से कह सके कि प्रत्येक संभावी करदाता वास्तव में उनका भुगतान करता हें। बड़ी लोगों के पास कर योंग्य आय तथा धन है, जों बड़ी मात्रा में पूंजीगत लाभों से प्राप्त हुई है, फिर भी वह प्रत्यक्ष कर नहीं देते। वर्तमान में प्रत्यक्ष कर देने वालों की संख्या तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम है जितनी कि देश में होनी चाहिए। इस प्रकार बहुत से लोग बिस्कूल भी कर नहीं देते या जितना देना होता है उससे बहुत कम देते है और बड़े पैमाने पर कर वंचन होता है। रसके अतिरिक्त कर नियम बहुत जटिल है। विधि विशेषज्ञ कानूनी तौर पर कर परिहार के तरीबें ढूंढ निकालते है। परिणामस्वरूप जहां नियम के अनुसार कर अधिक प्रगतिशील है और समाप्त के धनी वर्ग पर उनका भार अधिक होना चाहिये वहां वास्तव में ऐसा नही होता। धनी वर्ग द्यरा जितना दैना चाहिए, उससे बहुत कम ही भुगतान करता है।

(2) वैसे भी देश में व्यापक गरीबी के कारण प्रत्यक्ष करों का आधार बहुत बड़ा नही है। हमें प्रत्यक्ष करों द्वारा पर्याप्त राजस्व संग्रह करने की आशा नहीं कर सकते। बल्कि अप्रत्यक्ष करो पर निर्भर रहना पड़ता है। वर्तमान में, उदाहरण के लिए, कर राजस्व का केवल 1/5 भाग प्रत्यक्ष करों द्वारा अल किया जाता है जबकि 4/5 भाग अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त किया जाता है। यदि हम माने कि सभी प्रत्यक्ष करों का कराघात तथा करापात उन्हीं कर दाताऑ पर है, और करदाता उसे दूसरों से अत नही कर सकते तो इसका अर्थ होगा कि हमारे। समूचे प्रत्यश कराधान का भार धनी वर्ग पर होगा। अब यदि यह मान्यता सही भी हो, तो इसका अर्थ केवल यही होगा कि धनी वर्ग केवल प्रत्यक्ष करों का 1/5 भाग और अप्रत्यक्ष करो के उनके भाग का भार ही सहन करते है। इसलिए यदि हम यह जानना चाहें कि भारत में कर भार कौन सहन करता है तो इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले हमें प्रत्यक्ष करों के समन्ध में स्थिति जाननी होगी।

क्षेत्रवार वर्ग - यदि हम जनसंख्या को उन वर्गों में विभाजित करें जो प्राथमिक रूप सें कृषि पर आधारित है तथा जो वर्ग कृषि पर आधारित नहीं है तो हम देखते है प्रतयक्ष करों का भार गैर कृषि क्षेत्र की तुलना में कृषि क्षेत्र पर कहीं कम है। में दिये विश्लेषण से यह परिणाम निकलता है। कृषि पर प्रत्यक्ष कर बहुत ही हलके रूप से लगे हुए है तथा उनसे प्राप्त राजस्व भी बहुत ही कम है। अधिकांश प्रत्यक्ष करों का भुगतान गैर कृषि वर्ग द्वारा किया जाता है।

हमारे देश में ग्रामीण जनसंख्या प्रधानत : कृषि पर निर्भर करती है और हमारे ग्रामीण उद्योग अभी भी शिशु अवस्था में है। तदनुसार यदि हम जनसंख्याकोग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में

बांटे तो कृषि और गैर-कृषि क्षेत्र से संबंधित करापात के निष्कर्षों का लगभग समान रूप से इनमें लागू किया जा सकता है हम सुरक्षित रूप से कह सकते है कि प्रत्यक्ष करों का मुख्य भार शहरी जनसंख्या पर होता है। ग्रामीण जन-संख्या इनका बहुत थोड़ा भाग सहन करती है। अधिक विशिष्ट रूप में, कुछ प्रत्यक्ष कर जैसे धन कर, कृषि शेत्र पर लागू होतै ही नहीं है, जबकि कुछ दूसरे करों से केवल सीमान्त राजस्व की प्राप्ति होती है जिनका भार करदाताओं द्वारा महसूस ही नहीं किया जाता। इस प्रकार बहुत थोड़ी से मुख्य रूप सें ग्रामीण उद्योगों जैसें मछली पालन मुर्गी पालन, मधु-मक्खी पालन, डेयरी व्यवसाय आदि पर या तो कोई प्रतयक्ष कर नहीं लगाया जाता या बहुत ही कम लगाया जाता है। फिर भी आपको याद रखना चाहिए कि खनन या कुछ प्रकार की वाणिकी पर आयकर तथा दूसरे कर लगाये जाने है। फिर भी यह धारणा है कि बड़े स्तर पर कर वंचन के कारण इन व्यवसायों में लगे व्यक्ति उतना कर भार वहन नहीं करते।

स्थिति अनुसार वर्ग - ऐसा होता है कि हमारें देश के कुछ क्षेत्र बहुत ही गरीब है और उनमें बहुत थोड़े उद्योग ऐंसे है जिनपर कर लगाया जाता है। परिणामस्वरूप हम देखते है कि प्रत्यक्ष कर का भुगतान करने वाली भारतीय जनसंख्या भौगौलिक दृष्टि सें समान रूप से वितरित नहीं है। इस प्रकार प्रत्यक्ष करदाता मुख्य रूप से कुछ राजधानी क्षेत्रों वात्ने नगरों जैसें बम्बई दिलनी, कलकत्ता, मद्रास आदि तथा अन्य बड़े नगरों में केन्द्रित है। दूसरे दृष्टिकोण में देंखे तो प्रत्यक्ष करदाता कुछ धनी राज्यों और उनमें भी कुछ (Advanced) उन्नत क्षेत्रों में केन्द्रित है। हमारे देश के गरीबी पहाड़ी जिले और विशाल जनजाति क्षेत्र प्रत्यक्ष करों द्वारा राजस्व में बहुत कम अंशदान देते है।

रोजगार वर्ग - यदि हम जनसंख्या को कर्मचारी (Employees) तथा स्व नियोजित व्यक्तियों में बांटें तो हम देखेंगे कि स्वत : नियोजित की अपनी आयकेअनुपात में बहुत कम प्रत्यक्ष कर भार वहन करतें है। स्व :नियोजित वर्ग में बड़ा अनुपात कृषि से अपनी जीविका कमाने वालों का है तथा शिल्पकारों का है। यह लोग शायद ही कोई प्रत्यक्ष कर देते हैं। दुकानदार व्यापारी, निर्माता और परिवहन में लगे व्यक्ति मुध्व्यत : स्व :नियोजित होते है। वह या तो अपनी आय कों छुपा कर या अपने कुछ व्यक्तिगत व्ययों को व्यापारिक खर्चो पर दिखाकर कुछ सीमा तक अपने कर दायित्व को कम कर त्नेते है। इसी प्रकार की रियायतो का त्नाभ उनके उच्च आय प्राप्त कर्मचारी भी उठाते है जिन्हें व्यापार के खर्चे पर तथा अतिरिक्त व्यक्तिगत सुविधाएं भी प्रदान की जाती है। परन्तु मध्यम तथा निम्म स्तर के, कर्मचारी सामान्य रूप से आयकर नहीं बचा पाते।

बोध प्रश्न - 1

अपने उत्तरों का इस इकाई के अन्त में दिये गये उलसे से मिलान कीजिए।

1. सही अथवा गलत पर ✓ चिन्ह लगाईये: -
   (अ) कृषि आय पर केन्द्रीय सरकार द्वारा कर लगाया जा सकता है। सही/गलत
   (ब) कोई भी राजा कृषि आय पर कर नहीं लगाती। सही/गलत
   (स) भारत में प्रत्यक्षकरों में प्रारम्भिक छूट की सीमा हौती है। सही/गलत
   (द) करापात केवल विक्रय-क्रय व्यवहार द्वारा ही विवर्तित किया जाकता है। सही/गलत

(य) आधुनिक सरकार की कर प्रणाली अपने प्रभावो में तटस्थ हो सकती है। सही/गलत

2. कराघात तथा कर के प्रभाव में अन्तर लाट कीजिए।
3. कर के आधार की परिभाषा दीजिए।।
4. कर के अग्रगामी विवर्तन तथा प्रतिगामी विवर्तन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. क्या आप इस कथन से सहमत है कि हमारें प्रत्यक्ष करो का भार धनी तड़ा शहरी वर्ग पर अधिक पड़ता है?

26.7 अप्रत्यक्ष करो का करापात-अवधारणा सम्बन्धी विचार

वस्तुओं के निर्माण, (Processing) विधायन, (Packaging), संवेष्टन, भंडारण, परिवहन, वितरण, बिक्री, आयात-निर्यात तथा उपयोग पर लगाये गये करो को अप्रत्यक्ष कर कहते है। यह कर कई प्रकार की सेवाओं की व्यवस्था तथा उपभोग पर भी लगाये जा सकते है।

हमारे देश में अप्रत्यक्ष करो द्वारा कुल कर राजस्व का लगभग 4/5 भाग प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार इनका कर संरचना में प्रधान तथा अपरिहार्य स्थान है। उनमें उन श्रैणी का उत्प्लावन (Buoyancy) प्रभाव दिखाई देता है अर्थात जैसे-जैसे आर्थिक क्रियाओं में वृद्धि होती जाती है, अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त राजस्व में वृद्धि होती रहती है। केन्द्रीय शरकार के लिये, अप्रत्यक्ष करो में सबसे महत्वपूर्ण केन्द्रीय उत्पादन शुल्क है। इनकी प्राप्तियों में सें कुछ भाग राज्य सरकारों को दिया जाता है। केन्द्र के लिये दूसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष कर सीमा कर है। वह मुख्यतया आयात करों के रूप में होता है न कि निर्यात करो के रूप में। इसी प्रकार राज्य सरकारों के लिये भी सबसे अधिक आय प्रदान करनें वाला अप्रत्यक्ष कर उत्पादन शुल्क ही है (विशेषकर मनुष्यों द्वारा उपभोग में लाई जाने वाली तथा औषधि तथा प्रसाधन संबंधी सामग्री खाने में काम में आने वाली मंदिर! जिस पर केन्द्र सरकार द्वारा कर त्ताया जाता है और राज्य सरकारों द्वारा वसूल किया जाता है) और बिक्री कर आदि।

आईये हम सामान्य रूप से विचार करें कि इनका भार कौन वहन करता है। अधिकारियों द्वारा स्वीकार किया गया है कि अप्रत्यक्ष करो को क्रेताओं पर विवर्नित करने का आशय होता है जिससें उनका अंतिम भार उपभोक्ताओं पर पड़े न कि उत्पादकों पर, व्यापारियों पर या दूसरे पूर्तिकर्ताओं पर। सिद्धान्त में अक्सर इस आशय के बारे में प्रश्न किया जाता है और यह कहा जाता है कि किसी विशेष अप्रतयक्ष करकेभार का बंटवारा कर लगी वस्तु की सापेक्षिक मांग की लोच और पूर्ति की लोच की शक्तियों पर निर्भर करता है। फिर भी जब हम समूचे अप्रत्यक्ष करो के ढाचें पर विचार करें तो यह निष्कर्ष लागू नहीं होता। इस परस्पर विरोधी स्थिति की व्याख्या निम्न प्रकार है :

किसी वस्तु पर कर लगाया जाता है तो इसका भार विक्रेता को सहन करना पड़ सकता हैं क्योंकि क्रेता उसकी वास्तविक कीमत तथा कर देनेकेरिनने तैयार नहीं होते लेकिन ऐसी स्थिति केवल अस्थायी रूप से होगी, यदि उत्पादक अधिक लाभकारी विनियोग कर सकें। इसलिए दीर्धकालीन में कर लगी वस्तु की पूर्ति कम हो जायेगी और, 'इस-का मूल्य बढ़ जायेंगा इसलिए कर भार क्रेता पर विवर्तित हो जायेगा। यदि कर लगी वस्तु का एकाधिकार हो, उत्पादक पूर्ति को समायोजित करे बिना किसी दूसरे उद्योग में विनियोग कों स्थानान्तरित

किये, कर भार कों क्रेताओं पर डाल सकता है। अब उस स्थिति पर विचार कीजिए जब अधिकतर वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर लगा हो। ऐसी स्थिति में जब तक कर भार क्रेताओं पर नही डाल दिया जाय विनियोग पर औसत आय की दर कम लाभप्रद हो जाती है। यदि किन्हीं कारणों से ऐसा न किया जा सकें तो विनियोग पर हानि होगी। वस्तुओं की पूर्ति कम हो जायेगी और मूल्य बढ़ जायेंगे। तर्क का मुख्य जोर इस बात पर है कि व्यक्तिगत अप्रत्यक्ष कर का भार विक्रेता पर हो सकता है परन्तु यह केवल एक अस्थाई घटना होगी। इसकी दीर्घकालीन आधारभूत प्रवृति क्रेताओं पर विवर्तित होने की होगी। परिणामस्वरूप यह मान्यता उचित है कि दीर्घकालीन में समस्त रूप से अप्रत्यक्ष करों का भार क्रेताओं पर पड़ता है।

अब सीमा करों कों लेते है। इनके सम्बन्ध में विदेशी पूर्तिकर्ता पर विदेशी क्रेताओं पर कर भार डाला जा सकता है। यदि व्यापार-वस्तु की मांग और पूर्ति की लोचें अपने पक्ष में ही। फिर भी भारत में ऐसी स्थिति नही है। इसी कारण से आयातित वस्तुओं की हमारी मांग की लोचें बहुत नीची है। हम उनसें वंचित रहने की अपेक्षा बहुत ऊँची कीमत भी देने को तैयार रहते है। हमारी सौदा करने की शक्ति बहुत कमजोर है।

दूसरी ओर कई स्थितियों में, हमारे आयातो के शइात कर्ता आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है और उनकी सौदा करने की शक्ति भी अधिक है। परिणाम स्वरूप हमारे देश में सम्पूर्ण आयात-कर अधिकतर आयातकी द्वारा सहन किये जाते है और वह इन्हें अंतिम उपभोक्ताओं पर डाल देने में समर्थ होते है। इन्हीं कारणोंसे हम निर्यात-कर लगाकर हमारे निर्यातो का मूल्य नही बढ़ा सकते बल्कि हमें निर्यातका को आर्थिक सहायता तथा दूसरे नगद प्रलोभन देने पड़ते है ताकि उनके लिये निर्यातो का पर्याप्त रूप से लाभकारी होना सुनिश्चित हो जाये।

भारतीय वस्तु बाजार की दो महत्वपूर्ण विशेषताये हमे अप्रत्यक्ष करों का विश्लेषण करने में सहायता करती है।

1. कई कारणों से हमारे देश में लम्बे समय से सभी वस्तुओं की पूर्ति, जिनमें आयातित वस्तुए भी शामिल है, कम है और
2. हमारे बाजारों में प्रतियोगिता के भी अपर्याप्त तत्व पाये जाते है। इन विशेषताओंकेकारण हमारे उत्पादकों के लियें रक्षित (Sheelted) बाजारों की रचना हुई है।

जहां वह घटिया किस्म की वस्तु को ऊँचे मूल्यों पर बेच सकते है। ऐसे वातावरण में प्रत्यक्ष करों को लगाने का क्षेत्र सीमित हो जाता है और (केन्द्रीय तथा राज्य दोनों स्तरों पर) सरकार को पर्याप्त राजस्व प्राप्ति के लिये अप्रत्यक्ष करों पर निर्भर रहना पड़ता है। दुर्भाग्यवश, अप्रत्यक्ष कर केवल अंतिम उपभोक्ता वस्तुओं तक ही सीमित नहीं थे बल्कि वह उत्पादन तथा विधायन (Procesing) आदि के विभिन चरणों पर त्नगाये जाते थें जिसका परिणाम मूल्य-प्रपतन प्रभाव कहलाता था अर्थात कर शुद्ध (Value added) पर ही नहीं देने पड़ते थेबल्कि पहले के स्तरों गर दिये गये करो पर भी देनें पड़ते थे। यूइक बहुत कम कर मूल्यानुसार होते थे (अर्थात वह वस्तुकेमूल्य के आधार लगाये जाते थे) वस्तु के कुल मूल्य मे कर राशि चक्रवृद्धि ब्याज की तरह बढ़ती जाती थी। कुछ सीमा तक यह दोष कुछ चुनी हुई निर्माणी उद्योंगों मे

(Value added) कर को लगाने से दूर किया गया है। परन्तु मूल्य-प्रपतन (Price- cscadus effect) प्रभाव की समस्या अभी भी रहती है।

जब मूल्यो पर स्फीतिजनक प्रभाव होता है तो उत्पादक अप्रत्यक्ष करो का भार बड़ी आसानी सें क्रेताओं पर डाल देते है। हमारे देश में, हम कह सकते है कि सभी अप्रत्यक्ष करो क्य भार अंतिम उपभोक्ताओं पर पड़ता है।

26.8 समाज के विभिन्न वर्गों पर अप्रत्यक्ष करो का भार

उपभोक्ता बनाम उत्पाद (वस्तु)

इस इकाई के भाग 26.6 में प्रस्तुत विश्लेषण से स्पष्ट है कि हमारे देश में अप्रत्यक्ष कर उपभोक्ताओं द्वारा सहन किये जाने है। इसलिये. यदि हम समाज को व्यापारी तथा गैर व्यापारी वगई में विभाजित करे (व्यापारी वर्ग के अंतर्गत निर्माता तथा व्यापारी दोनों ही शामिल है) तो हय देखने है कि अप्रत्यक्ष करों का समस्त भार, गैर व्यापारी वर्ग पर पड़ता है। वास्तव में ऐसी स्थिति में पूर्तिकर्ता कर की राशि से भी अधिक वस्तु का मृत्यु बढ़ा देते हें। यदि हम अप्रत्यक्ष करों के वंचन को भी ध्यान में रखें तब लाट है कि उपभोक्ताओं पर कर भार कर की राशि से कहीं अधिक पड़ता है।

आय वर्ग - अप्रत्यक्ष करों की प्रकृति अति प्रतिगामी होती है। वह कम आय वर्ग पर अधिक भार डालते है। इसलिए अप्रत्यक्ष कर समाजवदी समाज के उद्देश्यों की विपरीत कार्य करने है जिसमें आय और हान की विषमताओं को आवश्यक न्यूनतम स्तर तक कम करना होना है। फिर भी तीव योजना बद्ध आर्थिक विकासकेउद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्राधिकारियों को सार्वजनकि विनियोग तथा दूसरा क्रियाओंकेलिए अधिक राजस्व की अवश्यकता होती है। तदनुसार उनके लिये अप्रत्यक्ष करो पर अधिक निर्भरताकेअतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होता। फिर भी अप्रत्यक्ष करो के प्रतिगामी प्रभावों को न्यूनतम करने के लिए कुछ कदम उठाये गयें है।

प्रथम, बड़ी संख्या में कुछ वस्तुए जिन्हें गरीब वर्गकेलिए आवश्यक समझ गया उन्हें या तो अप्रत्यक्ष करो से मुक्त कर दिया या बहु त ही हल्के कर लगाये गयें। इस प्रकार उदाहरण के लिए Non-Processed) खाद्य-पदार्थो को सामान्य तौर पर अप्रत्यक्ष करो से मुक्त रखा गया है' जब कि दूसरे विद्यायिन (Processed) और डिब्बा बन्द खाद्य-पदार्थो पर, जिन्हें मुख्यरूप से क्या वर्ग उपभोग करते है (जैसे चोकलेट, वातित पेय, जैम्स और जैलीस आदि)कर लगाये जाते हैं।

दूसरे जो वस्तुए गैर-आवश्यक और विलासिता की मानी जाती है जैसे की मोटर गाड़ी, बिजली का सामान, और दूसरी वस्तुए उन पर उत्पादन शुल्क और बिक्री कर लगाये' जाते है अतिरिक्त कर की दर भी सामान्य रूप सें इन चीजों की अधिक मंहगी किस्मों पर अधिक ऊँची होती है।

अप्रत्यक्ष कर जांच समिति की (अध्यक्ष श्री एल. के. झा) वर्ष 1973-74 के लिये 1977 में दी गई रिपोर्ट से जैसा कि संलग्न नालिका में दर्शाया गया है, पता चलता है की कुल व्यय के अनुपात में (कुल नगद व्यय के भी।) अप्रत्यक्ष कर प्रति व्यक्ति मासिक व्ययकेबढ़ने के साथ-साथ बढ़ते जातें है। इसका अर्थ है कि ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष'

करोकेभार की प्रकृति प्रगतिशील है। चाहे निष्कर्ष बहुत पुराने करो सें सम्बन्धित है परन्तु सामान्य निष्कर्ष अभी भी, वैसे ही लागू होते है। परन्तु तब भी अप्रत्यक्ष करों का भार गरीब वर्ग के लिए बहुत अधिक और भार स्वरूप हें। विशेषकर उस स्थिति में जब कि कर भार की इन लिगो की आय स्तर से तुलना की जाती है। सरकार को सर्वसाधारण के उपभोग में आने' वाले कई औद्योगिक पदार्थो पर कर लगाना पड़ता है। चाहे ऐसा वस्तुओं पर कर की दर कम हो रखी जाती है। परन्तु गरीब करदाताओं द्वारा इनका भार बहुत अधिक महसूस किया है। अत्यन्त गरीब लोगो जैसे भूमिहीन श्रमिक अनुसूचित जाति तथा गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोगों को भी कई ऐसी चीजें खरीदनी पड़ती है जिनपर कई प्रकार के अप्रत्यक्ष कर लगे होते है और इसी कारण उनके मूल्य ऊंचे हो जोते है। यदि हम इस तथ्य पर ध्यान दें कि हमारे देश में बहुत अधिक अप्रत्यक्ष कर वंचन होता है, जब कि उपभोक्ताओं को उनका भुगतान करना पड़ता है इस तरह गरीब वर्ग पर उनका भार और भी अधिक भयंकर हो जाता है।

क्षेत्रवार वर्ग - अब हम कृषि क्षेत्र तथा गैर-कृषि क्षेत्र में लगे व्यक्तियों पर अप्रत्यक्ष करों के भार के प्रश्न पर विचार करते है। निष्कर्ष यह है कि गैर-कृषि क्षेत्र, कृषि क्षेत्र की तुलना में अधिक करो का भुगतान करता है। इसका एक कारण तो यह है कि कृषि यंत्र तथा पैट्रोलियम पदार्थों के अतिरिक्त कृषि के अधिकतर Inputs आदानों पर या तो कर लगे नहीं हुये या बहुत ही कम लगे हुये है। इसके विपरीत औद्योगिक क्षेत्र द्वारा उपयोग में लिये गये अधिकतर आदानों (Inputs) पर कर लगाये गये है। कृषि क्षेत्र पर कर के न्यून भार का दूसरा कारण यह है कि किसान तथा कृषि मजदूर दूसरे व्यवसायों में रोजगार प्राप्त उनके प्रतिरूप से बहुत गरीब है तथा वह कई करारोपित वस्तुओं का उपयोग कर भी नहीं सकतें (चाहे उनके पास उन्हे खरीदने के साधन भी हो। क्योंकि उनका प्रयोग करने की उनके पास सुविधायें नहीं है। उदाहरण के लिए एक धनी किसान फ्रिज का प्रयोग नही कर सकता यदि जहां पर वह रहता है वहा बिजली न हो। इसके अतिरिक्त उनके रहने की आदतें ऐसी है कि वह कर मुक्त वस्तुओं के प्रयोग की प्राथमिकता देते है। वह बहुत ही सीमित मात्रा में विस्थापित (Processed) या डिब्बा (Packed) बन्द खाद्य पदार्थो, बढ़िया कपड़ा तथा इसी तरह की दूसरी चीजों का उपभोग करते है परन्तु हमें यह भी विश्वास नही कर लेना चाहिए कि जो लोग अपनी जीविका कृषि से प्राप्त करने है वह अप्रत्यक्ष करो का भार बिल्कुल भी नहीं वहन करते। हम उपरोक्त कारणों के आधार पर केवल इतना कह सकते है कि उन पर कर भार बहुत ही कम है।

स्थितिवार वर्ग - हमारे देश में ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि से अपनी जीविका प्राप्त करने वाले लोग कारीगर तथा शिल्पकार निवास करते है। दूसरी और जो लोग गैर-कृषि व्यवसाय में लगे हुयें है वह मुख्य रूप से शहरी क्षेत्रों तथा औद्योगिक नगरों में केन्द्रित है। तदनुसार जो निष्कर्ष क्षेत्रवार वर्गाकरण के संदर्भ में प्राप्त किये गये है वहीं ग्रामीण तथा शहरी वर्गों पर भी लागू होते है। कुल-मिलाकर शहरी क्षेत्रों के लोगों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रो के लोगों पर अप्रत्यक्ष करो का भार कम है। अप्रत्यक्ष कर जांच समिति (जिसका ऊपर संकेत दिया गया है) ने ग्रामीण तथा शहरी लोगों पर अप्रत्यक्ष करो के भार की तुलनात्मक अध्ययन किया है। (संलग्न तालिका में देखिये)। इससे पता चलता है कि प्रत्येक आय वर्ग के लिए ग्रामीण क्षेत्र पर

कर भार कम तथा शहरी क्षेत्र पर अधिक है। यह निष्कर्ष उन दोनों स्थितियों में लागू होता है जब करो पर, किसी आय वर्ग के कुल व्यय के अनुपात में अथवा कुल नकद व्यय के अनुपात विचार किया जायें।

इसलिए निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हे कि, यद्‌यपि धनी वर्ग द्‌वारा कर वंचन को कम करने के लिये कई तत्व काम करते है, अपनी सम्पूर्ण कर प्रणाली काफी प्रगनिशील है। कर का भार धनी लोगों पर गरीबों की अपेक्षा अधिक है। इसी प्रकार ग्रामीण तथा कृषि वर्गो पर भी कर भार कम है।

बोध प्रश्न - 2

अपने उत्तरों का इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से मिलान कीजिये।

1. व्यक्तिगत कर का भार विक्रेता पर हो सकता है, परन्तु समस्त अप्रत्यक्ष करों का नहीं, क्यों?
2. भारतीय आयात और निर्यात पर सीमा कर भारतीयों द्‌वारा क्यों सहन किये जाते है?
3. हमारे अप्रत्यक्ष करो की किन विशेषताओं के कारण उनका भार समाज के गरीब वर्गों पर कम हो जाता है।

26.9 सारांश

समाज के विभिन्न वर्गों पर करापान का अध्ययन करने के लिये, हमने कर के कराधात, करापात तथा प्रभावों की धारणाओं में 'अन्तर से प्रारम्भ किया। कराघात उन पर होता है जिनका कर देने का वैधानिक दायित्व होता है। इसका करापात उन पर होता है जो अंतिम रूप से इसें वहन करते है और करों के प्रभाव का अर्थ है कि इनको लगाने से तथा इनमें परिवर्तनों से अर्थव्यवस्था में क्या प्रतिक्रियायें तथा परिवर्तन होने है। कर के भार को केवल विक्रय/ क्रय त्यौहार द्‌वारा विवर्तित किया जा सकता हें। 'यदि विक्रय बढाया जाता है तो अग्रगामी विवर्तन होगा और यदि क्रय मूल्य कम किया जाता तो यह प्रतिगामी विवर्तित होगा। वर्तमान में प्रत्येक सरकार ऐसी कर-संरचना अपनाने में रुचि रखती है जिसका करापात इसके समस्त नीति उद्देश्यों के अनुरूप हे। व्यवहार में विभिन्न क्षेत्रों तथा उद्‌योगो की पारस्परिक निर्भरता के कारण प्रत्येक कर का भार जानना वैसे भी बहुत कठिन होता है परन्तु इसके अन्तर्निहित महत्व के कारण, हमे कर भार निर्धारण के प्रयासों को छोड़ना नहीं चहिये। करों के प्रभाव तटस्थ नहीं हो सकते और उनके प्रभाव बहुत सीमा तक उनके करापात पर निर्भर करते है।

समाज के विभिन्न वर्गों पर करो के भार का अध्ययन करने के लिये, हमने देखा कि समाज को कई प्रकार के आधारों पर विभिन्न वर्गो में बाटा जा सकता है। हम आय, क्षेत्र तथा स्थिति आदि के अनुसार श्रेणियां बना सकतें है और महत्वपूर्ण व्यक्तिगत करों का अथवा समूची कर प्रणाली के करापात का इन वर्गो के सम्बन्ध में अध्ययन कर सकते है।

प्रत्यक्ष करो के सम्बन्ध में, हमने देखा कि आयकर का भार स्वयं करदाताओं द्‌वार सहन किया जाता है। चाहे कई प्रकार की छूटे तथा रियायतें है, जैसे-जैसे निम्न से उच्च आय वर्ग की ओर जाने हे कर भार भी बढ़ता जाना है। इसी प्रकार पूंजीगत लाभ कर केवल धनी वर्ग

द्वारा दिया जाता है। निगम कर का भार आंशिक रूप से अंशधारियों पर पड़ता है तथा आंशिक रूप सें उपभोक्ताओं पर डाल दिया जाता है।

दूसरे केन्द्रीय प्रत्यक्ष करों का करापात परिमाण (Magnitude) में बहुत कम होता है परन्तु लगभग उन्ही तक सीमित रहता है जिनपर वह लगाये जाते है। राज्य द्वारा लगाये प्रत्यक्ष करो के सम्बन्ध में हम देखते है कि वह कुछ प्रत्यक्ष कर तो लगाती नही है और दूसरों में भी ऊँची छूट की सीमा तथा कर की दरें कम है। कई राज्यों में भू राजस्व समाप्त कर दिया है या कम कर दिया है। कृषि आय कम कर भी केवल कुछ ही राज्यों में लगाया जाता है। कुछ प्रत्यक्ष कर जैसे सम्पति कर स्थानीय निकायों को स्थानान्तरित कर दिये गये है। उनके सम्बन्ध में करापात केवल स्थानीय करदातओं पर पड़ता है। जब हम समस्त प्रत्यक्ष करो के करापात का विश्लेषण करते है तो छूटों तथा इन्हें लागू करने के दोषपूर्ण नियमों का ध्यान रखते हुये हमे प्रतीत होता है करापात उच्च आय वर्ग पर अधिक है। कई कारणों से कर वंचन संभव हो जाता है जिनमें कर नियमों की जटिलता उनमें से एक है। रोजगार वर्ग के सम्बन्ध में दूसरे क्षेत्रों की तुलना में कृषि क्षेत्र पर कर भार बहुत ही कम हें। स्थिति के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र कम प्रत्यक्ष कर देता है। इसी प्रकार यदि हम समाज को स्व :नियोजित तथा दूसरे वर्गो में विभाजित करे तो पहले वर्ग को दूसरे की तुलना में कम कर-भार वहन करना पड़ता है।

भारत में अप्रत्यक्ष कर इस आशय से लगाये जाते है कि उनका अन्तिम रूप से उपभोक्ताओं द्वारा भुगतान किया जायेगा। हमारे देश में विशेष रूप से यह सच है क्योंकि दशकों से यहा दुर्लभता की स्थिति रही है हमारे बाजार गैर-प्रतियोगी थे, विक्रेता घटिया किस्म की वस्तु भी ऊंचे मूल्य पर बेच सकते थे केवल व्यक्तिगत अप्रत्यक्ष करों में ही कर भार आशिक रूप सें अल्प काल के लिये विक्रेताओं पर हो सकता है। सीमा करो के सम्बन्ध में, मांग औंर पूर्ति की लोचे ऐसी होती है कि इनका भार सदा भारतीय आयातकों तथा निर्यातकों पर पड़ता है न कि विदेशियों पर।

अधिक गरीब वर्गों पर अप्रत्यक्ष करो के भार को कम करने के लिये प्राधिकारी(Unprocessed) तथा (Unpacked) खाद्य पदार्थो पर कर नहीं लगाते। गरीब वर्ग द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली कई दूसरे चीजों पर बहुत कम कर लगाये जाते है जबकि धनी की द्वारा खरीदी जाने वाली वस्तुओं पर अधिक कर लगाये जाते है। अप्रत्यक्ष कर जांच समिति के अध्ययन से पता चलता है कि जैसे-जैसे गरीब आय वर्ग से धनी आय वर्ग की और जाते है अप्रत्यक्ष कर का भार प्रति व्यक्ति मासिक व्यय के अनुपात में बढ़ता जाता है। इसी प्रकार शहरी लोगों की तुलना में ग्रामीण पर कर भार कम पड़ता है।

26.10 शब्दावली

कराघात उन पर होता है जिन पर इसका भुगतान करने का वैधानिक दायित्व होता है।

करापात कर के अन्तिम विश्राम स्थल को व्यक्त करता हें। अर्थात करापात उन पर होता है जो अंतिम रूप से इसे सहन करते है।

कर के प्रभाव, इसके लगाने से अथवा परिवर्तन से अर्थव्यवस्था में परिवर्तनोंकोदर्शाते है।

"जैसे को तैसा" का अर्थ है किसी वस्तु को प्राप्त करनें के बदले कुछ दिया जाना। कर में "जैसे कों तैसा नही होता”

कर के आधार का अर्थ उस वस्तु की वैधानिक व्याख्या है जिसके संदर्भ में कर दायित्व का निर्धाराग किया जाता है।

कर विवर्तन तब होता है जब करदाता आशिक क्या से या पूरी तरह, या तो अपनी वस्तु का विक्रय मूल्य बढ़ाकर अथवा अपने द्वारा क्रय की गई वस्तुओं का क्रयमूल्य कम करे तो दूसरों से वसूल करना है। पहले प्रकार का विवर्तन अग्रगामी विवर्तन तथा दूसरा प्रतिगामी विवर्तन है।

कर की दर अनुसूची उन दरों को व्यक्त करती है जिन पर कर के आधार में परिवर्तन होने से कर दायित्व का निर्धारण किया जाता है।

पूंजीगत लाभ कर किसी सम्पत्ति के क्रय मूल्य से उसके विक्रय मूल्य की अधिकता को व्यक्त करता है, जब कि यह अपने स्वामी द्वारा विशिष्ट समय से कम न रखी गई हो।

प्रत्यक्ष कर वह होते है जिनके दायित्व का निधारण कर दाता की भुगतान क्षमता के माप के प्रत्यक्ष सम्बन्ध द्वारा किया जाता है।

अप्रत्यक्ष कर वह है जिनके दायित्व का निर्धारण कर दाता की भुगतान क्षमता के प्रत्यक्ष संदर्भ के बिना किया जाना है। वह मुख्य रूप से वस्तु के निर्माण (manufacturing) विधायन (Processing) सवेष्टन, भंडारण, परिवहन, उपभोग, विक्रय, क्रय आयात तथा निर्यात पर लगाये जाते है।

औपचारिक करापात कर राजस्व के बराबर होता है।

प्रभावी करापात कर के प्रभावों को व्यक्त करता है।

कर वंचन का अर्थ है कर आधार को छुपाना और अवैधानिक रूप से कर दायित्व से बचना हैं।

कर परिहार का अर्थ वैधानिक रूप से कर दायित्व को कम करना है

26.11 कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

H.L.Bhatia, Public Finance 13th edition, Vikas Publishing House, New Delhi, Chep-21,23 & 24.

The Indirect Taxation Enquiry Committce (Jha Committee) Report 1997.

Govt.of India, Ministy of Finance, Long Term Fiscial Policy, Gain Sing Sahota, or Income distributions and Taxation, Economic Times, Annual Number, 1974.

विद्यार्थियों को चाहिए कि वह भारत सरकार के नवीनतम बजट के "Receipts Budget" भाग को भी देखें। इसी प्रकार राज्य सरकार के बजट का 'रिजर्व बैक आफ इंडिया, बुलेटिन सितम्बर और अक्टूबर अक में प्रकाशित किया गया है।

26.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

प्रश्न 1. (अ) गलत (ब) गलत (स) सही (द) सही (ह) गलत

प्रश्न 2. करापात उन पर होता है जिन पर इनका भुगतान करने का वैधानिक दायित्व होता है। करापात उन स्रोतो को व्यक्त करता है जिन के द्वारा वह अन्तिम रूप से दिये जाते है। करों के लगने अर्थव्यवस्था में परिवर्तनों को कर-प्रभाव कहते है।

प्रश्न 3. कर का आधार क वैधानिक व्याख्या है जिसके संदर्भ में करदाता के दायित्व का निर्धारण किया जाता है।

प्रश्न 4. जब करदाता द्वारा बेची जाने वाली वस्तु की कीमत बढ़ा दी है तो कर का अग्रगामी विवर्तन होता है। जब करदाता द्वारा क्रय की गई वस्तुओं की कीमत घटा दी जाती है तब कर का प्रतिगामी विवर्तन होता है।

प्रश्न 5. हां, हमारे प्रत्यक्ष करों की अति प्रगतिशील दर अनुसूचियां है। प्रारम्भिक छूट की सीमा होती है। वह जनसंख्या के गरीब वर्ग पर नही लगाये जातें। आय तथा सम्पति पर प्रत्यक्ष कर नही लगाये जाते। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्र करों का बहुत कम भार सहन करते है।

बोथ प्रश्न 2

प्रश्न 1. भारतवर्ष में दशकों से विक्रेताओं के बाजार है। प्रतियोगिता की दशाओं की अनुपस्थिति होती है। परिणामस्वरूप विक्रेता घटिया किस्म की वस्तु को ऊँची कीमत पर बेचते है और इस प्रकार अप्रत्यक्ष कर भार को उपभोक्ताओं पर डालने में सर्मथ होते है।

प्रश्न 2. हमारी आयातो की मांग की लोचें बहुत कम होती है क्योंकि हमारे आयात मुख्य रूप से आवश्यक वस्तुओं के होते है। दूसरी और हमारे निर्यातो की मांग की लोच अधिक होती है क्योंकि हमारे निर्यात मुख्य रूप से उनके लिये गैर-आवश्यक वस्तुओं के होते है। इसी प्रकार हमारी निर्यातो की पूर्ति की लोच कम होती है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में हमारी सौदा करने की शक्ति बहुत कमजोर है।

प्रश्न 3. अप्रत्यक्ष कर (Unprocessed) तथा (Unpacked) खाद्य पदार्थो तथा गरीब वर्गो द्वारा उपभोग के लिगे आवश्यक कई वस्तुओं पर नहीं लगाये जाते। गैर आवश्यक (Non-essential foods) तथा मुख्य रूप सें धनी वर्गो द्वारा उपभोग में लाई जाने वाली वस्तुओं के लिये कर की दरें अधिक है।

इकाई 27

भारत में सार्वजनिक व्यय कीप्रवृतियां

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य

27.1 प्रस्तावना

27.2 भारत में सार्वजनिक व्यय - कुछ सामान्य समालोचनाऐ

27.3 सार्वजनिक व्यय सकल राष्ट्रीय उत्पाद के सन्दर्भ में

27.4 कुल सार्वजनिक व्यय : केन्द्र व राज्यों की तुलनात्मक स्थिति

27.5 विकासात्मक और गैर-विकासात्यक व्यय

27.6 योजना और गैर-योजना व्यय

27.7 उपभोग व पूंजी निर्माण

27.8 सारांश

27.9 शब्दावली

27.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

27.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

27.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :

- इस सच्चाई को महसूस करने लगेगे कि राज्य की क्रियाओं एवं व्यय के बढ़ने की प्रीवृति सम्पूर्ण विश्व में पाई जाती है और भारत इस प्रीवृति से अछूता नहीं है।
- यह समझ सकेंगे कि सामान्य रूप में सार्वजनिक व्यय के ऊपर की प्रवृति के क्या कारण है? और भारत में विशिष्ट रूप में कौन से कारण है?
- भारत में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि को जी एन. पी. के बदलते स्वरुप के साथ देख सकेंगे, जिम्मेवार भारत में सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के मूल्य व विकास तत्वों को अलग कर सकेंगे
- सार्वजनिक व्यय में केंन्द्र व राज्यों के सापेक्षिक हिस्से को समझ सकेंगे।
- सार्वजनिक व्यय के विकासात्मक ओर गैर-विकासात्मक व्यय के प्रमुख घटकों की विवेचना कर सकेंगे।
- सार्वजनिक व्यय के योजना और गैर योजना घटको की विचारधारा। विषय-सूची और प्रभाव को समझ सकेंगे।
- योजना व्यय में केन्द्र, केन्द्र शासित प्रदेशों और राज्यों के तुलनात्मक हिस्सों को जान सकेंगे।
- योजना व्यय के क्षेत्रिय आवंटन पर विचार-विमर्श कर सकेंगे।
- भारत सरकार के सार्वजनिक व्यय के विभाजन एवं विशेष रूप में उपयोग और पूज़ीनिर्माण घटकों को समझ सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्री यह पाते है कि समय के साथ 2 राज्या की क्रियाएं और सार्वजनिक व्यय के बढ़ने की प्रवृति सम्पूर्ण विश्व में देखने को मिलती है। हाल ही के वर्षो में इस प्रवृति में वृद्धि हुई है और भारत भी इस प्रवृति से अछूता नहीं है। इसी कारण यह जरूरी हो गया है कि हमारे देश में बढ़ती सार्वजनिक व्यय की प्रगित पुन : अवलोकन करे। इसके साथ ही यह सच्चाई भी जानना जरूरी है कि देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्वास्था पर सार्वजनिक व्यय के गहरे व फैलते प्रभाव पड़ते है। सार्वजनिक व्यय की भूमिका, उसके कुल स्वरूप की अपेक्षा, उसकी बनावट पर ज्यादा निर्भर करती है। इस इकाई में हम मोटे रूप में सार्वजनिक व्यय की प्रवृति और इसके महत्वपूर्ण प्रमुख तत्वों द्वारा जो सम्बन्धित भाग अदा किया जाता है का पुन : अवलोकन करेंगे। हम इस बात के भी देखेंगे कि इस प्रवृति को बढावा देने वाले प्रमुख कारण कौन से है।

27.2 भारत में सार्वजनिक व्यय - कुछ सामान्य समालोचनाए:

यह सच्चाई पहले ही बताई जा चुकी है कि सम्पूर्ण विश्व में सार्वजनिक व्यय और राज्य की क्रियाये बढ़ती जा रही है और भारत भी इसका अपवाद नही है। आर्थिक विशिष्ट रूप में कहे तो हमारी सरकारें कुछ विशेष व्यय करने को बाध्य होती है। आज सरकारी को कार्य करने की अधिक सुविधाएं उपलब्ध है। इस सुविधाओं व बाध्यताओं की शक्तियों ने मिलकर केन्द्र, राज्य और स्थानीय सभी स्तरो गर सार्वजनिक व्यय की बढ़ती प्रवृति के जिम्मेदार कारण है

अनिर्वाय व्यय - सर्वप्रथम हम अनिवार्य सार्वजनिक व्यय को देखेंगे। हम व्यय की आवश्यकता और व्यय को प्रेरित करने वाले दोनों तत्वों को देखेगें। आधुनिक सरकारें परम्परावादी **अहस्तक्षेप नीति** में विश्वास नहीं करती है, जिसे राज्य अपने को कुछ कार्यों तक सीमित रखता है जैसे - राज्य की कानून व्यवस्था की रक्षा, राज्य को बनायें रखना, देश को बाहरी आक्रमणों से बचाना ओर उन कार्यों को करना जिनका निजी क्षेत्र करने की स्थिति में न हो। अहस्तक्षेप की नीति इस मान्यता पर आधारित है कि अर्थव्यवस्था में बाजार की क्रियाओं से अधिकतम कुशलता आती है निजी क्षेत्र बाजार क्रियाओं से संचालित होता है। अत: निजी क्षेत्र द्वारा संचालित प्रत्येक कार्य बाजार यन्त्र पर छोड़ देनी चाहिए लेकिन आज का आधुनिक आर्थिक सिद्धान्त यह महसूस करता है कि अनेक क्रियाएं राज्य द्वारा ही अच्छी तरह से संचालित की जा सकती है जैसे - **सार्वजनिक वस्तुएं एवं आवश्यक वस्तुएं** ये वे क्रियाएं है जिनसे किसी को वंचित नहीं किया जा सकता है एवं एक व्यक्ति के इस्तेमाल से दूसरे व्यक्ति के इस्तेमाल में कमी नहीं आती है जैसे देश की रक्षा व्यवस्था। कोई भी आर्थिक निजी इकाई उन मूल्यों पर इन सुविधाओं को उत्पादित एवं बैच नहीं सकती है जिन पर सार्वजनिक क्षेत्र इन सुविधाओं को उपलब्ध कराता है। इसी तरह प्रोफेसर मसग्रेव की भाषा में कहे, तो कुछ वस्तुएं ऐसी होती जो **गुण वस्तुए** (merit good) कहलाती है जिनका उपयोग समाज के सभी व्यक्तियों के **लिए आवश्यक** है। इस में शिक्षा, स्वास्थ और सफाई व्यवस्था आदि है अत: समाज के लिए कुछ वस्तुएं सामाजिक व आवश्यक वस्तुएं है, राज्य को इन वस्तुओं को

उपलब्ध कराना होता है, इन कार्यों के सम्पादन के कारण राज्य की क्रियाओं की बढती प्रवृति अन्त: निहित होती है इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए सरकारें समाज के लिए उपयोगी व सहायक हो, प्रत्येक सरकार पर अतिरिक्त कार्य एवं जिम्मेदारियां बढ़ गई है, इसने भी राज्य के व्यय में वृद्धि को बढावा दिया है।

यह विचार योग्य बिन्दु है कि आधुनिक सरकारों के ऊपर स्वंय आरोपित दार्शनिक अनिवार्य व्यय है कि वे समाज की सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में सुधार लायेगा। इसके लिए वह सार्वजनिक एवं अनिवार्य वस्तुएं उपलब्ध कराती है। समय के साथ अनिवार्य वस्तुओं और सेवाओं की मात्रा व विभिन्नता बढ़ती जा रही है जिसके कारण भी सरकारों को अपना व्यय बढ़ाना पड़ा है।

इसी तरह सरकारें यह महसूस करती है कि कल्याण वादी विचारधारा उन्हें अनेकों अतिरिक्त काम करने के लिए प्रेरित करती है। उदाहरण के लिए श्रम कानून, विभिन नियन्त्रण-नियमन, लाइसेन्स देना आदि। शहरीकरणकेसाथ-साथ सरकारों के ऊपर अतिरिक्त जिम्मेदारी बने है, इसमें झूग्गी - झोपड़ी की समस्याएं, ट्रैफीक, कानून व्यवस्था शहरी यातायात व्यवस्था, पानी, सफाई आदि व्यवस्थाएं है। एक तरफ बढते मुल्य राज्य के बजट को प्रभावित करते है दूसरी तरफ सरकारें यह महसूस करती है कि अपने कार्यों को कुशलतापूर्वक संचालित करने के लिए इन बढ़ती एवं जटिल अर्थव्यवस्था में हमें विशिष्ट व्यक्ति, जटिल मशीने एवं औजार, संचार व्यवस्था आदि चाहिये। रक्षा व्यय भी बढता जा रहा है क्योंकि अन्य देश रक्षा सामग्री में बढ़ोतरी करते जा रहे है।

अत: हम जानते है कि हर सरकारों को, जिसमें हमारे देश की सरकार भी शामिल है, उन शक्तियों का सामना करना पडता है जो राज्य के व्यय को बढ़ाती है। ये अनिर्वाय कार्य कुछ सरकारों द्वारा स्वयं के ओढ़े गये है ओर कुछ उन पर थोप गये है। भारत में **हमारी सरकार राज्य के विकास को सामाजिक न्याय के साथ बढ़ाना चाहती है।** लक्ष्यों, को प्राप्त करने के लिए हमारी सरकार ने विशाल स्तर पर सार्वजनिक विनियोग किया है। बहुत बड़े पैमाने पर आर्थिक कल्याण के कार्यों को सम्पादित किया है। सरकार की आर्थिक एवं सामाजिक जीवन में सहभागिता बढ़ी है। सरकार ने अनेकों कार्यक्रम जैसे गरीबी उन्मूलन, बेकारी मिटाना, मूल्य नियंत्रण, आपात नियंत्रण निर्यात प्रोत्साहन कुछ व्यक्तियों के हाथों में आर्थिक शक्ति के केंद्रीयकरण पर रोक आदि लागू किये है।

व्यय के अवसर

जब तक सरकारो को कार्य करने के अवसर उपलब्ध नहीं होंगे जब तक वास्तव में राज्य की व्यय बढ़ने की अनिवार्यता पूरी नहीं होगी। सार्वजनिक व्यय बढ़ने के साथ उसको पूरा करने के लिए कोष भी उपलब्ध होना चाहिए। हमारे देश भारत में सरकारों को कोष बढ़ाने की असीमित सुविधाएं उपलब्ध है। हम इन में से कुछ एक को देखेंगे।

हमें सच्चाई स्वीकार करनी होगी कि संसद का सार्वजनिक व्यय पर बहुत थोडा प्रभावी नियंत्रण होता है। देश में बजट कार्यकारिणी द्वारा बनाया जाता है और संसद इस स्थिति में नहीं होती है कि अनुमानों की सत्यता को परख सकें। अत: देश में जो व्यय स्वीकृत होता है वह अधारभूत तरीके से नहीं होता है जो कार्यकारिणी बनाती है। अधिक कहें तो कार्यकारिणी

संसद के पास जाती है और बदलती परिस्थितियों के लिए अतिरिक्त व्यय की स्वीकृति प्राप्त करने का प्रयत्न करती है।

हमारी सरकार संसद की स्वीकृति प्राप्त करके अतिरिक्त खर्च कर सकती है। यह इस बात को बताता है कि बिना कर, आय और सार्वजनिक उपक्रम आपके देश में अतिरिक्त सार्वजनिक व्यय सम्भव है यह सच्चाई खर्च की प्रवृति को बढ़ा देती है और अधिकांश सरकारें व्यय से रोकने में समर्थ नहीं होती है।

सरकारें घाटे की वित व्यवस्था भी कर सकती है। केंद्रीय सरकार में इसका अर्थ होता हें कि सार्वजनिक व्यय की वित्त व्यवस्था नगद शेष के निकालने (अर्थात अतिरिक्त नोट छापने) और ट्रेजरी बिल के माध्यम से, रिजर्व बैक आफ इंडिया से उधार लेकर की जाती है। राज्य सरकारें अंतिम उपलब्ध साधन के रूप में ओवरड्राफ्ट (over-draft) लेती है जो स्वीकृत बिलों से अधिक व्यय और अधिक समय की तरफ ले जाती है। अधिकतर क्रेन्द्र रिजर्व बैक से उधार लेकर राज्यों के ओवर ड्राफ्ट को निपटाती है। इस नीति का शुद्ध प्रभाव यह होता है कि

(1) राज्य रिजर्व बैक की अपेक्षा केन्द्र का ऋणी हो जाता है।

(2) केन्द्र रिजर्व बैक का ऋणी व राज्यों का ऋणदाता हो जाता है

(3) भारत सरकार के बजट में अतिरिक्त प्रभावी घाटे को जन्म मिलता है। आधिकारियों की राजास्व रसीदें अतिरिक्त अधिक वृद्धि को दर्शाता है जो उनको और अधिक व्यय करने को अवसर प्रदान करते है। हमे विदेशी सरकारों से अनुदान व ऋण के रूप में सहायता प्राप्त होती है, जिसने सरकारों के अधिक खर्च के योग्य बनाया है।

27.3 सार्वजनिक सकल राष्ट्रीय उत्पाद के सन्दर्भ में

संक्षिप्त रूप में कुल सार्वजनिक व्यय की वृद्धि GNP के संदर्भ में बताती है (साधन लागतपर) सार्वजनिक व्यय का आश्य केन्द्र, राज्य, केंद्र शासित प्रदेश के कुल खर्च सें सम्बन्धित है। हम यह देखते है कि (सकल राष्ट्रीय उत्पादन) GNP और सार्वजनिक व्यय दोनों ही बढ़ रहे है, पर बाद वाला अधिक तेजी से बढ़ा है। GNP और सार्वजनिक व्यय के नवीनतम आंकडे जो उपलब्ध है वे सन् 1998-99 तक के है। प्रथम योजना से 1998-99 तक दोनों की वृद्धि से यह ज्ञात होगा कि दोनों किस तरह से बढ़ है। व्यय वृद्धि पर 13.7% प्रतिवर्ष रही है। इसके विपरीत GNP इसी अवधि में 105%की वार्षिक वृद्धि दर को दर्शाती है। आकडों का अवलोकन यह बताता है कि GNP की अनुपात में सार्वजनिक व्यय की दीर्घकालिन बढ़ने की प्रवृति देखने को मिलती है। यह वृद्धि 15.14% प्रथम योजना में थी चौथी योजना में बढकर 31.32% हो गई। 1978-80 में वृद्धि इतनी अधिक थी कि अन्य वर्षो में यह बनी नहीं रह सकती है। परन्तु यह दिखाता है कि सार्वजनिक व्यय GNP के 2/5 के सामान्य स्तर पर पहुंच गया है।

सार्वजनिक व्यय की तीव्र वृद्धि के बारे में विचार विमर्श करते समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिये कि इस वृद्धि के लिए कीमत वृद्धि का भी काफी हाथ है अगर हम बढ़ते GNP (कुल राष्ट्रीय उत्पादन) के आकडों में विकास और कीमत तत्वों को अलग अलग करते है, तो

हमे यह ज्ञात होता है कि 1550-1985 सालों के अंतराल में, इन दोनों तत्वों की क्रमश : वृद्धि 3.729% प्रतिवर्ष और 8.496% प्रतिवर्ष रही है (प्रथम योजना और 1987-88 के औसत के अनुसार) इन्हीं अवधि के दौरान हम सार्वजनिक व्यय की वृद्धि तत्व को भी देख सकते है। सार्वजनिक व्यय का वृद्धि तत्व 9.277% है जो 6.57% प्रतिवर्ष विकास दर प्रदान करता है.। यह दर स्पष्टत: अधिक रही है, स्थिर मूल्यों पर मापे गये GNP सकल राष्ट्रीय उत्पादन की अपेक्षा।

सार्वजनिक व्यय के विकास और कीमत तत्वों को अलग-अलग करने से क्या आशय है और यह कहने का क्या तात्पर्य है कि सार्वजनिक व्यय 6.57% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रहा है पिछले 35 वर्षो के दौरान प्रथम पंचम योजना से लेकर 1987-88 की अवधि लेगें। इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए चलो हम इस तरह से आगे बढ़े। जब हम सार्वजनिक व्यय. का मौद्रिक रूप में वर्णन करते है तो हम पाते हैं कि एक अवधि से दूसरी अवधि मध्य यह बढ़ता ही जाता है। यह वृद्धि दो कारणों से होती है अगर राज्य की क्रियाओं का स्तर और मात्रा वही रहे, ओर मूल्य में परिवर्तन नहीं हो तो सार्वजनिक व्यय की मात्र भी वही रहनी चाहिए। फिर भी यदि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि दर्शाती है तो यह वृद्धि मूल्यों में वृद्धि के कारण होगी। सार्वजनिक व्यय में वृद्धि 'मृल्य तत्व ' के कारण उल्लेखित होगी। इसी तरह, यदि मूल्यों को अपरिवर्तित रखे। ऐसी स्थिति में यदि सार्वजनिक व्यय में बढ़ोतरी होंती है, बढ़ती राज्य की क्रियाओं के कारण हो। इन कारणों से यदि सार्वजनिक व्यय में वृद्धि होती है तो यह वृद्धि'विकास तत्व' का परिणाम है। वास्तव में सार्वजनिक व्यय में एक अवधि सें दूसरी अवधि के मध्य वृद्धि का कारण दोनों तत्वों के बराबर क्रियाशील होने का परिणाम है। अगर हम इन्हें अलग करते है हमे विकास तत्व व कीमत तत्व दोनों में से किसी एक तत्व का मूल्य (value) ज्ञात होना आवश्यक है। कीमत तत्वों का मान हमारे विशलेषण में GNP (कुल राष्ट्रीय उत्पादन) की सहायता से अनुमानित किया गया है। हमारे दोनों मूल्यों के अन्तर से 'GNP' के आंकडे 'कीमत तत्व' को अनुमान लगाने में मदद करते है। यदि 'GNP' के आँकडों को स्थिर मूल्यों पर दी गई अवधि मध्य इतना करे तो ये हमें 'विकास तत्वों' के अनुमानों को दर्शाते है। हम मानते है कि. सार्वजनिक व्यय के ऑकडों में 'कीमत तत्व' ही काम का है। इसके अनुसार बाकी की सार्वजनिक व्यय में वृद्धि का कारण 'विकास तत्व' और अनुमानों का परिणाम है।

बोध प्रश्न - 1

1. आधुनिक सरकारों के सार्वजनिक व्यय में वृद्धि के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिये।
2. हमारी सरकार के समुख कौन से अनिवार्य व्यय और व्यय को अवसर उपलब्ध है जिन्होने भारत में सार्वजनिक व्यय में दीर्घकालिन वृद्धि को प्रेरित किया है।
3. अहस्तक्षेप नीति सें क्या तात्पर्य है?
4. सार्वजनिक आवश्यकता की वस्तुए कौन सी है। इनकी पूर्ति निजी क्षेत्र, द्वारा सम्भव है।

5. गुण/आवश्यक वस्तुएँ (merit-good) किसे कहते है। वे सार्वजनिक व्यय में कैसे बढोतरी लाती है?
6. निम्न वाक्य को पूरा करने के लिए लगभग सही आकड़े का चयन करें-
   "कीमत तत्व को हटाने के बाद, भारत में सार्वजनिक व्यय की विकास दर पहली योजना में और 1987-88 के मध्य आंकी गई........ प्रतिशत प्रतिवर्ष। "
   (अ) 5.2 (ब) 8.0 (स) 9.3 (द) 12.4

27.4 कुल सार्वजनिक व्यय: केन्द्र व राज्यों की तुलनात्मक स्थिति

हमारे संविधान में आर्थिक एवं सामाजिक सेवाएं मुख्य रूप से राज्यों को दी गई है। जैसे-जैसे देश का सामाजिक एवं आर्थिक विकास होता है, इन आवश्यकताओं की जरूरत बढ़ती जाती है। इस सन्दर्भ में देखे तो केन्द्र का हिस्सा, सभी राज्यों के सम्मलित हिस्सा से, सार्वजनिक व्यय में कम होना चाहिए। अधिक स्पष्ट कहे तो समय के साथ-अथ केंद्र का हिस्सा घटता जाना चाहिए। लेकिन वास्तविकता इसके विपरीत है। व्यय में केंद्र का हिस्सा, सभी राज्यों के सम्मलित हिस्से से सदैव ही ज्यादा रहा है। और अधिक विश्लेषण करे तो ज्ञात होता है कि केंद्र का अनुपातिक हिस्से में कई दफा ऊपर की तरफ उछाल देखने को मिलता है।

इसका एक प्रमुख कारण यह भी रहा है कि केंद्र के कुछ करों (Taxes) से अधिक आय प्राप्त होती है जो सार्वजनिक व्यय में केंद्र के हिस्से को बढ़ाते है। इन करों में केंद्रीय बिक्री कर, कस्टम कर और कोरपोरेशन टेक्स (आयकर भी अधिक आयवाला है परन्तु इसका काफी बड़ा हिस्सा राज्यों को वापस चला जाता है) दूसरी तरफ केंद्र अधिक ऊँची दरों पर और आसान तरिकों से उधार ले सकता है राज्यों की तुलना में क्योंकि उसके पास "कैदी बाजार" Captive market उसके अधिकार में है। केंद्र सरकार अनेक कानूनी अधिकारों से सम्पन्न है जैसे - व्यापारिक बैक LIC, GIC, प्रेविडेन्ट फण्ड संगठन आदि ये सभी सरकारी सिक्युरिटीयों में विनियोग करने के लिए बाध्य किये जाते है। ये सभी विनियोग कर्त्ता इकट्ठे सरकारी सिक्युरिटीयों के लिए 'कैदी बाजार' भांति है और सरकार इन पर उधार उठा सकती है विदेशी अनुदान उधार सरकार के बाजार संसधनों में अतिरिक्त वृद्धि लाते है। अधिक कहे तो केंद्र सरकार भारी बजटीय घाटा बनाने में सक्षम है इसकी पूर्ति वे अधिक नोट छापकर और रिर्जव बैंक आफ इंडिया को ट्रेजरी बिल बेचकर कर सकती है। दूसरी तरफ अपने वित्तीय साधन बढाने की क्रियाओं में राज्यों को अनेक बाधायें है। केंद्र को उत्पादन कर और बिक्रीकर से अधिक आय प्राप्त होती है दूसरी तरफ राज्यों को करों से कम आय प्राप्त होती है राज्यों के अधिकार में "कैदी बाजार" (Captive market) नही है जहां से वे आसान शर्तो पर उधार भारी मात्रा में ले सके। राज्यों को कुछ मात्रा में उधार मिलता है पर वह भी कड़ी शर्तो के बीच। राज्यों को अपने साधनों को एक बड़ा भाग केंद्र से हिस्से के कर, अनुदान, उधार के रूप में मिलता है। केंद्र इन कोषों के हस्तान्तरण, निर्धारण के समय पहले अपनी स्वंय की आवश्यकता और खर्चो को पहले ध्यान में रखता है, यह एक स्वाभाविक बात है। राज्य छिपाकर बजटीय घाटा उत्पन नही कर

सकते है। क्योकि वे मुद्रा के उत्पन्न कर्त्ता (छापने वाले) नहीं है उनके ट्रेजरी बिल रिर्जव बैक आफ इंडिया द्वारा स्वीकृत नही किये जाते है।

27.5 विकासात्मक और गैर-विकासात्मक व्यय

विकासात्मक और गैर विकासात्मक व्यय के मध्य एक स्पष्ट रेखा खीचना सम्भव नहीं है। कुछ मद गैर विकासात्मक सारणी में होते है पर उनका विकासात्मक प्रभाव भी होता है उदाहरणस्वरूप - रक्षा गैर-विकासात्मक व्यय है पर देश की सुरक्षा के बिना विकास सम्भव नहीं है। दूसरी तरफ रक्षा व्यय स्वंय में नई तकनीक, साधन, प्रक्रिया, उत्पादन सम्भावनाओं को जन्म देता है। भारत में सरकारी वर्गीकरण में विकासात्मक व्यय मोटे रूप में समाजिक और आर्थिक मदों पर किये व्यय के समान है इस तरह से गैर विकासात्मक व्यय में रक्षा, ब्याज अदायगी, करो को एकत्र करने की लागत पुलिस और प्रशासन आते है। यह देखा गया है कि विकास व्यय कुल व्यय का 3/5 और कभी-कभी 2/3 होता है यह एक अच्छी बात है जो कोष के न्यायोंचित उपयोग से दर्शाती है यह हो सकता है कि कुछ व्यक्ति विकास व्यय के भाग को और अधिक बढ़ाना चाहते हो, जिसका कारण यह है कि कुल व्यय तेजी से बढ़ा है। यह8,352 करोड़ रु सन् 1970-71 मे था बढ़कर 1988-89 में 127780 करोड़ रु हो गया है। गैर विकास व्यय भी कुल व्यय की भांति बढा है यह 1970-71 में 3636 करोड़ रु था जो 1988-89 में 49693 करोड़ रु. हो गया।

सार्वजनिक व्यय के गैर-विकासात्मक व्यय के बहुत थोडा भाग कर (Tax) एकत्रीकरण की लागत ड्यूटी, पूलिस पर खर्च होता है। पहले का अनुपातिक भाग घटता जा रहा है इसका कारण है कि अधिकारी अपने व्यय की वित्त व्यवस्था बड़ी मात्रा में गैर कर आय और पूंजीगत रसीदो से करते है। रक्षा व्यय का आनुपातिक भाग गिरने की प्रवृति बताता जो 1/3 या उससे थोडा नीचे है। परन्तु व्याज अदायगी का अनुपातिक भाग इसके विपरीत दीर्घकालीन बढ़ने की प्रवृति को दर्शाता है, यह 1970 मे 20% था जो 1980 में गैर विकासात्मक व्यय का1/3 के लगभग हो गया है। सरकारों ने विभिन तरीकों से बड़ी ही मात्रा मे उधार की नीति का प्रतिपादन किया है जैसे बाजारी ऋण, छोटी बचतें, प्रोविडेन्ट फण्ड ट्रेजरी बिल आदि। सरकारों ने दोनो ही विदेशी और आन्तरिक तरीकों से उधार लिया है। इन्ही अवधि में ब्याज की दरे भी बढ़ी है। इन सभी क्रियाओ के कारण-बजट में भारी मात्रा में ब्याज अदायगी में बढ़ोतरी हुई है।

सार्वजनिक व्यय का दूसरा महत्वपूर्ण घटक इसमें सामान्य प्रशासन, पेन्शन, अकाल राहत, अनुदान भोजन पर, राशन के कपड़े, विदेशी सरकारों को अनुदान और उधार, और गैर विकासात्मक व्यय के लिए उधार आता है। यह नोट करने लायक बात है कि भारत सरकार द्वारा दिये गयें अनुदानों का भाग बढ़ता गया है यह 1970-71 में 94 करोड़ रु था जो 1989-90 में 7790 करोड़ रु हो गया है 1989-90 के बजट में 345 क् करोड़ रु अनुदान के लिए रखे गये है। दूसरी तरफ अनुदानों के पक्ष और विपक्ष में अनेक विचार है, पर सरकारों द्वारा अनुदानों की बढ़ाते रहने की आवश्यकता महसूस की गई है यह 16.86% है। गैर विकासात्मक सार्वजनिक व्यय को अनुदानों को तीन प्रमुख मदों पर व्यय किया जा रहा है (1) भोजन (2)

खाद (3) निर्यात प्रोत्साहन एवं बाजार के विकास के लिए। इनमें खाद का सबसे उच्च भाग है इसके बाद भोजन व निर्माण प्रोत्साहन का भाग आता है। अन्य अनुदानों में रेलवे हस्तशिलप, और व्याज अनुदान के रूप में है। अनुदान हमारे देश की अर्थव्यवस्था में नीति निधारिक में प्रमुख भाग अदा करते है इस भाग को ऐसे ही सरलता से नही छोड़ सकते है।

27.6 योजना और गैर-योजना व्यय

योजना और गैर-योजना व्यय में अन्तर प्रशासनिक अकाउन्टिग की दृष्टि से किया गया है आर्थिक तर्क की दृष्टि से नहीं। एक योजना व्यय जरूरी नही (सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से) विकासात्मक प्रकृति का हो और एक गैर योजना व्यय भी इस प्रकृति का हो सकता है। जब एक योजना बनाई जाती है तो उसमे अनेको परियोजनाएं और स्कीम होती है। जैसे ही एक स्कीम या परियोजना परिपूर्ण हो जाती है अथवा वह पूर्णता की ओर अग्रसर हो रही हो, तो वह योजना की श्रेणी से हटकर गैर योजना मद की तरफ खिसक जाती है। यही कारण है कि परियोजना के रख रखाव और उत्पादकोष सम्पति (जैसे सडक, पानी संग्रहण आदि) के संचालन को गैर योजना व्यय, में रखा जाता है चाहे इनके संचालन पर की गई लापरवाही उतनी ही खतरनाक और हनिकारक है जितनी उस सम्पति के बिना होती है। आगे कहे तो, गैर योजना व्यय की अन्त निर्हित प्रकृति समय के साथ बढ़ने की होती है।

सार्वजनिक व्यय के योजना और गैर-योजना व्यय में आवंटन में एक महत्वपूर्ण लक्षण है कि यह हिस्सा बढ़ता जा रहा है। 1981-82 से 1989-90 के मध्य इसल भाग 58% से बढ़कर 2/3 के लगभग हो गया है कुल व्यय के गैर योजना व्यय का भाग गिरता जा रहा है और अब यह भाग कुल व्यय के 1/3% पर स्थिर है। रक्षा, ब्याज और अनुदान गैर-योजना व्यय का मुख्य हिस्सा ले जाते है। 1989-90 मे इन तीनों मदों पर कुल व्यय का 70% से अधिक भाग खर्च होता था जब कि दूसरी तरफ अनुदानों का भाग 5.2% है।

केंद्र द्वारा योजना व्यय का आधे से भी ज्यादा भाग खर्च किया जाता है। छठी योजना में (1980 -85) कुल व्यय में केंद्र का हिस्सा 52.35% (जो कि 57,825 करोड़ रु है कुल व्यय 110,467 करोड़ रु में से राज्यों का भाग 45.89% (49,458 करोड़ रु) और केंद्र शासित प्रदेश भाग 1. 82% (2,000 करोड़ रु) है। सातवीं योजना के प्रथम चार वर्षो में सामान्य प्रवृति लगभग यही रही है, यद्यपि केंद्र और केंद्र शासित प्रदेशों के हिस्सो के व्यय में कुछ वृद्धि देखने को मिलती है।

योजना व्यय का क्षेत्रीय वितरण

सार्वजनिक व्यय के क्षेत्रीय वितरण का सीधा प्रभाव अर्थव्यवस्था के विकास के स्थान और स्वास्थ्य, आय व धन के वितरण पर पड़ता है। विभिन मदों पर किये गये सार्वजनिक व्यय का आंवटन न केवल अर्थव्यवस्था के व्यक्तिगत क्षेत्र के विकास को प्रभावित करता है बल्कि वह भावी विकास की सम्भावनाओं पर भी प्रभाव डालता है।

समय के साथ विभिन मदों पर किया गया खर्च बदल गया है। कुछ मदो पर किया गया व्यय विकास के साथ विशेष रूप में महत्वपूर्ण पाया गया है। हमें यह पता चलता है कि1979-80 में कृषि का भाग और कृषि सम्बन्धित सेवाओं, सिचाई बाढ़ नियन्त्रण का भाग

ठोस रूप में बढा है उद्योग एवं खान क्षेत्र की लागत पर कुछ हद तक सामाजिक सेवा में और यातायात व सम्वाद वहन की लागत पर भी बढ़ा है। इसी तरह से पांचवी योजना में उद्योग व खान का भाग काफी ऊंचा था यह यातायात व सम्वादवहन के अनुपातिक भाग में कमी से समतोलित हुआ। (सामाजिक सेवा और कृषि और कृषि सम्बंधित सेवाएं) छठी और सातवीं योजना में 'शक्ति' पर विशेष जोर दिया जब कि दूसरी तरफ उद्योग खान के भाग में कमी की गई। 1966-69 की वार्षिक योजनाओं में सामाजिक सेवा, कृषि ओर कृषि आधारित सम्बन्धित सेवाओ, उद्योग खान और शक्ति पर विशेष जोर दिया गया, यातायात व सम्वादवहन की लागत पर एक योजना से दूसरी योजना मे इन परिवर्तनों के बावजूद सार्वजनिक व्यय का सामान्य प्रारूप (Pattern) आवंटन को देखने को मिलता है। यदि हम कृषि, कृषि सम्बन्धित सेवाओं, ग्रामीण विकास, विशिष्ट क्षेत्र योजनाओं हो ये सदैव ही योजना व्यय के प्रमुख क्षेत्र रही है जिन पर 1/6 से 1/8 कुल व्यय का खर्च होता है। 'शक्ति' को कृषि और कृषि सम्बन्धित सेवाओं सें सदैव ही अधिक भाग प्राप्त हुआ है और इसका भाग छठी और सातवीं योजना में बहुत तेजी से बढा है और यह बढ़ोतरी अवश्यम्भावी थी। शक्ति, यातायात, सम्वादवहन देश की आधारभूत सुविधाओं के प्रमुख क्षेत्र है इनकी आवश्यकता हर अर्थव्यवस्था को रहती है। एक विकासशील अर्थव्यवस्था को इनकी आवश्यकता ज्यादा होती है। यदि देश की आय व कुशलता को बनाये रखना है गिरने नहीं देना है तो दश को रख रखाव पर काफी व्यय करना होगा। योजना व्यय का एक प्रमुख मद सामाजिक सेवाओं का है। चाहे हमारे जैसा गरीब देश इन सामाजिक सेवाओं को देने में काफी कठिनाई महसूस करता है (ये प्रत्यक्ष रूप में स्थिर पूंजी निर्माण में बाधक है) इनको उपलब्ध कराना जीवन को सुधारने, देश में फैली दुख:बीमारी, कुपोषण आदि को कम करने हेतु आवश्यक है। आप आगे यह देखोगे कि विज्ञान, तकनीक, पर्यावरण पर बहुत थोड़ा भाग योजना व्यय का खर्च होता है। वास्तव में जैसे-जैसे कृषि का आधुनिकीकरण हुआ है, नवीन रसायनिक व अन्य उद्योग विकसीत हुए है, शक्ति का विकास हुआ, यातायात उघोग, साधनो का अधिक उपयोग हुआ है, शहरीकरण बढा है, पर्यावरण दुषित होने का खतरा नये आयामों की तरफ बढ़ रहा है। ये सभी अनिवार्य कार्यो के कारण सार्वजनिक व्यय मे निरन्तर गति से वृद्धि हुई है पर यह वृद्धि आवश्यक मात्रा में अभी भी काफी कम है।

हमारा देश गरीब है और अधिकारियों के पास साधन सीमित है, योजना व्यय के लियें अत: विभिन्न क्षेत्रों की प्रतिस्पर्धी को जो साधन आवंटन हेतु उपलब्ध है उन्हें सन्तुलित तरीके से आवंटित करना होगा। परिणाम यह है कि निरपेक्ष शब्दों में बताये तो प्रत्येक्ष क्षेत्र को जो साधन आवंटित होते है वे उसकी आवश्यकता को देखते हुए काफी कम है। परन्तु फिर भी हम यह देखते है कि एक योजना से दूसरी योजना के मध्य योजना व्यय के आवंटन में लोचशीलता एवं जबाव देह मिलती है। वास्तव में आवंटन का निर्णय विभिन्न क्षेत्रों में अर्थव्यवस्था के क्षेत्रीय कार्यो का अवलोकन करके, प्रत्येक वर्ष साधनों का आवंटन किया जाता है। यह स्वीकार किया जाता है कि साधनों के आवंटन में सदैव ही सुधार सम्भव है परन्तु सच्चाई मह है कि साधन आवंटन सदैव ही बदलती आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तित होता है।

27.7 उपभोग व पूंजी निर्माण (Consumption and Capital Formation)

सार्वजनिक व्यय के विकासात्मक प्रभावों को देखने का एक तरीका चह से कि उसे उपभोग और पूँजी निर्माण श्रेणी में बांटा जाए। पूँजी निर्माण देश में उत्पादकीय थमता बढाने हेतु आवश्यक है, चाहे उसका एक हिस्सा पूँजी निर्माण में काम आता है, जो, शुद्ध पूंजी निर्माण में थोडा बहुत सहायक है। केंद्र न केवल अपने उपभोग के लिए साधन आंवन्टित करता है, बल्कि अर्थव्यवस्था में इसी उद्देश्य के लिए कोष का हस्तान्तरण करता है। इसी तरह केंद्र द्वारा पूंजी निर्माण प्रत्यक्ष रूप मे स्वंय के लिए किया जाता है और शेष अर्थव्यवस्था के लिए साधन हस्तांतरित करता है, पूंजी निर्माण, वित्तिय विनियोग और उधार के लिए हम एक उचित मान्यता रख सकते है कि सभी 'चालू' हस्तान्तरण उपभोग में काम आते है दूसरी तरफ सभी 'पूंजी' हस्तान्तरण पूंजी निर्माण में काम आते है।

पूंजी निर्माण में गया भाग अपनी चरम सीमा में 54.82% द्वितीय योजना में और इसके पश्चात यह भाग गिरने लगा और 1979-80 में गिरकर42,90% पर पहुंच गया। छठी योजना में यह भाग बढकर 45.4% हो गया लेकिन फिर सातवी योजना से लगातार गिर रहा है। 1988-89 में यह गिरकर केवल 37.4% रह गया कुल भारत सरकार के व्यय के अनुपात में।

भारत सरकार के व्यय का दूसरा प्रमुख भाग उपभोग घटक से सम्बन्धित है। उपभोग व्यय का कुछ भाग केंद्र स्वंय खर्च करता है और इसका दूसरा घटक शेष अर्थव्यवस्था को चालू हस्तान्तरण है। शुरू में 'चालू हस्तान्तरण केंद्र के स्वयं के उपभोग व्यय से कम था, परन्तु पहला तेजी से बढता गया है दूसरे की अपेक्षा और पांचवी योजना तक यह व्यय केंद्र के स्वयं के उपभोग व्यय से उपर निकल गया था और यह प्रकृति आगे भी चली फिर 1988-89 मे चालू व्यय 29,958 करोड़ रुपयें था इसमें सें केंद्र का स्वयं उपभोग व्यय 18,743 करोड़ रु था निरपेक्ष रूप में 1998 -99 में 'चालू हस्तान्तरण' 37.02% रहा प्रथम योजना के वार्षिक औसत के, केंद्र का स्वयं का अपना उपभोग व्यय 15.02% के लगभग था। सामूहिक रूप में आधार वर्ष की तुलना में उपभोग न्यय का स्तर 23.75% पर था।

इस प्रकार पंजी निर्माण व्यय 1988-89 में 17.12% पर रहा प्रथम योजना के स्तर पर केंद्र द्वारा भी पूंजी निर्माण 11.91% पर था, विनियोग व उधार लगभग 17.00% पर एवं पंजी हस्तान्तरण 44.21%, के लगभग रहे।

27.8 सारांश (Summary)

यह सच्चाई है कि सार्वजनिक वित्त का चादरें और फैलने वाला प्रभाव अर्थव्यवस्था के संचालन पर है। यह सार्वजनिक वित्त की प्रकृति के अध्ययन से ज्ञात होता है। हमारे देश में यह अध्ययन और आवश्यक है क्योंकि हमारी सरकार कल्याणकारी सरकार है और यह पुरानी अहस्तक्षेप नीति में विश्वास नहीं करती है। यह हमारी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए विशेषरूप से प्रयत्नशील है। सरकार समूह के जीवन स्तर को ऊँचा उठाती है, और सामाजिक एवं आर्थिक

अन्याय को हटाना चाहती है। इसके लिए प्रत्यक्ष: सार्वजनिक विनियोग अन्य कार्य और व्यय में विश्वास करती है। अधिक कहे तो हमारी सरकारों को "अनियमितताएं' (स्वयं आरोपित और बाह्य परिस्थियों द्वारा पैदा करी गई) और अनेकों ऐसे अवसरों को ढूंढती है जो सार्वजनिक व्यय में बढोतरी लाते है। विशेष रूप में, हम यह स्वीकार करते है कि सार्वजनिक वस्तुएं सरकारी को दी जानी चाहिए और गुण वस्तुओं (merit goods) की पूर्ति इसके द्वारा बताई जानी चाहिए। आगे कहे तो, बढते मूल्य, रक्षा आवश्यकता, शहरीकरण, रोजगार विशेषज्ञों, नवीन उपकरण और तकनीक और सम्वादवहन के साधन आदि सभी मिलकर सरकारी व्यय में बढोतरी करते है। नोट छापने की क्षमता और उधार प्रवृति दोनों ही विधानसभा के अपूर्व और अकुशल निष्पादन के कारण बढते जाते है और बढती आय के साधन के कारण कार्यकारिणी को कार्य के अक्सर बढ जाते है ये भी सार्वजनिक व्यय में बढोतरी लाते है।

हमारा विशलेषण यह बताता है कि केंद्र, राज्य और केंद्र शासित प्रदेशों का सम्मलित सार्वजनिक व्यय सकल राष्ट्रीय उत्पादन की तुलना में अधिक तेजी से बढ़ रहा है। यदि हम बढते मूल्यों के महत्व को समाप्त कर दे फिर भी सार्वजनिक व्यय का बढता हुआ स्वरूप ऊंची दर पर देखा जा सकता है।

तुलनात्मक रूप में देखे तो केंद्र का हिस्सा कुल व्यय में राज्यों की अपेक्षा कम होना चाहिए, क्योंकि आर्थिक और सामाजिक सेवाओं की पूर्ति करने की जिम्मेदारी राज्यों की है। पर व्यवहार में केंद्र का हिस्सा सदैव ही राज्यों के हिस्से की अपेक्षा ज्यादा रहा है। इसका कारण यह है कि केंद्र के साधन अधिक उदार या आय देने वाले है और वह आसानी से उधार ले सकता है और नोट निर्गमन कर सकता है। यह विदेशों से भी अनुदान व उधार के रूप में साधन प्राप्त कर सकता है। इसे दूसरी प्रकार से ऐसे कह सकते है कि यहां पर अन्तर्निहित वित्तीय असन्तुलन केंद्र के पक्ष में और राज्यों के विपक्ष में पाया जाता है और यही केंद्र को अधिक व्यय के लिए प्रोत्साहित करता है।

सार्वजनिक व्यय का सरकारी वर्गीकरण विकास और गैर-विकासात्मक घटक में किसी सेद्धान्तिक आधार पर आधारित नहीं है। अनेकों ऐसे पद है जिनपर वर्गीकरण में मतभेद सम्भव है। वर्गीकरण का प्रमुख स्वरूप यह है कि सामाजिक और आर्थिक मदों पर व्यय विकासात्मक है और दूसरा गैर विकासात्मक व्यय है। इस वर्गीकरण की दी गई सीमितताओं में सार्वजनिक व्यय का विकासात्मक घटक सदैव ही ज्यादा रहा है गैर-विकासात्मक घटक की अपेक्षा (यह कुल का 3/5 रहा है।) चाहे पहला बढते सार्वजनिक आय के कारण अधिक तेजी से बढ़ सकता है।

किसी परियोजना/स्कीम पर किया व्यय उसे पूर्ण करने की अवस्था में हो योजना व्यय कहलाता है। चाहे जब परियोजना पूर्ण हो जाती है (अथवा परियोजना पूर्ण स्तर पर है) उसके रखरखाव पर किया गया व्यय और अन्यथा गैर योजना व्यय की श्रेणी में आता है। इस विभेद के आधार पर गैर-योजना व्यय की एक अन्तर्निहित प्रवृति है कि वह समय के साथ बढता जायेगा। फिर भी योजना व्यय कुल व्यय के अनुपात में बढ़ रहा है 1980 की अवधि में इसमें ऊपर की तरफ बढने की प्रवृति रही यह 58% से बढकर 66% हो गया।

योजना व्यय के क्षेत्रीय आवन्टन में, दुर्लभ साधनो की परस्पर विरोधी मांग के मध्य, दो प्रमुख लक्षण देखने को मिलते है। प्रथम-समय के अन्तराल के साथ इसमें लोचशीलता और जिम्मेदारियाँ का गुण प्रदर्शित हुआ है, देश की बदलती आवश्यकता के अनुरूप (इस प्रकार देश की बदलती परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न क्षेत्रों के अनुपातिक भाग में बदलाव आया है। द्वितीय- विभिन्न क्षेत्रों में साधन आवंटन का एक स्वरूप देखने को मिलता है जो इन क्षेत्रों के हमारी योजना में महत्व को दर्शाता है। इस आधार पर प्रमुख क्षेत्र है (1) शक्ति (2) उद्योग(3) खान (4) कृषि और आश्रित सेवाएं (5) यातायात एवं सम्वादवहन (6) सामाजिक सेवाएं(7) सिंचाई और बाढ़ नियन्त्रण।

अर्थव्यवस्था मे सार्वजनिक व्यय का उपभोग और पूंजी-निर्माण में विशेष महत्व रखता है। हम यह देखते हैं कि द्वितीय और तृतीय योजना को छोडते हुए, केंद्रीय सरकार के व्यय का वह भाग जो पूंजी निर्माण में जा रहा था वह उपभोग भाग की अपेक्षा कम रहा है। हाल ही के वर्षों में यह प्रवृति काफी कष्टकारी रही है। उपभोग व्यय का वह भाग जो केंद्रीय बजट से 'चालू हस्तान्तरण' द्वारा वित्त पोषित किया जाता था वह अधिक तेजी से बढा है वनस्पति उस भाग के जो व्यय सरकार स्वयं के चालू हस्तान्तरण द्वारा करती है। इसी तरह से पूंजी निर्माण के लिए ,केंद्रीय सरकार बढती 'अनुपात में पूंजी हस्तान्तरण और विनियोग और उधार पर आधारित रही है, इसके वनस्पति की वह स्वयं पूंजी निर्माण करे।

27.9 शब्दावली

अहस्तक्षेप नीति

अहस्तक्षेप नीति का तात्पर्य है हस्तक्षेप नहीं करना। यह शब्द उस नीति के अथवा दर्शन को बताता है जिसमें मांग, पूर्ति व कीमतें बाजार यन्त्र द्वारा संचालित होने के लिए सरकार छोड़ देती है। प्रमुख आधार भूत आर्थिक निर्णय जिसमें उपभोग, विनियोग, बचत व उत्पादन तरीके, खरीददारी आदि शामिल है निजी हाथो में छोड़ दिये जाते है। सरकार अपने को केवल(1) स्वयं के रखरखाव (2) कानून-व्यवस्था को बनाये रखना और न्याय समाज को प्रदान करना(3) विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा करना (4) सामाजिक ऊपरी पूंजी उपलब्ध करने तक ही सीमित रखती है।

सार्वजनिक वस्तुएं

इस क्षेत्र की वस्तुओं मे कुछ विशेष लक्षण होते है, जो उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र में रहने के लिए सक्षम बनाते है।

आवश्यक/गुण वस्तुएं (Merit goods)

ये वस्तुए है जिनका उपयोग समाज के लिए आवश्यक माना जाता है अत: इन वस्तुओं की पूर्ति सरकार द्वारा की जानी चाहिए।

योजना व्यय

यह व्यय है जो योजना में शामिल किया गया है जब तक कि वह परियोजना/स्कीम पूरी नही हो जाती है।

गैर-योजना व्यय

एक बार परियोजना/स्कीम पूर्ण कर जी जाती है तो इस पर किया गया अतिरिक्त, कुछ भी खर्चा, (इसके रखरखाव का हिस्सा शामिल करते हुए) सार्वजनिक व्यय के गैर योजना व्यय में जाता है।

विकासात्मक व्यय

यह शब्द विस्तृत रूप में उस सार्वजनिक व्यय के लिए प्रयुक्त होता है जो सामाजिक और आर्थिक मदों पर किया जाता है। चाहे सभी व्यय के मद पूर्ण रूपेण (अथवा आंशिक रूप से) विकासात्मक प्रकृति के ना हो इस आधार पर कि ये देश के आर्थिक विकास में किसी प्रकार का प्रत्यक्ष योगदान दे रहे हो।

गैर विकासात्मक व्यय

रक्षा व्यय, व्याज अदायगी, प्रशासन आदि गैर विकास व्यय है इस दृष्टि से किय व्यय देश के विकास में प्रत्यक्ष योगदान नहीं करते है।

बढ़ते पूंजी उत्पादन अनुपात (ICOR)

एक इकाई को उत्पन्न करने के लिए आवश्यक पूंजी अनुपात के लिए काम में लिया जाता है।

27.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

लोक सभा में बजट प्रस्तावित करने से पूर्व भारत सरकार प्रत्येक वर्ष आर्थिक सर्वेक्षण प्रकाशित करती है विद्यार्थियों से सलाह है वे इसे पड़े इसके साथ ही RBI रिजर्व बैंक आफ इंडिया का बुलेटिन पढना होगा (यह हर महीने प्रकाशित किया जाता है) रिजर्व बैंक आफ इंडिया द्वारा) जो सितम्बर महीने या अक्टुबर महीने में प्रकाशित होता है। वे विद्यार्थी जो भारत सरकार के बजट का विस्तृत अध्ययन करने के इच्छुक है वे व्यय बजट भाग - I विभिन्न वर्षो के पढ सकते है। इसमें लोकसभा में प्रस्तुत विभिन बजटों का तुलनात्मक रूप देखा जा सकता है।

27.11 बोध प्रश्नों का उत्तर

1. आधुनिक सरकारों के व्यय को बढाने वाले प्रमुख कारणो में शामिल है (1) सार्वजनिक वस्तुएं और उपयोगी वस्तुएं का बढता महत्व (2) आधुनिक सरकारों का कल्याण वादी रूख (3) हर एक के लिए आर्थिक सामाजिक न्याय कों रक्षा दिलाने में बाजार पक्ष की असफलता (4) बढता रक्षा व्यय (5) अर्थव्यवस्था की बढती जटिलता (6) शहरीकरण व इसकी समस्याएं (7) विशेषज्ञों की आवश्यकता, आधुनिक औजारों का प्रयोग, सम्वादवहन साधन का उपयोग (8) आर्थिक विकास व पूंजी निर्माण की दरों का बढना(9) बढती कीमते।
2. प्रश्न के प्रथम भाग का उत्तर (अनिवार्यताओं या अनिवार्य कार्यो) को बताते हुए प्रश्न1 की भांति है। इस प्रश्न के दूसरे भाग में सुविधाओं/अवसरों को देना जैसे लोक सभा का अपूर्ण और अकुशल निरपेक्ष अर्थव्यवस्था पर, नोट छापने की क्षमता और उधार लेने की क्षमता और बढती सार्वजनिक आय आदि कार्यों के बताना है ।

3. अहस्तक्षेप नीति या दर्शन उस शब्द को बताता है जहां सरकार अर्थव्यवस्था को स्वतंत्र छोड देती है, बाजार शक्तियों के लिए केवल कुछ कार्यों को रखते हुए जिन्हे निजी क्षेत्र पूर्ण नही कर सकता है।
4. सार्वजनिक वस्तुएं (सेवाएं) के विशेष लक्षण होतें है यही कारण है इनका इस रूप में नामकरण किया गया है। इन लक्षणों में यह लक्षण भी शामिल है कि इनके उपभोग से किसी को वंचित नहीं किया जा सकता है अर्थात अलग का सिद्धान्त इस पर लागू नही होता है (अर्थात यदि वस्तु उपलब्ध है तो कोई भी इसके प्रयोग से वंचित नही किया जायेगा) यही कारण है कि ये सामाजिक वस्तुएं उन मूल्यों पर पूर्ति नही की जाऐगी या बेची जाऐगी जो उनको खरीदने की क्षमता (वैसे) रखते है। ये वस्तुएं सभी के लिए उपलब्ध करानी होगी और उसकी पूर्ति सार्वजनिक कोष से की जायेगी। निजी क्षेत्र इनको उत्पादित नही कर सकता है और नही इनकी पूर्ति कर सकता है।
5. उपयोगी/गुण वस्तुएं वे है जिनका उपभोग आवश्यक होता है। उपयोगी वस्तुओं का लाभ केवल उन्हें ही नही मिलता है जो इनका उपयोग करते है बल्कि ये वस्तुऐं समाज के अन्य सदस्यो को भी लाभ पहुंचाती है। उदाहरण के लिए शिक्षा स्वास्थ, पोषण आदि। यदि इनकी पूर्ति बाजार शक्तियों पर छोड़ दी जाती है तो इनकी पूर्ति कम/अपूर्ण' रहती है, सामाजिक आवश्यकता की अपेक्षा अत: सरकार को आगे बना होगा इनकी पूर्ति स्वयं के प्रयत्नों से बढ़ानी होगी। इनकी पूर्ति बजटीय व्यय का बढ़ा देगी ।
6. (ख) 9.3

इकाई 28
भारत में केन्द्र राज्य वित्त सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य
28.1 प्रस्तावना
18.2 विषय के अध्ययन का उद्देश्य
28.3 भारत में संघात्मक वित्तीय व्यवस्था का इतिहास
28.4 भारतीय संघ में केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्ध
28.4.1 संवैधानिक प्रावधान
28.4.2 भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय सम्बन्धों की विशेषताएं
28.4.3 केन्द्र तथा राज्यों के बीच आय स्त्रोतो का बंटवारा
28.5 भारत में वित्त आयोगों का गठन व उनकी सिफारिशें
28.6 सारांश
28.7 निबन्धात्मक प्रश्न
28.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें।

28.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप:

- जान सकेंगे कि भारत में संघात्मक वित्त व्यवस्था कब से प्रारम्भ हुई।
- विभिन्न वित्त आयोगों ने संसाधनोंकेबँटवारे के लिए क्या सिफारिशें की है?

28.1 प्रस्तावना

सन् 1947 का वर्ष भारत के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। इस वर्ष भारत अपनी सदियों की दासता से मुक्त हुआ था। इतने बलिदान के फलस्वरूप अर्जित इस स्वतंत्रता को संजोये रखनें के लिए इसे बहुत कुछ करना था। सर्वप्रथम देश के प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य सामने था। भारत को एक संविधान की रचना करनी थी। किसी भी देश का संविधान एक दिन की उपज नहीं होता है। संविधान एक ऐतिहासिक विकास का परिणाम होता है। भारत में भी संवैधानिक परम्परा का विकास अंग्रेजो के भारत में आगमन के समय से ही प्रारम्भ हुआ। स्वतंत्रता के प्राप्ति के पश्चात् दूसरा ऐतिहासिक महत्व का दिन था 26 जनवरी 1950, जब भारत का संविधान लागू हुआ, जिसने भारत को संसार के समक्ष एक नये गणतंत्र के रूप में प्रस्तुत किया।

भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद के अनुसार इण्डिया अर्थात भारत राज्यों का एक संघ होगा। इस प्रकार भारत में संघात्मक शासन की व्यवस्था की गई है और इसमें शासन के सभी लक्षण विद्यमान है। संविधान ने शासन शक्ति एक स्थान पर केन्द्रित न कर केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच विभाजित कर दी है जो दोनों अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतंत्र है। संविधान

लिखित और कठोर है, इसे सर्वोच्च स्थिति प्रदान की गई है। सवोच्च न्यायालय को संविधान का रक्षक बनाया गया है। जिसे संविधान की व्यवस्था करने और केन्द्र व राज्यों के बीच उत्पन्न संवैधानिक झगड़ों को निपटाने का अधिकार दिया गया है।

परन्तु संविधान में कुछ ऐसे तत्व भी है जिनमें इसका झुकाव एकात्मक की ओर प्रतीत होता है जैसे राष्ट्रपति द्वारा राज्यपालों की नियुक्ति, इकहरी नागरिकता आदि ।

संविधान द्वारा भारत के लिए एक संघात्मक व्यवस्था की स्थापना की गई है पर संविधान में कहीं पर भी "संघ राज्य (Federation)" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है ।, वरन् उसके स्थान पर "राज्यों के संघ (Union of States) शब्द का प्रयोग किया गया है। प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर ने "राज्यों के संघ" शब्दावली के महत्व को स्पष्ट करते हुये संविधान सभा में कहा था" प्रारूप समिति के द्वारा इस शब्दावली का प्रयोग यह स्पष्ट करने के लिये किया गया है कि यद्यपि भारत का एक संघ राज्य है लेकिन यह संघ राज्य किसी प्रकार के पारस्परिक समझौतो का परिणाम नहीं है और संघ राज्य समझौतो का परिणाम न होने के कारण, किसी राज्य को संघ से अलग होने का अधिकार नहीं है।"

कुछ संविधान वेत्ताओं ने भारतीय संविधान की संघीय प्रवृति पर आपत्ति प्रकट की है और कहा है कि भारतीय संविधान सही रूप में एक संघीय संविधान नहीं। प्रो. हिद्यर ने- "Indias New Constitution analysed" (1950) D.L.R.-25 में कहा है कि भारतीय संविधान एक अर्द्धसंघीय संविधान है जिसमें एकात्मक राज्य, जिसमें संघात्मक तत्व सहायक रूप में, न कि संघात्मक राज्य जिसमें एकात्मक तत्व सहायक कहे जा सकते है ।

जैनिंग्स ने इस संविधान को अपनी पुस्तक Some Characteristics of the Indian Constitution, P.55 में एक ऐसा संघ बताया है जिसमें केन्द्रीयकरण की सशक्त प्रवृति है।

संघात्मक बनाम एकात्मक के विवाद के इस घेरे से निकलने का एक ही उपाय है वो यह कि इस बात को भली भांति समझ लेना चाहिये कि संघवाद की प्रवृति किसी देश के ऐतिहासिक विकास व आवश्यकता के आधार पर निर्भर करती है। प्रत्येक देश में एक ही पद्धति के संघवाद की आशा करना व्यर्थ है। संघवाद स्थान और समय के अनुसार बदलता रहता है। किसी देश में इसका क्या स्वरूप अपनाया जायेगा, वह देश-विदेश की ऐतिहासिक भौगोलिक, आर्थिक व राजनीतिक परिस्थितियों पर आधारित करता है।

यह सच है कि भारतीय संविधान में संघीय सिद्धांत को उस रूप में नहीं स्वीकार किया गया जिस रूप में वह अमरीका या अन्य संघीय संविधानों में अपनाया गया है, इसका कारण स्पष्ट है कि भारतीय संविधान ने संघीय शासन व्यवस्था की सैद्धांतिक दृष्टिकोण से नहीं वरन् व्यावहारिक दृष्टिकोण से परिभाषा दी है। भारतीय संविधान निश्चित रूप से संघवाद के क्षेत्र में एक नया और साहसपूर्ण प्रयोग है।

भारतीय संविधान निर्माताओं का उद्देश्य एक दृढ़ व शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना का रहा है जो किसी भी समय देश पर बाहरी आक्रमण को में समर्थ हो और आन्तरिक विनाशकारी शक्तियों को दबाने में पूर्ण सक्षम हो। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए केन्द्रीय सरकार

को राज्य सरकारों की अपेक्षा अधिक शक्तियाँ दी गयी है। भारतीय संघात्मक व्यवस्था एक परिवर्तनशील व्यवस्था है और आवश्यकतानुसार यह एकात्मक व संघात्मक दोनों ही रूप धारण कर सकती है।

इस प्रकार भारत अपने ढंग का एक अनोखा संघ है, यह इस सिद्धान्त को मान्यता प्रदान करता है, कि संघात्मक सिद्धान्त की अपेक्षा देश का हित सर्वोपरि है।

28.2 विषय के अध्ययन का उद्देश्य

"किसी भी संघात्मक प्रणाली की सफलता के लिए आवश्यक है कि केन्द्र और राज्यों के वित्तीय साधन पर्याप्त हो जिसमें संविधान द्वारा आरोपित अपने-अपने उत्तरदायित्वों का वे सुचारू रूप से पालन कर सके।"

डी.डी बसु - "इन्ट्रोडक्शन टू दि कान्सटीट्यूशन ऑफ इण्डिया, पृ.141 संघात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों की सरकारों के बीच केवल विधायी और प्रशासनिक शक्तियों का ही विभाजन नहीं होता, अपितु वित्तीय स्रोतो का भी बंटवारा होता है। वित्तीय स्रोतो के विभाजन को लेकर राज्यों के बीच मतभेद और तनाव उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है, यह समस्या उतनी ही पुरानी है जितनी संघात्मक शासन प्राणाली और यह विश्व की अधिकांश संघ व्यवस्थाओं को संकट ग्रस्त करती रही है।

वस्तुतः राज्यों के विधायिनी और प्रशासकीय प्राधिकार को कायम रखने के लिए उनकी विलीय स्वतंत्रता अत्यन्त आवश्यक है किन्तु संघीय सिद्धान्त का विश्व के किसी भी संघात्मक संविधान में पूर्ण रूपेण पालन नहीं किया गया है। आस्ट्रेलिया और कनाडा के संविधान के अन्तर्गत राज्यों को दिये गये राजस्व के साधन इतने अपर्याप्त है कि उन्हें काफी हद तक केन्द्रीय अनुदार पर निर्भर रहना पड़ता है,। स्विटजरलैंड के संविधान में वित्तीय साधनों का विभाजन इसके बिल्कुल विपरीत है और वहां केन्द्र राज्यों के उग्र निर्भर है क्योंकि केन्द्रीय राजस्व का अधिकतर भाग राज्यों से प्राप्त होता है। अमेरिका के मूल संविधान में इस सिद्धान्त को कठोरता से लागू करने का प्रयास किया गया था जिससे केन्द्र और राज वित्तीय मामलों में पूर्ण स्वावलम्बी रहें, किन्तु कालान्तर में राज्यों की कल्याणकारी धारणा के विकास के उनके कर्त्तव्यों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई जिसके कारण राज्यों को केन्द्रीय, अनुदान पर निर्भर रहने के लिए बाध्य होना पड़ा। इसके कारण अमेरिका में भी केन्द्रीयकरण की प्रवृति का विकास हुआ जिसने राज्यों की स्वायत्तता को कम कर दिया।

भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्यों में राजस्वों का वितरण भारतीय सरकार अधिनियम1935 की पद्धति के आधार पर किया जाता है। हमारे संविधान निर्माताओ का यह विचार था कि केन्द्र व राज्यों के विलीय संबंध लचीले हों व बदलती परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुकूलनीय रहे। इस प्रयोजन के लिए एक वित्त आयोग की स्थापना का प्रबन्ध भी किया गया है जो समय-समय पर वित्त स्थिति पर पुर्नविचार करेगा और संशोधन व परिवर्तन का सुझाव देगा।

किसी भी संघीय संविधान में इस तरह की कोई विस्तृत व्यवस्था नही है कि जिसके माध्य यम से केन्द्र और राज्यों में राजस्वों वितरण का समयानुकूल समायोजन और वितरण

होता रहे। इस व्यवस्था को अपनाकर भारतीय संविधान ने निस्सन्देह इस जटिल क्षेत्र में एक मालिक योगदान दिया है।

समस्त व्यवस्थाओं के बाद भी केन्द्र और राज्यों, राज्यों व राज्यों के मध्य विलय मतभेद समय-समय पर उभर कर सामने आते रहे है। चतुर्थ आम चुनाव के पूर्व केन्द्र और राज्य सरकारी के सामान्य संबंध संतोषजनक थे, जिनका प्रमुख कारण भारतीय संघ के लगभग सभी राज्यों में कांग्रेस दल की सरकार तथा नेहरू का महा व्यक्तित्व था। इस समय तक कैंन्द्र और राज्यों मे, किसी प्रकार का सेद्धान्तिक मदभेद नहीं था।

लेकिन चतुर्थ आम चुनाव के केन्द्र व राज्य के बीच पारसरिक संबंधों पर व्यापक प्रभाव पड़ा। चुनाव के बाद कई राज्यों में गैर-कांग्रेसी दलों ने अके ले या संयुक्त मोर्चे की गैर कांग्रेसी सरकारों का निर्माण किया और इन गैर कांग्रेसी सरकारों विशेष कर तमिलनाडु की द्रविड़ मन्त्र कड़गम सरकार ने राज्यों की अधिक स्वायतता की मांग की। 1977 में राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन के बाद स्वायतता की मांग को पुन: उठाया गया। अब इस प्रकार की मांग पश्चिमी बंगाल के वामपन्थी मोर्चे की सरकार और उसके मुख्यमंत्री ज्योति बसु डरा की गई और जम्मू कश्मीर राज्य के मुख्य मंत्री और नेशनल कांग्रेस के नेता श्री शेख अब्दुल तथा कुछ अन्य के द्वारा उसका समर्थन किया गया। 11 फरवरी 1978 को श्री शेख अब्दुल्ला ने कलकत्ता में"कश्मीर मेले" का उद्घाटन करते हुए इस बात की मांग की कि "30 वर्ष है की परिस्थितियां नहीं रही है। अत अब राज्यों की अधिक अधिकार दिये जाने चाहिये। जिससे वे अपना विकास कर सके - - केन्द्र तथा राज्यों के समस्त संबंधों पर पुनर्विचार किया जाना चाहिये। "(हिन्दुस्तान टाइम्स, 12 फरवरी, 1978)

यद्यपि यह सत्य है कि अधिकांशत : राज्यों द्वारा अधिक शक्तियों और वित्तीय साधनों की मांग अनेक बार चुनावी राजनीतिक मुददे के रूप में की जाती है, लेकिन इस बात से इन्कार नही किया जा सकता कि राज्यों को अधिकत अधिकार, विशेष तथा आर्थिक क्षेत्र में अधिक अधिकारों के प्रश्न पर गम्भीरता के साथ विचार किये जाने की आवश्यकता है।

ग्रेनविल ऑस्टिल लिखते है "भारत नयी दिल्ली नही है, बल्कि राज्यों की राजधानियां भी है। राज्य केन्द्रीय सहायता के आकाक्षी है, किन्तु राज्यों के सहयोग के बिना संघ, बहुत दिनों तक कायम नहीं रह सकता। राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार की नीतियों का माध्यम हो सकती है। किन्तु उसकी सहायता के बिना कैंद्रीय सरकार अपनी योजनाओं को क्रियान्वित नही कर सकती। वस्तुत : दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर है।"

केन्द्र राज्य सम्बन्धों में अभी हाल के वर्षो में स्वस्थ दिशा में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। राज्य की बिगड़ती हुई आर्थिक दिशा में कुछ पिछले आयोगों ने राज्यों को दिये जाने वाले अनुदानों में बहुत अधिक वृद्धि का सुझाव दिया।

इस प्रकार केन्द्र राज्य सम्बन्ध, विशेष रूप से आर्थिक संदर्भ में, धान आक़र्षित करते है, इस बिन्दु पर चिंतन मनन आवश्यक है ताकि केन्द्र में शक्तिशाली सरकार की (स्थापना तो हो ही जाये तथा बढ़ते हुये उत्तरादायित्वों के संदर्भ में पर्याप्त वित्तीय साधन भी प्राप्त कर सकें।

28.3 भारत में संघात्मक वित्तीय व्यवस्था का इतिहास

भारत एक संघात्मक गणतंत्र है जिसमें केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्तियों व जिम्मेदारियों का बंटवारा संविधान द्वारा स्पष्ट रूप से कर दिया गया है। वर्तमान समय में जिस संघीय वित्त व्यवस्था को अपनाया गया है वह कई सोपानों से गुजरा है। अगर हम वर्तमान भारतीय संघीय वित्त व्यवस्था को सही प्रकार से समझना चाहते है तो इसके पीछे छिपे इतिहास को अनदेखा करना, इस दिशा में अपने ज्ञान को अल्प रखना होगा - हम इसके इतिहास को जले बिना इसके वर्तमान को सही रूप में समझ नहीं सकेंगे।

(1) प्रथम अवधि	1833	-	1870
(2) द्वितीय अवधि	1871	-	1918
(3) तृतीय अवधि	1919	-	1935
(4) चतुर्थ अवधि	1936	-	1949
(5) पंचम अवधि	भारतीय संविधान के निर्माण के बाद यानि स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान में केन्द्र और राज्यों के मध्य सोतो का बंटवारा।		

1. प्रथम अवधि - (1833-1870)

1833 में भारत की वित्तीय व्यवस्था ब्रिटिश सरकार के चार्टर एक्ट के तहत संचालित होती थी, इसके अनुसार बंगाल का गर्वनर भारत का गर्वनर जनरल होता था तथा विभिन्न प्रान्तों के गर्वनर वित्तीय मामलों में गर्वनर जनरल के अधीनस्थ थे। समस्त आय भारत सरकार के नाम से एकत्रित की जाती थी और गर्वनर जनरल को उसे खर्च करने का पूरा अधिकार था। प्रान्तीय सरकारें वित्तीय मामलो में स्वतंत्र नहीं थी, छोटे-छोंटे व्ययों के लिये भी प्रान्तीय सरकारों को गर्वनर जनरल से पूर्वानुमति लेनी पड़ती थी।

इस व्यवस्था के अनेक दोष थे - जैसे असुविधाजनक, अपव्यय, आदि। इस व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष था कि किसी भी प्रान्त को कितना अनुदान मिले, इस बात का निर्णय इस आधार पर नहीं किया जाता था कि उनकी मांग कितनी जायज है वरन् जिस प्रान्त पर गर्वनर जनरल का जितना ज्यादा वरद् हस्त रहता था वह उतना अधिक वित्त प्राप्ति की स्थिति में होता था। इस व्यवस्था का प्रान्तों के द्वारा विरोध किया गया।

2. द्वितीय अवथि (1871-1918)

भारत में 1871 के पूर्व केन्द्रीय सरकार को आय व व्यय के संदर्भ में पूरा अधिकार प्राप्त था। प्रान्तों को केंन्द्र सरकार द्वारा निश्चित अनुदान दिये जाते थे ताकि वह अपने व्ययों की पूर्ति कर सकें। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि प्रान्तों में इस बात पर अनिश्चितता का वातावरण बना कि उन्हें कितना अनुदान केन्द्र सरकार से मिलेगा, कई प्रान्तों कों आवश्यकता से अधिक अनुदान मिला जिनका दुरूपयोग किया गया। इस समस्या को समाधान हेतु कई बार केन्द्र सरकार ने प्रान्तो को समान मात्रा में अनुदान दिए परन्तु भारत जैसे देश में जहाँ शर्तो में अनेक विविधताये है, जहां हर प्रान्त की समस्या विविध है, समानता के आधार पा वित्तीय अनुदान देना सही प्रतीत नहीं होता ।

इसी कारण से 1871 में लार्ड मेयो ने वित्तीय विकेन्द्रीकरण की दिशा मे कदम उठाया। इस व्यवस्था को Provincial Settlement का नाम दिया जिसके तहत कुछ व्यय जो स्थानीय प्रकृति के थे उनका अधिकतर प्रान्तों को दिया गया ये विषय थे पुलिस, जेल, शिक्षा, सड़कें आदि। इस व्यवस्था के तहत 4.68 करोड़ रू. का वार्षिक अनुदान हर प्रान्त को दिया गया और सीमित मात्रा में कर लगाने का अधिकार भी दिया गया। इस प्रकार भारत में संघात्मक वित्त व्यवस्था की नींव पड़ी। इस वित्तीय व्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि प्रान्तों के व्यय काँफी मात्रा में बढ़ गया परिणामत: 1877 में लार्ड ल्याट् नें नयी स्कीम दी जिसके तहत प्रान्तीय सरकारों के अधीन के व्यय व आय स्रोतो में बढ़ोतरी की गई जैसे स्टाम्प, एक्साइज। परन्तु यह व्यवस्था भी ज्यादा संतोषप्रद नहीं बन पाई।

सन् 1882 में लार्ड रिपन ने एक नवीन योजना दी जिसके तहत कुछ मामलों मे आय प्राप्त करने का अधिकार प्रान्तों को सोंपा गया जबकि कुछ स्त्रोतो को "विभाज्य स्त्रोत" की संज्ञा दी गई। जिनसे प्राप्त आय को कैंन्द्र व प्रान्तीय सरकारों के मध्य बांटा गया इस प्रकार इस व्यवस्था के बाद में प्रान्तों को निश्चित मात्रा मे वित्तीय अनुदान देने की व्यवस्था समाप्तहो गई। 1887,1892, 1897 में इस व्यवस्था में और सुधार लाये गये।

3. तृतीय अवधि (1919-1935)

बाद में वित्तीय व्यवस्था के केन्द्रीकरण की दिशा में मोन्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के तहत और सुधार किये गये - इस सुधार योजना को भारत सरकार के अधिनियम 1919 में शामिल किया गया जो 1921 में लागू हुआ। इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय सरकारों के वित्तीय स्त्रोतो का स्पष्ट रेखांकन किया गया जैसे भूराजस्व, सिंचाई पर आमदनी, स्टाम्पस आदि महत्वपूर्ण आय स्रोत राज्यों को प्रदान किये गये। इस बात को भी मद्देनजर रखा गया कि इतने महत्वपूर्ण आय स्त्रोत प्रान्तों के पास जाने पर केन्द्र के पास वित्तीय अभाव की स्थिति उत्पत्र होगी -इसलिए यह तय किया गया कि प्रान्तीय सरकारें केन्द्र सरकार को वित्तीय सहायता देंगी जैसे मद्रास 4.28 करोड़ रु., इस व्यवस्था ने प्रान्तों में गम्भीर असंतोष उत्पन्न किया, इस संदर्भ में एक "वित्तीय संबंध समिति" का निर्माण किया गया जिसने 1920 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसे "मेस्टन अवार्ड" के नाम से जाना जाता है।

मेस्टन अवार्ड - लार्ड मेस्टन की अध्यक्षता में नीयुक्त इस समिति की निम्न महत्वपूर्ण सिफारिशें थी -

(अ) प्रान्तों द्वारा केन्द्र को दी जाने वाली वित्तीय सहायता 9.63 करोड़ रु. स्थिर रहेगी ताकि कैंन्द्र सरकार 1921-22 के बजट के घाटे को पूरा कर सके।

(ब) केन्द्र सरकार प्रान्तों से जो ऋण लेगी वो 12 साल के अन्दर ब्याज सहित प्रान्तों को लौटने हेंगे ।

(स) आय-कर के रूप में उगाही, गयी समस्त राशि केन्द्र सरकार के कोष में जायेगी।

4. चतुर्थ अवधि- (1936-1949)

सन् 1935 तक उक्त व्यवस्था रही बाद में इस बात पर विचार प्रारम्भ हुआ कि केन्द्र व प्रान्तीय सरकारों के मध्य आय का बंटवारा किन सिद्धान्तों के आधार पर हो। 1935 में भारत सरकार अधिनियम पारित हुआ जिसमें केन्द्र में संघात्मक व्यवस्था वाली सरकार की स्थापना पर जोर दिया गया और प्रान्तों को कुछ विषयों में स्वायत्तता प्रदान की गयी।

1935 के इस अधिनियम के तहत भारत में भूराजस्व, अपगेम कृषि आय कर, रजिस्ट्रेशन, स्टाम्प आदि जैसे आय के स्त्रोत प्रान्तों को दिये गये। कुछ ऐसे कर भी निर्धारित किये गये जो केन्द्र सरकार द्वारा लगाये व एकत्रित किए जायेगे। पर उस राशि का बंटवारा प्रान्तों के मध्य किया जायेगा। कुछ ऐसे कर भी निर्धारित किये गये जो प्रान्तीय सरकारों द्वारा लगाये व एकत्रित किये जायेंगे पर उनसे प्राप्त राशि का बंटवारा केन्द्र व प्रान्तों के बीच होगा। साथ ही इस अधिनियम द्वारा यह प्रावधान भी रखा गया कि जरूरतमंद प्रान्त को उसकी जरूरत के अनुसार वित्तीय अनुदान केन्द्र सरकार देगी।

ओटो नाइमेयर अवार्ड 1936 - सन् 1936 में सर ओटो नाइमेयर को केन्द्र व प्रान्तों के मध्य वित्तीय संबंधों का अवलोकन करने के लिए नियुक्त किया गया। इनकी निम्न सिफारिशें थी।

(अ) आय कर से प्राप्त राशि का 50% प्रान्तों को बांटा जाये।

(ब) वित्तीय अनुदान आर्थिक दृष्टि से पिछड़े प्रान्तों को देना चाहिए।

(स) किस प्रान्त को आय कर का कितना भाग दिया जाये इसका निर्धारण दो आधारों पर किया जाये। पहला कि उस राज्य की कुल आय कर राशि में योगदान कितना है, दूसरा, उस राज्य की जन संख्या।

भरत सरकार ने उक्त सारी सिफारिशें मान ली और यह व्यवस्था 1947 तक चली।

5. पंचम अवधि

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान बना और उसमें 1935 के अधिनियम को ही आधार. बनाया गया। संविधान में यह व्यवस्था की गई कि प्रत्येक पांच वर्ष में या उसके पहले, राष्ट्रपति वित्त आयोग की स्थापना करेगा। इस प्रकार प्रत्येक पांच वर्षो में भारत वित्त आयोग की स्थापना की जाती है, जो राष्ट्रपति को सलाह देता कि आय कर व अन्य करों में (जो केन्द्र सरकार द्वारा आगाये व/और एकत्रित किये जाते है) राज्यों का हिस्सा कैसे निर्धारित किया जाये, तथा वित्तीय अनुदान किस आधार पर राज्यों को दिये जायें।

अब तक भारत में नौ वित्त आयोग नियुक्त किये जा चुके है। दसवां वित्त आयोग अभी कार्यरत है।

देशमुख आवार्ड (1950) - स्वतंत्रता के तुरन्त बाद वित्त आयोग की स्थापना नहीं की जा सकी, इसलिए भारत सरकार ने श्री सी.डी. देशमुख को नियुक्त किया ताकि वे सलाह दे सकें कि कर राशि का बंटवारा केन्द्र व राज्य सरकारों के मध्य कैसे किया जाये, उन्होंने अपनी सिफारिश में कहा कि आयकर में किसी राज्य का क्या योगदान रहा है इसे आयकर राशि बंटवारे का महत्वपूर्ण आधार बनाया जाना चाहिए। वित्त आयोग की स्थापना तक श्री देशमुख की सिफारिशें ही आधार मानी जाती रही।

28.4 भारत में केन्द्र - राज्य वित्तीय सम्बन्ध

28.4.1 संवैधानिक प्रावधान

भारत में संघीय वित्त व्यवस्था के कारण भारतीय संविधान में केन्द्र व राज्यों के वित्तीय सम्बन्धों के बारे में विशेष प्रावधान किये गये है। केन्द्र को वित्तीय साधनों के व्यापक व सुनिश्चित स्त्रोत प्रदान कर उसे काफी सशक्त बनाया गया है। राज्यों को अपनी वित्तीय आवश्यकताओं के लिए बहुत कुछ केन्द्र पर आश्रित रहना पड़ता है। केन्द्र राज्यों को उनके वित्तीय अभावों की पूर्ति के- लिए तीन प्रकार से वित्तीय हस्तांतरण करता है-

(अ) वैधानिक हस्तान्तरण

इसके अन्तर्गत राज्यों को वित्तीय साधनों का हस्तान्तरण केन्द्रीय करों में अंश तथा सहायतार्थ अनुदान के रूप में किया जाता है जो राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक पांच वर्ष में नियुक्त वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार निर्धारित किया जाता है। अब तक भारत में दस वित्त आयोग अपनी सिफारिशें दे चुके हैं।

(आ) योजना हस्तान्तरण

इसके अंतर्गत राज्यों को योजना कार्यों के लिए वित्तीय साधनों का केन्द्र द्वारा हस्तान्तरण योजना आयोग के निर्धारित फार्मूले के अनुसार किया जाता है। पिछले वर्षों में केन्द्र से राज्यों को योजना कार्यों के लिए वित्तीय साधनों का हस्तान्तरण गाडगिल फार्मूले तथा उसके समय-समय पर संशोधित फार्मूले के तहत होता रहा है।

(इ) अन्य ऐच्छिक हस्तान्तरण

केन्द्र सरकार द्वारा उपर्युक्त दो प्रकार: के हस्तान्तरणों के अतिरिक्त भी राज्यों को संविधान की धारा 282 के अन्तर्गत ऋणों एवं विशिष्ट अनुदानों के रूप में विरत्तीय साधनों का हस्तान्तरण किया जाता है जो बहुत कुछ केन्द्र सरकार की इच्छा एवं परिस्थितियों पर निर्भर होते है। ये ऐच्छिक हस्तान्तरण प्राय : कैंन्द्र प्रायोजित योजनाओं प्राकृतिक विपदाओं में राहत देने, साधनों की कमी की पूर्ति करने तथा राज्यों को ओवर ड्राफ्ट चुकाने की ऋण राहत के रूप में होते है।

28.4.2 भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों की विशेषतायें

भारत में संघीय वित्त व्यवस्था का सुत्रपात 25 जनवरी 1950 से लागू भारतीय संविधान की धारा 264 से 300 के अन्तर्गत हुआ है। जिसमें केन्द्र तथा राज्यों के वित्तीय संबंधों की व्यवस्था की गई है। संविधान की सातवीं अनुसूचि में केन्द्र तथा राज्य सरकारों के आय सोतो का विभाजन किया गया है। संविधान में यह भी व्यवस्था की गई हे कि राष्ट्रपति की आज्ञा से प्रत्येक पांच वर्ष के बाद एक वित्त आयोग की स्थापना की जायेगी जो सर्वेक्षण व अनुभवों के आधार पर केन्द्र तथा राज्यों के वित्त संबंधों का निर्धारण तथा उनमें वित्तीय संतुलन के हेतु अपनी सिफारिशें देगा।

संविधान की धारा 360 के अन्तर्गत संकट काल में राष्ट्रपति को देश में वित्तीय आपातकाल की घोषणा कर विॠय साधनों के विभाजन व वित्तीय अधिकार अपने हाथ में लेने

का अधिकार दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद 275 में केन्द्र द्वारा राज्यों को अनुदान व सहायतार्थ साधन हस्तान्तरण की व्यवस्था है। अनुच्छेद 292-293 में केन्द्र द्वारा राज्यों से ऋणों के लेन देन की व्यवस्था की गई है।

28.4.3 केन्द्र तथा राज्यों के बीच आय स्रोतों का बंटवारा

भारतीय संविधान की धारा 268 तथा उसकी सातवीं अनुसूची में केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों के आय स्त्रोतो का विभाजन किया गया है। केन्द्र सूची (संघ सूची) में राष्ट्रीय महत्व के कार्यों को शामिल किया गया है जिनमें शामिल विषयों पर कर लगाने का अधिकार केन्द्र सरकार को ही है, जबकि राज्य सूची में शामिल विषयों पर कर लगाने का अधिकार राज्य सरकारों को दिया गया है। वित्तीय साधनों का विभाजन मुख्यत : पांच श्रेणियों में किया जा सकता है।

(अ) केन्द्र सरकार के आय स्त्रोत

निगम कर, आयात-निर्यात शुल्क, उत्तराधिकार कर, कृषि के अतिरिक्त अन्य आय पर कर, अखबारों तथा विज्ञापनों पर बिक्रीय कर रिजर्व बैंक से प्राप्त आय, शराब एवं नशीली वस्तुओं के अतिरिक्त भारत में निर्मित अन्य वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क तथा केन्द्र के अधीन सम्पत्ति से आय आदि। संविधान की सातवीं अनुसूची को प्रथम सूची में इनका उल्लेख है।

(आ) राज्य सरकारों के आय स्त्रोत

संविधान की सातवीं अनुसूची को द्वितीय सूची में इसका उल्लेख है। इन स्त्रोतो से आय जुटाने तथा उनके उपयोग का पूर्ण अधिकार राज्य सरकारों को है। इनमें मुख्य है - भूमि तथा भवन कर, मनोरंजन कर, शराब व मादक वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क, वाहनों पर कर, स्थानीय क्षेत्र में वस्तुओं के आने पर कर आदि स्रोत शामिल है।

(इ) केन्द्र द्वारा लगाये गये व वसूल किए गए राज्यों में विभाज्य स्रोत

संविधान के अनुच्छेद 269(1) के तहत इसके अर्न्तगत वे कर स्रोत आते है जो केन्द्र द्वारा लगाये व वसूल किये जाते है तथा उनसे प्राप्त समस्त आय वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार राज्यों में विभाजित कर दी जाती है। केन्द्र को उसमें कुछ भी नहीं मिलता। ये है - कृषि भूमि को छोडकर उत्तराधिकार कर, सीमा शुल्क कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य संपत्ति कर।

(ई) केन्द्र सरकार द्वारा लगाये व वसूल किये जाने वाले कर पर केन्द्र तथा राज्यों में विभाज्य आय स्रोत

इसके अर्न्तगत संविधान के अंतर्गत संविधान के अनुच्छेद 270 में वर्णित कर आते है। इसे लगाने का अधिकार तो केन्द्र सरकार को ही है पर इनसे प्राप्त संपूर्ण आय को वित्त आयोग की सिफारिशों के द्वारा निर्धारित अनुपात में केन्द्र तथा राज्यों के बीच विभाजित किया जाता है। इसके अंतर्गत - कृषि आय को छोडकर अन्य प्रकार की आयकर, केन्द्रीय उत्पादन शुल्क, रेलगाड़ी भाड़े पर कर आदि।

(उ) अन्य आय स्रोत

इनमें उन आय स्त्रोतो का समावेश है जो केन्द्र राज्य अथवा उनमें से किसी द्वारा लगाये व वसूल किये जाते है।

केन्द्र द्वारा लगाये कर पर राज्यों द्वारा वसूल आय के स्रोत जो राज्यों की ही आय माने जाते है। जैसे - स्टाम्प कर व सौंदर्य प्रसाधनों पर केन्द्र सरकार कर लगाती है, पर राज्य सरकारें ही उन्हें वसूल करती है और वे उन्हीं की आय माने जाते है।

अधिभार-केन्द्र सरकार संविधान के अनुच्छेद 271 के अनुसार किसी भी वर्ग के करों पर नया अधिभार लगाने या पुराने अधिभार में परिवर्तन करने को अधिकृत है इस प्रकार के अधिभार से प्राप्त समस्त आय केन्द्र सरकार की ही मानी जाती है। इसमें राज्यों को कुछ नहीं मिलता। जैसे आय कर पर अधिभार अथवा उत्पादन शुल्क पर अधिभार से प्राप्त संपूर्ण आय पर केन्द्र सरकार का अधिभार होता है।

व्यवसायों पर कर लगाने को राज्य सरकारें अधिकृत है।

28.5 भारत में वित्त आयोगों का गठन व उनकी सिफारिशें

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280-281 के अन्तर्गत राष्ट्रपति हर पाँच वर्ष में एक वित्त आयोग की नियुक्ति करते है। जिसमें चार सदस्य एवं एक अध्यक्ष होता है। यह आयोग राष्ट्रपति को सिफारिश करता है कि

(1) कौन-कौन से करों का केन्द्र व राज्यों के बीच बंटवारा हो और विभाजन का आधार क्या है।

(2) राज्यों को अनुदान देने के सिद्धान्तों का निर्धारण तथा

(3) अन्य कोई विषय जो राज्य व केन्द्र के वित्तीय संबंधों हेतु राष्ट्रपति ने सौंपा हो।

संविधान लागू होने के बाद 1951 से अब तक 10 आयोगों की नियुक्ति की गई है, उनको नियुक्ति की तारीख, प्रतिवेदन प्रस्तुत करने तथा उनके अध्यक्षों का विवरण इस प्रकार है-

तालिका नं. 28.1

विवरण		नियुक्ति तिथि	रिपोर्ट प्रस्तुत करने की तिथि	अध्यक्षों का नाम
प्रथम वित्त आयोग		नव. 1951	दिस. 1952	श्री के. सी. नियोगी
द्वितीय	,,	जून. 1956	दिस 1957	श्री के. सी. सन्धानम
तृतीय	,,	दिस. 1960	दिस 1961	श्री ए. के. चन्दा
चतुर्थ	,,	मई. 1964	अगस्त 1965	श्री वी.वी राजमन्नार
पांचवा	,,	अक्टू.1968	सित 1969	श्री महवीर त्यागी
छठा	,,	जून 1972	अक्टू. 1973	श्री के. ब्रहमानंद रेड्डी
सातवां	,,	जून 1977	अक्टू. 1978	श्री जे.एम. शेलर
आठवां	,,	जून 1982	अप्रैल 1984	श्री वाई. वी. चव्हाण
नवां	,,	जून 1987	दिस. 1989	श्री एन.के पी. साल्वे
दसवां	,,	जून 1992	नव. 1994	श्री के.सी. पन्त

तालिका नं. 28.2

राज्यों मे आय कर विभाजन संबंधी वित्त आयोग की सिफारिशें

वित्त आयोग	आयकर में राज्यों का हिस्सा	राज्यों में आयकर विभाजन का आधार		
		जनसख्या	आयकर वसूली	पिछड़ेपन के तत्व
प्रथम वित्त आयोग	55%	80%	20%	-
द्वतीय " "	60%	90%	10%	-
तृतीय " "	66.6%	80%	20%	-
चतुर्थ " "	75%	80%	20%	-
पांचवा " "	75%	90%	10%	-
छठा " "	80%	90%	10%	-
सातवां " "	85%	90%	10%	-
आठवां " "	85%	22.5%	10%	67.5%
नवां वित्त आयोग	85%	22.5%	10%	67.5%
दसवां वित्त आयोग	77.5%	नये फ़ार्मूल के अनुसार		

तालिका नं. 28.3 केन्द्रीय उत्पादन कर का राज्यों में वितरण आधार

वित्त आयोग	केन्द्रिय उत्पादन शुल्क में राज्यों का हिस्सा	वस्तुओं की संख्या	केन्द्रिय उत्पादन शुल्क का राज्यों में विभाजन का आधार	
			जनसंख्या	अन्य फार्मूला
प्रथम वित्त आयोग	40%	3 वस्तुओं के शुल्क का	40%	60%
			-	-
द्वतीय"	25%	8 ''	-	-
तृतीय"	20%	35 ''	-	-
चतुर्थ "	20%	45 ''	80%	20%
पांचवा"	20%	45 ''	80%	20%
छठा"	20%	45 ''	75%	25%
सातवां"	40%	सभी वस्तुओं के उत्पादन शुल्क	*	*
आठवां"	45%	- -	*	*
नवां"	45%	- -	*	*
दसवां"	47.5%	नये फार्मूले के अनुसार		
नया फार्मूला	40%	आयकर विभाजन के आधार पर तथा 7.5-1,नये आधार पर		

* सातवें वित्त आयोग ने केन्द्रीय उतादन शुल्क के राज्यों में विभाज्य हिस्सा सभी वस्तुओं के उत्पादन शुल्क का 40% रखा तथा इसके राज्यों में वितरण का आधार जटिल बना

दिया जिसमें चार घटकों का समान भार दिया, 25% जनसंख्या के आधार पर, 25% प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के आधार पर, 25% राज्यों में गरीबी के प्रतिशत के आधार पर तथा 25% राज्यों के राजस्व समानीकरण फार्मूला के आधार पर दिये जाने की सिफारिश थी।

** आठवें वित्त आयोग ने केन्द्रिय उत्पादन शुल्क का हिस्सा बढ़ाकर 45% कर दिया जिसमें 40% भाग तो नये फार्मूले के अनुसार तथा 5% राज्यों के घाटे के अनुपात में विभाजन करने की सिफारिश की।

जून 1992 श्री के. सी. पन्त की अध्यक्षता में दसवें वित्त आयोग का गठन किया गया जिसमें श्री देवी प्रसाद पोल, श्री वी. पी. आर. विट्ठल तथा डॉ. सी. रंगराजन को सदस्य व श्री गुप्ता को सदस्य सचिव मनोनित किया गया। 1995-2000 की अवधि में कुल 203303 करोड़ रुपयों का बँटवारा किया गया। वर्तमान में ग्यारहवाँ वित्त आयोग कार्यरत है।

28.6 सारांश

भारत में संविधान द्वारा केन्द्र को तुलनात्मक रूप से सशक्त बनाया गया है। राज्यों के वित्तीयदायित्वों को देखते- हुए राज्यो के आय स्रोतो को बढ़ाया गया है और - आवश्यकतानुसार केन्द्र वितीय सहायता प्रदान करता रहा है। 10 वे वित्त आयोग नें केन्द्री कर राजस्व से राज्यों को पहले की अपेक्षा अधिक साधन उयलब्ध कराने का प्रयास किया है। विभाजन योग्य पूल में राज्यों के पारस्परिक अंश के निर्धारक में अपनाये जाने वाले मापदण्डों में राज्यों के आधार-भूत ढांचे के पिछड़ेपन, भौतिक क्षेत्रफल तथा कर प्रयासों का समावेश किया है।

पिछले कुछ वर्षों में राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण केन्द्र राज्य संबंधों में नये मोड़ आये हैं। जहां एक ओर कुछ राज्यों में विपक्षी सरकारों के सत्ता में आने से केन्द्र तथा राज्यों में वित्तीय बटवारे के बारे में टकराव की स्थितियां उत्पन्न हुई है। वहां दूसरी ओर राज्य अपने राजस्व घाटों की पूर्ति के लिए केन्द्र से अधिक वित्तीय साधनों के हस्तन्तरण की मांग करने लगे है। यहां तक कि कुछ राज्य तो वित्तीय स्वायत्ता की मांग करने लगे है। राज्यों में केन्द्र पर अत्यधिक आश्रितता को कम करने की मांग प्रबल हुई है तथा क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने पर भी केन्द्र पर राज्यों का दबाब बढ़ रहा है।

28.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बंधो की विवेचना कीजिये? वर्तमान समय में केन्द्र - राज्य वित्तीय सम्बन्धों ने क्या मोड़ लिया है? व्याख्या करो।
2. केन्द्र राज्य वित्तीय सम्बन्धों का इतिहास लिखिये।
3. विभिन्न वित्त आयोगों की सिफारिशों की विवेचना कीजिये।
4. केन्द्र राज्य वित्त सम्बन्धों के संवैधानिक पक्ष पर प्रकाश डालो।
5. भारत में संघात्मक बनाम एकात्मक शासन की विवेचना कीजिये।
6. भारत में केन्द्र और राज्यों के ब्रीच वित्तीय संबंधों की विशेषताओं उल्लेख कीजिये।

7. केंन्द्र राज्य वित्त सम्बन्धों के अध्ययन का भारतीय संदर्भ में क्या महत्व है विवेचना कीजिये।

28.8 संदर्भ पुस्तकें

1. ओझा, बी. एल.. "भारतीय अर्थ व्यवस्था", आदर्श प्रकाशन, जयपुर।
2. दत्त रूद्र एवं सुन्दरम के. पी. एम. "भारतीय अर्थ व्यवस्था" एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी नई दिल्ली।
3. वैश्य एम. सी. एवं अग्रवाल, एच. सी.. पब्लिक फाइनेन्स, एलाइड पब्लिशर्स प्राईवेट लिमिटेड, अहमदाबाद, बोम्बे, मद्रास, नई दिल्ली, हैदराबाद, कलकत्ता, बंगलौर।
4. नाथूरामका, लक्ष्मी नारायण : "भारतीय अर्थ व्यवस्था", कालेज बुक हाउस, जयपुर।
5. जैन डॉ. पुखराज : "भारतीय राज व्यवस्था" साहित्य भवन आगरा।
6. पाण्डेय, डॉ. जय नारायण. "भारत का संविधान" सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद ।
7. भाटिया, एच. एल.. "पब्लिक फाइनेन्स", विकास पब्लिशिंग हाउस, प्राईवेट लिमिटेड ।
8. शर्मा एवं बत्रा : "मुद्रा, बैकिंग तथा राजस्व", साहित्य भवन आगरा ।

NOTES

NOTES